Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया

(छठी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पी-एच० डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

निर्देशिका
प्रो. रेनु शुक्ला
प्रोफेसर

शोधार्थिनी
सारिका दुबे
पंजीकरण सं. 18008

प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तराखण्ड) - 249404

2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया

(छठी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पी-एच० डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका
प्रो. रेनु शुक्ला
प्रोफेसर

शोधार्थिनी
सारिका दुबे
पंजीकरण सं. 18008

प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तराखण्ड) - 249404

2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया

(छठी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग

में

पी-एच० डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका
प्रो. रेनु शुक्ला
प्रोफेसर

शोधार्थिनी
सारिका दुबे
पंजीकरण सं. 18008

प्राच्य विद्या संकाय
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय
हरिद्वार (उत्तराखण्ड) - 249404

2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CANDIDATE'S DECLARATION

I hereby declare that the work which is being presented in the thesis entitled **"पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया (छठी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)"**, in fulfillment of requirement for the award of the Degree of Doctor of Philosophy in Ancient Indian History, Culture and Archaeology of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar is an original work carried out by during a period from 2018 to 2024 under the supervision of Dr. Renu Shukla (Professor), Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

The matter presented in the thesis has not been submitted by me for the award of any degree/diploma of this University or any other University/Institute. I have properly acknowledged the material collected from the secondary sources wherever required. I solely own the responsibility of Ph. D. thesis as per prescribed norms in the research rules & regulation of the University/UGC.

Date : 20/08/2024

(Sarika Dubey)
Research Scholar
Enrolment No 18008

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

SUPERVISOR'S DECLARATION

This is to certify that **Sarika Dubey** has worked under my supervision on **"पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया (छठी शताब्दी ईसा पूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)"**, for his Degree of Doctor of Philosophy in Ancient Indian History, Culture and Archaeology of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar. He fulfills the eligibility criteria for submission of Ph.D. thesis as per research rules & regulation of the University/UGC. It is also certified that the candidate has incorporated the suggestions given in the pre-submission presentation before DRC.

The candidate has fulfilled the necessary residency requirements for full time Ph.D. Programme as per rules of the University.

I recommend the thesis for evaluation for the award of the degree of Doctor of Philosophy of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

Date : 20-08-24

(Prof. Renu Shukla)
Supervisor

Dr. Renu Shukla
Professor & Incharge
A.I.H.C. & A. Department
Kanya Gurukul Campus,
Dehradun (Uttarakhand)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार

H.O.D.'S DECLARATION

The Ph.D. thesis submitted by **Sarika Dubey** in the subject of Ancient Indian History, Culture and Archaeology under the supervision of **Prof. Renu Shukla** is hereby forwarded for evaluation for the award of the Degree of Doctor of Philosophy of Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar.

It is also certified that the candidate has made pre-submission presentation before DRC and fulfills necessary residency requirement of full time Ph. D. Programme as per the rules of the University.

Date : 20-8-24

(Prof. Prabhat Kumar)

Head Of Department

Head
Department of Ancient Indian History, Culture and Archaeology
Gurukul Kangri Vishwvidhyalaya, Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ3म्
गुरुकुल कांगड़ी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार- 249404
Gurukula Kangri (Deemed to be University), Haridwar - 249 404

CERTIFICATE OF PLAGIARISM CHECK

1. Name of the Research Scholar	:	SARIKA DUBEY
2. Course of Study	:	Ph. D.
3. Title of the Thesis	:	पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया (छठी शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं शताब्दी ईस्वी)
4. Name of the Supervisor	:	Prof. Renu shukla
5. Department /Subject	:	Department of Ancient Indian History, Culture & Achaeology
6. Acceptable Maximum Limit	:	10%
7. Percentage of Similarity of Contents Identified	:	1%
8. Document Number	:	2186810
9. Software Used	:	DrillBit
10. Date of Verification	:	31-07-2024

Renu 20/08/24

Signature of the Supervisor
(Seal)

Dr. Renu Shukla
Profes... & Incharge
A.I.H.C.A. Department
Kanya Gurukul Campus,
Dehradun (Uttarakhand)

Signature of the Scholar

Head of the Department
(Seal)

Head
Department of Ancient Indian History,
Culture and Archaeology
Gurukul Kangri Vishwvidhyalaya, Haridwar

20/8/24

Coordinator, Shodhganga
(Seal)

Co-ordinator, Shodhganga
Gurukul Kangri (Deemed to be University)
Haridwar - 249404 (Uttarakhand)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

DrillBit

The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language Hindi

Submission Information

Author Name	Sarika dube
Title	पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया
Paper/Submission ID	2186810
Submitted by	9927884477sk@gmail.com
Submission Date	2024-07-31 11:22:21
Document type	Thesis

Result Information

Similarity **1%**

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आभार

प्रस्तुत शोध -प्रबन्ध के सम्पादन में अनेक विद्वानों तथा सहयोगी जनों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिनकी मैं हृदय से आभारी हूँ। शोध का कार्य एक ऐसा कार्य है जो बिना सहयोग के नहीं हो सकता। इसी क्रम में मैं सर्वप्रथम अपने शोध निर्देशिका प्रो.रेनु शुक्ला मैम की विशेष रूप से आभारी रहूंगी ,जिनके अमूल्य मार्गदर्शन और प्रेरणा के बिना यह शोध संभव नहीं होता। आपके ज्ञान और अनुभव ने मुझे इस विषय में गहन समझ विकसित करने और एक सफल शोध कार्य पूरा करने में मदद की। मैं उन सभी मूल्यवान सुझावों और प्रतिक्रियाओं के लिए भी आभारी हूं जो आपने मुझे शोध प्रक्रिया के दौरान प्रदान किए। आपकी सकारात्मक आलोचना और प्रोत्साहन ने मुझे सदैव अपने कार्य को अच्छा करने हेतु प्रेरित रखा और इसे बेहतर बनाने में मदद की। प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ आपके ही कुशल निर्देशन और सहयोग का परिणाम है।

इसके अलावा, मैं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष प्रो.राकेश कुमार शर्मा, वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. प्रभात कुमार सर को धन्यवाद देती हूँ जिनका सहयोग सदैव प्राप्त हुआ। तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो.देवेंद्र कुमार गुप्ता सर मुझे सतत प्रोत्साहित करते रहे, उनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करती हूं। डॉ. दिलीप कुशवाहा सर, डॉ. हिमांशु पंडित सर के प्रति भी मैं आभार व्यक्त करती हूं, एवं गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक सभी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनका प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहयोग रहा। विश्वविद्यालय के केन्द्रीय कार्यालय के श्री पंकज कौशिक जी, श्री हेमन्त सिंह नेगी जी, श्री कपिल जी व श्री नवीन जी की मैं आभारी हूँ, जिन्होंने शोध कार्य की सम्पूर्ण अवधि में कार्यालयीय कार्यों में मुझे सुगमता प्रदान की।

इसके अतिरिक्त मैं डी.ए.वी. पी.जी.कॉलेज देहरादून के सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष डॉ. वी.के. दीक्षित सर तथा डी.बी.एस पी.जी.कॉलेज देहरादून की सेवानिवृत्त प्रो. विदुला दीक्षित मैम की आभारी हूँ जिनका सहयोग सदैव प्राप्त हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे साथी शोधकर्ता और मित्र डॉ. रचना शर्मा, डॉ. ज्योति राय, डॉ. भजमन बाग , प्रभाशिनी शुक्ला , डॉ. गौरव सिंह भदौरिया इन सभी का मुझे निरंतर सहयोग मिलता रहा।

कोई भी शोध पुस्तकालय के बिना असंभव है, मेरे अध्ययन के दौरान, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून की पुस्तकालय अध्यक्ष रसना मैम और कविता मैम आपने सदैव मेरी पुस्तकीय आवश्यकताओं का ध्यान रखा और मुझे हर संभव सहायता प्रदान की। देहरादून परिसर में कार्यरत अयोध्या प्रसाद जी (मंथा भैया) के कार्यालयीन सहयोग हेतु आभार ज्ञापित करती हूँ।

इस यात्रा में, मेरे परिवार ने मेरा हमेशा साथ दिया है और मेरा समर्थन किया है। उनका प्रेम और समर्थन मेरे लिए असीमित मूल्य का है। वे मेरे लिए समय निकालकर मेरे पास हमेशा रहे और मुझे प्रेरित किया कि मैं अपने लक्ष्य को पूरा कर सकूँ। उनका यह समर्थन मेरे लिए बहुत महत्वपूर्ण था और है। अपने माता-पिता श्रीमती माधुरी दुबे एवं श्री एस.डी. दुबे,पति डॉ विन्देश कुमार द्विवेदी,बहन शिफाली और भाई सौरभ, एकांश, शिवांग सहित सभी स्नेही परिजनों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। मैं अपने पति और बहन की विशेष रूप से आभारी हूँ जो मेरे सपनों को साकार करने में मेरे साथी रहे हैं।

मेरे जुड़वाँ बच्चे ऐहिका और एकाक्षर भले ही आप दोनों अभी केवल 3 साल के हैं, आपने मेरे जीवन में जो त्याग किया है, उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकती। जब मैंने पीएचडी यात्रा शुरू की, तब आप बहुत छोटे थे, और आपको मेरा ध्यान और प्यार कम मिला। आपकी मासूम मुस्कान और प्यारी आँखें ही वो प्रेरणा थीं जिसने मुझे आगे बढ़ने में मदद की। आपने इस यात्रा में मेरा हर कदम पर साथ दिया है, और मैं आपके बिना इसे कभी भी पूरा नहीं कर सकती थी।

यह शोध यात्रा मेरे लिए एक अविस्मरणीय अनुभव रही है और मैंने इससे बहुत कुछ सीखा है। मेरे समस्त प्रयासों के बावजूद भी ग्रन्थ में रह गयी कमियों के लिए मैं विद्वज्जनों की क्षमा प्रार्थी हूँ और उनके सुझावों एवं मार्गदर्शन की आकांशा रखती हूँ।

सारिका दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन	i-iv
अध्याय 1 : प्रस्तावना: पश्चिमोत्तर भारत का भौगोलिक व ऐतिहासिक परिचय	1-25
अध्याय- 2 : पश्चिमोत्तर भारत में विदेशियों का आगमन एवं शासन	26-82
अध्याय- 3 : सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां	83-96
अध्याय- 4 : पश्चिमोत्तर भारत में सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया	97-184
अध्याय- 5 : उपसंहार	185-192
सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	193-209
चित्र-संकलन	v-xviii

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-सूची

मेउस की मुद्राएं	v
एजेज प्रथम की मुद्राएं	v
राजुल की मुद्राएं	vi
भूमक की मुद्राएं	vi
नहपान की मुद्राएं	vii
कुजुल कदफिसस की मुद्राएं	vii
हुविष्क की मुद्राएं	viii
सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भ	ix
मसर्ह शेर की पाषाण मूर्ति	x
हखामनी दरबार में भेंट ले जाते भारतीय	x
वर्तमान काबुल से प्राप्त हुई हखामनी मुद्रा	xi
मेनाण्डर द्वारा प्रचलित मुद्रा	xii
चष्टन की सिरविहीन मूर्ति	xii
शक काल की मुद्राएं	xiii
विम कुषाण कालीन देवताओं की मुद्राएं	xiii
कनिष्क की मुद्रा	xiv
मथुरा कला की यक्ष की मूर्तियां	xiv
गांधार कला की मूर्ति	xv
गांधार कला की बोधित्सव की मूर्ति	xvi
विम कदफिसस की मुद्राएं	xvii
मिहिरकुल की मुद्रा	xvii
तोरमाण की मुद्रा	xviii

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोधग्रंथ में पश्चिमोत्तर भारत में छठीं शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं सदी तक भारत आये विदेशियों तथा भारतीय समाज तथा संस्कृति के मध्य हुए परस्पर सम्मिलन की प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों की सहायता से व्याख्या की गयी है। हमारे प्राचीन महाकाव्य *रामायण*, *महाभारत* तथा पुराण भारत के इतिहास को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है। जैन तथा बौद्ध विद्वानों द्वारा रचित पुस्तकें बाण, भास, कालिदास, कल्हण आदि की कृतियाँ तथा यवन लेखकों हेरोडोटस, जस्टिन, प्लूटार्क, एरियन, स्ट्रेटो आदि द्वारा लिखित इतिहास से भी तत्कालीन इतिहास के विषय जानकारी प्राप्त होती है। विदेशी शासकों द्वारा, अंकित अभिलेख उनके द्वारा प्रचलित की गयीं मुद्राएं तथा उनके द्वारा प्रयोग की गयी उपाधियों से पारस्परिक सांस्कृतिक सम्मिलन की जानकारी प्राप्त होती है। मुद्राओं का अध्ययन मुख्यतः धार्मिक सम्मिलन की प्रगाढ़ता को दर्शाता है। भारतीय वास्तुकला तथा मूर्तिकला पर विदेशी प्रभाव मुख्य रूप से परिलक्षित होता है।

छठीं शताब्दी ईसापूर्व भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण सदी है जो न केवल सिंधु घाटी सभ्यता के पश्चात हुए द्वितीय नगरीकरण के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण था अपितु बौद्ध तथा जैन धर्म के उद्भव का भी काल था। जहाँ एक ओर मध्य भारत केन्द्रीयकरण की ओर बढ़ रहा था तो वहीं दूसरी ओर पश्चिमोत्तर भारत में केंद्रीय शक्ति का अभाव था। पश्चिमोत्तर भारत की यह स्थिति बाह्य शक्तियों के लिए अनुकूल थी। इसका लाभ उठाते हुए भारत पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए। कुछ विदेशी शक्तियों ने यहाँ लम्बे समय तक शासन किया और धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति से उनका तालमेल स्थापित हुआ।

प्राचीन भारत में शासन करने वाली विभिन्न विदेशी शक्तियों ने भारत में शासन करने के साथ -साथ किस प्रकार यहाँ के सांस्कृतिक परिदृश्य को समझा, अपनाया और किस प्रकार उस पर अपना प्रभाव डाला इसे समझना और उसका विश्लेषण करना ही शोध प्रबंध का उद्देश्य है। इस हेतु शोधग्रंथ को ५ अध्यायों में विभक्त किया गया है। जो इस प्रकार है -

पश्चिमोत्तर भारत के सीमांत प्रदेश में स्थित होने के कारण एक ओर इस क्षेत्र का भौगोलिक महत्त्व बढ़ जाता है। दूसरी ओर भू-संरचना एवं भू-दृश्यों में लघु पहाड़ियों एवं नदियाँ इस प्रदेश को दुर्गम क्षेत्र बना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देती है। गंगा के मैदानी भागों की तुलना में यह क्षेत्र कम उर्वर है । अतः यह राजनीतिक शक्तियों के लिए एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र भी रहा है । यह क्षेत्र स्थलमार्ग से बाहरी शक्तियों के आने के लिए सुगम होने के कारण, उनका पहला निशाना भी बना । इस क्षेत्र के छोटे - छोटे राज्यों के कमजोर होने के कारण यहाँ लगातार आक्रमण हुए ।

द्वितीय अध्याय में छठीं शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं सदी तक पश्चिमोत्तर भारत से विदेशियों का आगमन तथा उनके शासन के विषय उल्लेख किया गया है। इस अध्याय में सर्वप्रथम हखामनी के विषय में उल्लेख किया गया है। हखामनी वंश के प्रतापी सम्राट साइरस महान का भारत में आना तथा भारत के कतिपय क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित करने का विवरण दिया गया है। साइरस के उपरांत दारा प्रथम तथा क्षयार्ष के शासन सम्बन्धी विषयों का उल्लेख किया गया है। हखामनी वंश के अन्य शासक कमजोर सिद्ध हुए तथा अंततः सिकंदर ने दारा तृतीय को पराजित कर भारत पर आक्रमण किया। इस अध्याय में सिकंदर के भारत पर आक्रमण तथा उसकी विजयों के विषय में वर्णन किया गया है। भारत पर द्वितीय यवन आक्रमण बख्त्री-यवनों ने किया था। इस द्वितीय यवनों का भारत पर राजनीतिक तथा सामाजिक रूप से व्यापक प्रभाव पड़ा था । इसके उपरांत इस अध्याय में भारत आये पह्लव की विवेचना की गयी है । गोण्डोफर्नीज इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था । पहलव के पश्चात शक शासन का विवरण इस अध्याय में किया गया है। उत्तरी तथा पश्चिमी शक क्षत्रपों के शासन के विषय में भी वर्णन किया गया। इसके पश्चात कुषाण वंश के शासन का विवरण प्रस्तुत किया गया है। कुषाण वंश के महान सम्राट कनिष्क के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। हूणों के शासन का वर्णन इस अध्याय के अंतिम चरण में किया गया है।

तृतीय अध्याय का विवेच्य विषय ''सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां'' हैं । इतिहास के दीर्घकालखंडों में उत्तरापथ की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन होते रहा है। यह भारत के केन्द्रीय सत्ता के अधीन बहुत कम समय तक रहा है। यहाँ एक मजबूत प्रशासनिक तंत्र एवं कानून-व्यवस्था लागू करना मुश्किल था। इसलिए लंबे समय तक कबीलाई ढांचे के रूप में छोटे-छोटे गणतंत्र एवं राजतंत्र मौजूद थे और राजनीतिक केन्द्र के रूप में बड़े नगरों का विकास नहीं दिखता है। राजनीतिक अस्थिरता का एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमुख कारण इस क्षेत्र का सीमांत प्रदेश में स्थित होना था। जिसके कारण बाह्य शक्तियों के आने का भय सदैव बना रहता था। दूसरी ओर छोटे-छोटे राज्यों के बीच आंतरिक युद्ध की स्थिति बनी रहती थी।

इस क्षेत्र पर सिकंदर के आक्रमण ने एक नई राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया। जो कालांतर में उसके उत्तराधिकारियों द्वारा स्थापित की गयी।

इसके बाद पश्चिम के देशों से भारत के संबंध और विकसित हुए। इस अध्याय में बताने का प्रयास किया गया है कि कहीं न कहीं वर्तमान पश्चिमोत्तर क्षेत्र (आंशिक पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान) की राजनीतिक स्थिति प्रकारांतर से चली आ रही व्यवस्था एवं कार्य शैली का ही एक रूप है। जिसमें विपरीत राजनीतिक और पारिस्थितिकीय संकट के बावजूद भी समाज ने चुनौतियों को स्वीकार किया।

इस अध्याय में हम पारसियों के आगमन से लेकर हूणों के आगमन तथा उनका भारतीय संस्कृति में किस प्रकार सम्मिलन होता गया और उसके परिणामस्वरूप किस प्रकार के परिवर्तन हुए इसकी चर्चा है। भारत में विदेशियों के आगमन के अनेक सकारात्मक परिणाम हुये। पश्चिम भारतीय शकों ने संस्कृत भाषा को समृद्ध करने मे महत्वपूर्ण योगदान किया। यवनों एवं शकों ने दानों को लिखने की परंपरा डाली जिसे बाद में भारतीयों ने भी अपनाया। इस परंपरा से दान कार्यों को प्रोत्साहन मिला। बौद्ध धर्म एवं भागवत धर्म को विश्व के अनेक देशों में लोकप्रिय बनाने में भी इन विदेशी शासकों का अभूतपूर्व योगदान रहा। हिन्द-यवन शासक मेनाण्डर, अगाथोक्लीज , यवन हेलियोडोरस एवं कुषाण शासक कनिष्क इसके उदाहरण हैं, जिन्होंने बौद्ध धर्म एवं भागवत धर्म के प्रति श्रद्धा रखकर एवं उसे संरक्षण देकर उसका प्रचार-प्रसार किया। विदेशी आत्मीकरण की प्रक्रिया की सर्वाधिक महत्ता इस तथ्य में निहित है की उनके आगमन ने आश्चर्यजनक तीव्रता के साथ बढ़ती जा रही संकीर्ण विचारधाराओं एवं परंपरागत व्यवस्था की जटिलता के स्थान पर एक बार फिर भारतीय समाज में उदारवादी विचारधाराओं को पुष्ट करने एवं उनका महत्व स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शोध के अंतिम अध्याय में विदेशियों का भारत में आगमन क्यों हुआ, आगमन के पश्चात् उनका कहाँ - कहाँ शासन था और अपने शासन के क्रम में उन्होंने किस तरह भारत की संस्कृति को आत्मसात किया उसका संक्षिप्त वर्णन है। अंतिम अध्याय के रूप में उपसंहार के अंतर्गत पश्चिमोत्तर भारत के राजनीतिक विकासक्रम की समीक्षा की गई है। कालक्रम के परिपेक्ष्य में यहाँ के बदलते विविध आयामों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्लेषण किया गया है। चूँकि यह शोध विभिन्न साक्ष्यों पर आधारित है अतः भिन्न-भिन्न मतान्तरों के बीच समन्वय का प्रयास किया गया है। राज्यनिर्माण के प्रारंभिक चरण में (600 ई0पू0) पश्चिमोत्तर भारत में प्रशासनिक तंत्र मजबूत था, परन्तु धीरे-धीरे इस पर विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों का प्रभाव शुरू हो गया था और ये स्वतंत्र रूप लेने लगे थे। अतः इस ओर से कई संस्कृतियों, जातियां, आक्रमणकारियों, विचारों, वस्तुओं इत्यादि का प्रवेश होता रहा था, जो दीर्घकालिक रूप में भारत को प्रभावित करती रही है। फिर भी आश्चर्यजनक बात यह है कि बहुसंख्यक संस्कृतियों के भारत में प्रवेश एवं प्रभाव के बावजूद भी यहाँ के लोगों ने अपनी मौलिक पहचान को बनाए रखा। अपने दर्शन, धर्म, साहित्य, स्थापत्य, कला में देशी तत्वों को मिटने नहीं दिया। अपितु कुछ नए विचारों,विश्वासों ,कलात्मक शैलियों तथा सामाजिक अभ्यासों के द्वारा उन्हें और समृद्ध किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय 1

प्रस्तावना: पश्चिमोत्तर भारत का भौगोलिक व ऐतिहासिक परिचय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय 1

प्रस्तावना: पश्चिमोत्तर भारत का भौगोलिक व ऐतिहासिक परिचय

भारतवर्ष, अपनी समृद्ध और प्राचीन सभ्यता के लिए हमेशा से विख्यात रहा है। यहाँ के लोग न केवल अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहरों के प्रति गर्व महसूस करते हैं, अपितु उन्होंने इसे आज के समय में भी जीवंत रखा है। भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि यहाँ पर विभिन्न धर्म, भाषा, और संस्कृतियों का आपसी सम्बन्ध सामंजस्यपूर्ण रहा है। यहाँ की संस्कृति और विचारधारा न केवल भारतीयों को, बल्कि विदेशियों को भी प्रभावित करती रही है। भारतीय समाज की अवधारणा इसकी बहुआयामी संस्कृति के बिना असंभव है। भारत सदैव विश्व की विभिन्न सभ्यताओं के संपर्क में रहा है फिर भी इसकी भौगोलिक पृथकता के कारण यहाँ की सभ्यता पर विदेशियों का प्रभाव कम अपितु उन पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ा। विदेशियों के भारत में आने से भारतीय समाज और संस्कृति का नए और विविध पहलुओं से परिचय हुआ। विदेशी प्रभावों का समावेश, जो अक्सर भारतीय संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में दिखाई देता है, न केवल उसे विस्तार देता है, बल्कि उसे संवारता है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति ऐसे अनूठे सम्मिलन का परिणाम है जिसमें भारतीय और विदेशी संस्कृतियों का मिश्रण है। यही कारण है कि भारत की सभ्यता तथा संस्कृति में विदेशी तत्वों की पहचान संभव नहीं है क्योंकि भारतीय तथा विदेशी संस्कृतियां आपस में घुल मिल गयी और उन्होंने एक नया स्वरुप धारण कर लिया है।

भारतीय संस्कृति का ये स्वरुप एक लम्बी विकास प्रक्रिया का परिणाम है जिसमें इतिहास के विभिन्न चरणों में अनेक देशों से आने वाली जातियों के योगदान का समावेश है।[1] भारत का नाम 'इण्डिया'[2] तथा मुख्य धर्म 'हिन्दू'[3]- यह दोनों ही शब्द क्रमशः ईरानियों तथा यवनों द्वारा दिए गए हैं। भारतीय संस्कृति में अनेक समुदायों की जीवन शैली समायोजित एवं समाकलित हुई, तथापि भारतीय संस्कृति अपनी विशिष्ट पहचान के साथ अक्षुण्ण बनी रही।।[4]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का लम्बे समय से विश्व के अन्य क्षेत्रों से सम्बन्ध रहा है। सर्वप्रथम भारत का विदेशियों से संपर्क व्यापारिक व धार्मिक प्रयोजन से हुआ।[5] मौर्य शासन के प्रादुर्भाव से पूर्व हखामनी वंश ने साम्राज्य विस्तार की लालसा से भारत पर आक्रमण किया था[6] और मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत में सार्वभौम सत्ता का पुनः अभाव हो गया, जिसका लाभ बाह्य शक्तियों ने उठाया और वे पश्चिमोत्तर भारत की तरफ से भारत में प्रविष्ट हुए। इनमें मुख्यतः यवन, शक-पहलव तथा कुषाण थे।[7] भारत उत्तर में हिमालय से और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में खुले समुद्र से घिरा है। उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में पहाड़ियों की श्रृंखलाएँ हिमालय की मुख्य श्रृंखला को समुद्र से जोड़ती हैं।[8] छठीं शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं शताब्दी के मध्य विदेशियों का आगमन प्रायः पश्चिमोत्तर भारत की दिशा से हुआ था।[9] उनके आगमन, शासन तथा सम्मिलन की प्रक्रिया को समझने हेतु भारत तथा पश्चिमोत्तर भारत की भौगोलिक परिस्थितियों को समझना आवश्यक हो जाता है।

भारत के इतिहास के अध्ययन में भौगोलिक अवयवों का महत्त्वपूर्ण योगदान सर्वस्वीकृत है। प्राचीन भूगोल का अध्ययन इतिहास एवं भूगोल दोनों ही विषयों के लिए उपयोगी है। भौगोलिक अवधारणाओं और प्रक्रियाओं को समझकर, हम ऐतिहासिक घटनाओं और प्रक्रियाओं के पीछे के कारणों को समझ सकते हैं।किसी भी स्थान के भौगोलिक अध्ययन में ऐतिहासिक भूगोल का ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

1.1 भारत की भौगोलिक परिस्थिति

हमारे देश का ऐतिहासिक नाम भारतवर्ष है, प्राचीन भारतीय विचारकों द्वारा इस नाम की निरुक्तियाँ विभिन्न दृष्टिकोण से की गयी है। वेदव्यास द्वारा रचित *महाभारत* के अनुसार दुष्यंत तथा शकुंतला के पुत्र भरत के नाम पर इस भूमि का नाम भारतवर्ष (भरत का देश) पड़ा।[10] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार भरत चक्रवर्ती राजा थे, जिन्होंने चारों दिशाओं को जीत कर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की तथा अश्वमेध यज्ञ संपन्न किया।[11] मत्स्य पुराण की एक अनुश्रुति के अनुसार मनु द्वारा प्रजा का भरण-पोषण करने और उन्हें जन्म देने के कारण (जो आदि प्रजापति तथा धर्म और न्याय के व्यवस्थापक थे) तथा जिस भू भाग पर उनकी व्यवस्था, प्रचलित थी, उसे भारतवर्ष कहा है।[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भागवत तथा जैनियों की परम्परा के अनुसार भगवान ऋषभदेव के पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र भरत जो कि महायोगी तथा अत्यंत गुणवान थे उनके नाम पर इस भूमि का नाम भारतवर्ष पड़ा।[13] इन सभी अनुश्रुतियों में भारतवर्ष का नाम रखने का कारण न तो स्पष्ट है और न ही संतोषप्रद है। ऐतिहासिक तथ्य इस दिशा में इंगित करते हैं कि वैदिक आर्यों की भरत जाति के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।[14] यह जाति उस समय की राजनीतिक शक्तियों तथा वैदिक साहित्य और सभ्यता के विकास में अग्रणी थी। भरत जाति के द्वारा प्रसारित संस्कृति से प्रभावित सम्पूर्ण देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

पश्चिमोत्तर भारत की भौगोलिक परिस्थितियों के निर्धारण में सिंधु नदी का विशेष महत्त्व है। यहाँ तक कि भारतवर्ष हेतु प्राचीनकाल में प्रयुक्त 'इंडिया' शब्द जो कि पारसियों द्वारा दिया गया सिंधु नदी या Indus नाम से व्युत्पन्न है।[15] इसी प्रकार सिंधु से भारत के लोगों को हिन्दू कहा गया। चीन निवासी भी शिन- तूह (shin tuh) या सिंधु को ही भारत का प्राचीन नाम जानते थे।[16] ऋग्वेद में इसे नदियों का देश कहा गया है।[17] धारयद्वासु के पर्सिपोलिस और नक्श- ए -रुस्तम के प्रसिद्ध अभिलेखों में सिंधु तथा उसकी सहायक नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश को "हिंदू" नाम से सम्बोधित किया गया है।[18] हेरोडोटस द्वारा इसे इंडिया कहा गया है जो पारसीक साम्राज्य का बीसवां प्रान्त था। किन्तु यह विचारणीय है कि वैदिक सप्तसैंधव तथा पारसीक 'सिंधु' केवल पश्चिमोत्तर भारत के एक विशेष भू भाग को लक्षित करते थे। हेरोडोटस द्वारा प्रयुक्त शब्द 'इंडिया' पहले से ही व्यापक अर्थ धारण करता जा रहा था क्योंकि इनके द्वारा दक्षिण में रहने वाले उन भारतीयों का भी उल्लेख किया गया है जो कभी भी पारसियों के अधीन नहीं रहे।[19] परन्तु अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के समय तक भी जनसाधारण में यह नाम प्रचलित नहीं हुआ। 1947 ईस्वी में राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त होने पर गणतांत्रिक सरकार द्वारा देश का नाम 'भारत' स्वीकार किया गया।

किसी भी देश की सीमा को हम दो दृष्टियों से देख सकते हैं प्राकृतिक तथा राजनीतिक। प्राकृतिक सीमाओं के विषय में यवनों के ज्ञान से भी समझ सकते हैं, वो भारत को एक विषम बाहु चतुर्भुज के रूप में जानते थे जिसकी पश्चिमी सीमा सिंधु नदी थी, उत्तरी सीमा में पहाड़ थे तथा पूर्व व दक्षिण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल समुद्र थे।[20] इस प्रकार भारत की सीमाएं प्राकृतिक रूप से स्पष्ट थी तथा यह सीमाएं एक उपमहाद्वीप के रूप में देखी जा सकती थी।

इसके अतिरिक्त प्राचीन भारत के भूगोल के विषय में वैदिक साहित्य, ब्राह्मण-ग्रंथों, उपनिषदों, धर्मसूत्रों, धर्मशास्त्रों, महाकाव्यों एवं पुराणों प्राचीन भारत विषयक भौगोलिक सूचनाएं प्राप्त होती हैं। उनमें कुछ ऐसे भी अध्याय हैं जो न केवल भारत के विभिन्न भूभागों का वरन् उसकी नदियों, पर्वतों, झीलों, वनों, मरुस्थलों, नगरों, देशों एवं जातियों का भी यथार्थ विवरण प्रस्तुत करते हैं। *महाभारत* के तीर्थयात्रा, दिग्विजय एवं जम्बूखण्डविनिर्माण पर्व भौगोलिक सूचनाओं से संपन्न है।[21] पुराणों के *भुवनकोष, जम्बूद्वीप वर्णन, कूर्मविभाग खण्ड, वृहत्संहिता, पराशरतंत्र* और *अथर्वपरिशिष्ट* मूल्यवान भौगोलिक सूचनाओं के संकलन के लिए समानरूप से महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन भारतीय भूगोल के अध्ययन के लिए पाणिनि की *अष्टाध्यायी*, पतञ्जलि का *महाभाष्य*, कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* और *आदि ग्रन्थ अत्यंत उपयोगी हैं।*

1.2 पुराणों में वर्णित भारत

विभिन्न पुराणों के भौगोलिक विवरण लगभग समान हैं और पुराणों की पुनरावृति एक से दूसरे में हुई है। जिसमें अंतर बस इतना है की कहीं किसी बृहत विवरण को एक लघुत्तर विवरण के रूप में किया गया है। उदाहरणतः *वायु*, *मत्स्य* एवं *मार्कण्डेय* पुराणों की सूची बृहत है, जब कि *विष्णु पुराण* की बहुत संक्षिप्त है।[22] देशों एवं जातियों की पौराणिक तालिकाएँ *महाभारत* में भी कभी-कभी अधिक विस्तृत रूप में प्राप्त होती है। *महाभारत* के भीष्मपर्व में दिया गया भारत देश का विवरण पुराणों में दिए विवरण के समान है,परंतु कुछ स्थितियों में अतिरिक्त सूचनाएँ भी जोड़ी गयी हैं।[23] *विष्णु पुराण*[24] और *वायु पुराण*[25] में भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट है वह देश जो समुद्र (हिन्द महासागर) के उत्तर में और बर्फीले पर्वतों (हिमालय) के दक्षिण में स्थित है, जहाँ सात मुख्य पर्वत श्रृंखलायें हैं, यथा महेन्द्रपर्वत, मलय, सह्याद्रि, शुक्तिमान (गोंडवाना के पहाड़) विंध्य और पारियात्र (अरावली तक पश्चिम विंध्य पर्वत श्रेणियां) हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष का भौगोलिक खंड प्राचीनकाल से ही समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में माना जाता रहा है। परन्तु कई प्राचीन ग्रंथों में इसका विस्तार इससे भी अधिक बताया गया है। मत्स्य पुराण[26] के अनुसार भारतवर्ष के नौ भेद हैं जो समुद्र के बीच में आ जाने से अलग हो जाते हैं। वे भेद इस प्रकार हैं इन्द्रद्वीप, कशेरुमान, ताम्रपर्णी, गभस्तिमान, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप और नौवां सागर से घिरा भारत है। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत के लोग व्यापार, एवं राज्य विस्तार हेतु सुदूर देशों तथा द्वीपों में गए जहाँ उनके बस जाने के कारण उन स्थानों की गणना भारतवर्ष में की जाने लगी। परन्तु वह भारतवर्ष न होकर उसकी औपनिवेशिक और सांस्कृतिक सीमा है जिसे 'वृहत्तर भारत' के रूप में देखा गया है। अतः वर्तमान भौगोलिक क्षेत्र में फैला हुआ यह भारतवर्ष, सम्पूर्ण भारत नहीं है क्योंकि कुल नौ भेद में आठ भेद तो वृहत्तर भारत के देश, द्वीप और प्रान्त हैं जो भारतीय महाद्वीप को परिवेष्ठित किये हुए हैं।

1.3 संस्कृत तथा पालि ग्रंथों में वर्णित भारत

प्राचीन भारत के भूगोल की जानकारी हमें संस्कृत व पाली साहित्य से प्राप्त होती है। राजशेखर कृत *काव्यमीमांसा*[27] कालिदास कृत *रघुवंशम*[28], श्रीहर्ष द्वारा रचित नैषधीयचरित[29], दण्डिन के *दशकुमारचरित*[30], बाणभट्ट के *हर्षचरित*[31] से हमें भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। कालिदास के भूगोल ज्ञान का स्पष्ट बोध उनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है।

छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में जैन एवं बौद्ध ग्रन्थ प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति जानने की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।[32] इसके अतिरिक्त विदेशी यात्रियों के विवरण व अनेक पुरालेखीय अवशेष और साक्ष्य उपलब्ध हैं, जिनसे प्राप्त भौगोलिक जानकारी बहुत उपयोगी है।[33]

1.4 पश्चिमोत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति

भारत के सीमा निर्धारण की दृष्टि से सबसे कठिन क्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत है। यह भारतीय इतिहास के सभी कालखंडों में भिन्न -भिन्न गतिविधियों एवं परिवर्तनों का साक्षी ही नहीं रहा अपितु विदेशियों के आगमन के लिए एक सुलभ द्वार भी था। यद्यपि भारतीय और विदेशी लेखक उत्तर में हिमालय को प्राकृतिक सीमा मानते हैं पर फिर भी वो पश्चिमोत्तर भारत के सीमांकन में एकमत नहीं हैं। कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्रोतों में सिंधु नदी को ही भारत की पश्चिमोत्तर सीमा माना गया है। पश्चिमोत्तर भारत की सीमा निर्धारण से पूर्व कुछ तथ्यों पर दृष्टिपात करना आवश्यक हो जाता है। गांधार, जो आधुनिक पेशावर तथा रावलपिंडी में स्थित है,के कतिपय क्षेत्र भारतीय सीमा में नहीं अपितु ईरान में आते थे।[34] कुछ विद्वान मानते हैं कि पश्चिमोत्तर भारत में भारतीयों और ईरानियों के बीच विभाजक रेखा हिन्दुकुश पर्वत थी।[35] जबकि सिकंदर के आक्रमण के समय सिंधु नदी ही भारतीय सीमा के रूप में मान्य थी।[36] *स्ट्रेबो के भूगोल* से हमें अस्सक या अश्मक जनजाति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। स्ट्रेबो द्वारा गंडराइ देश का वर्णन किया है जबकि सिकंदर के समय के किसी भी इतिहासकार द्वारा गांधार की चर्चा नहीं की गयी है। स्ट्रेबो के अनुसार तक्षशिला, सिंधु एवं झेलम के मध्य में स्थित था। मेगस्थनीज़ जो चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में राजदूत बनकर आया था उसने मध्य भारत तक की भौगोलिक जानकारी दी है।[37] एरियन सिकंदर के एशिया अभियान के विवरण का प्रसिद्ध लेखक था। अपनी प्रसिद्ध कृति *इंडिका* में वह सिंधु नदी के पार के दो जनजातियों अष्टक और अश्वक के बारे में लिखता है। उसनें सिंधु के पूर्व के क्षेत्र को भारत की संज्ञा दी है।[38] यूनानी लेखक जो काबुल तथा उसकी सहायक नदियों की घाटी में स्थित भारतीय उपनिवेशों से परिचित थे फिर भी वे सिंधु नदी को भारत की पश्चिमी सीमा मानते थे। कुछ लेखक कोफेस (काबुल नदी) को पश्चिम की ओर से भारत की दूरतम सीमा मानते हैं।[39] काबुल के समीप रहने वाले यवन तथा पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में आधुनिक पेशावर एवं पश्चिमी पंजाब में रावलपिंडी के आधुनिक जिलों में स्थित गांधार जनों को *महाभारत* में उत्तरापथ के निवासियों में सम्मिलित किया है।[40] इससे यह सिद्ध होता है कि एक समय भारत कि सीमाओं के भीतर न केवल सिंधु के ठीक पश्चिम में स्थित देश वरन ईरानियों के आधिपत्य के उत्तर पूर्वी कोने पर स्थित देश भी थे। पश्चिम में सिंधु नदी भारत की प्राकृतिक सीमा रेखा है अतः विदेशी आक्रमण से इसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी स्वतः ही पश्चिमोत्तर भारत के शासकों की हो जाती थी, जिसमें वो असफल रहे। दूसरी ओर राजनीतिक सीमाएं सदैव ही उस पर शासन करने वाले की सीमाओं के अनुसार स्थापित की गई है थी जो प्राचीन काल में शासकों की हार-जीत के अनुसार परिवर्तित होती रहीं। छठीं शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं शताब्दी ई. तक पश्चिमोत्तर भारत की सीमाएं विदेशी शक्तियों के अनुसार परिवर्तित होती रही थी। जो इस प्रकार है-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अबेस्टेनोई -

अबेस्टेनोई, डियोडोरस के सेंबेस्टाई, कर्टियस के सेबेरकाई, ओरा सियस के सबग्राई के समानार्थक है। सिकंदर के काल में ये अवर अस्केनीज में रहते थे यहाँ गणतंत्रात्मक शासन था तथा ये सिकंदर द्वारा युद्ध में पराजित हुए थे।[41]

अलसंद -

यह सिकंदर द्वारा स्थापित यवनों का प्रमुख नगर था, गेजर (geiger) ने इसे पेरोपोमिसदोई (paropanisadae) में काबुल के निकट एलेक्जेंड्रिआ नामक नगर से समीकृत किया है।[42]

अम्बष्ठ -

अम्बष्ठों का देश निचले चिनाब पर स्थित था। *महाभारत* और *भागवत पुराण* में इसका उल्लेख है। *महाभारत* में पश्चिमोत्तर प्रान्त में एक कबीले के रुप में इनका वर्णन है। इन्होंने कौरवों की ओर से युद्ध में भाग लिया था और अर्जुन से पराजित हुए थे।[43] इनका शिवियों एवं यौधेयों से घनिष्ठ सम्बन्ध था तथा ये पंजाब के पूर्वी सीमा में रहते थे।

अरिष्टपुर -

बौद्ध साहित्य के अनुसार यह शिबि जनपद का नगर था। शिबि राज्य को पंजाब के शोरकोट प्रदेश से समीकृत किया जा सकता है। प्राचीन यूनानी लेखक पंजाब के सेबोई नामक एक क्षेत्र का उल्लेख करते हैं जो संभवतः शिबिपुर या शिवपुर ही था।[44]

अस्पेसियन देश -

ईरानी संज्ञा 'अस्प' संस्कृत शब्द 'अश्व' या 'अश्वक' की समानार्थक है। सिकंदर के समय यह बहुत छोटा राज्य था, सिकंदर के आक्रमण का सामना करने वाले ये प्रथम भारतीय थे।[45]

अद्रेष्टि देश (Adraisti) -

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह रावी के पूर्वी तट पर स्थित था। इनकी राजधानी पिम्प्रमा थी। अद्रिजगण यूनानियों के अप्रैस्टि से समीकृत माने गये हैं। अद्रेष्टि या अधृष्टगण सिकंदर की सेना से पराजित हुए थे।[46]

ओस्सडियोई -

ओस्सडियोई की पहचान संभवतः *महाभारत* में वर्णित, सिन्धु-सौवीरों एवं शिवियों से सम्बंधित है इस कबीले की ठीक भौगोलिक स्थिति नहीं निश्चित की जा सकती।[47]

आभीर देश -

अबिरिया या आभीर देश पर पश्चिमी क्षत्रपों या पश्चिमी भारत के शक राजाओं ने राज्य किया था। शक शासक रुद्रसिंह (181 ई0) के गुंड(gunda) अभिलेख के अनुसार उसके राज्य में रुद्रभूति नामक एक आभीर सेनापति था। थोड़े दिनों के बाद (भंडारकर के अनुसार 188-90 ई0 में; रैप्सन के अनुसार 236 ई0 में) आभीर जाति के ईश्वरदत्त नामक एक व्यक्ति ने महाक्षत्रप का पद धारण किया था। संभवतः इसकी पहचान ईश्वर सेन नामक आभीर राजा से की जा सकती है, जो पश्चिमी भारत का महाक्षत्रप बना था और जिसने तीसरी शताब्दी में सातवाहन राजाओं को युद्ध में हराकर महाराष्ट्र के कुछ भूभाग छीन लिये थे। ईश्वरसेन के उत्तरी महाराष्ट्र और निकटवर्ती क्षेत्र के राज्य पर सातवाहनों पर विजय के पश्चात आभीरों का अधिकार हो गया था।[48] समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तंभ लेख में पश्चिमी भारत के एक गणराज्य के रूप में आभीर देश का भी वर्णन है जो गुप्त सम्राट के साम्राज्य की सीमाओं के बाहर रहने वाली एक अर्धस्वतंत्र जाति थी।[49] आभीर शूद्रों से संबंद्ध थे, जिनकी पहचान संभवतः सिकंदर युगीन यूनानी इतिहासकारों द्वारा वर्णित सोड्राई या सोग्डाई से की जाती है। *मार्कण्डेय पुराण*[50] में उनका वर्णन बाल्हीक, शूद्रों, मद्रकों, सुराष्ट्रों तथा सिन्धु सौवीरों के साथ हुआ है जो सभी पश्चिमी भारत में स्थित थे। *महाभारत*[51] के अनुसार भी वे भारत के पश्चिमी प्रभाग में स्थित थे। *महाभारत* का यह साक्ष्य *'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी'* के लेखक एवं टॉलेमी द्वारा पुष्ट होता है। दूसरी शताब्दी ई. पू. के मध्य आभीरों पर निश्चय ही बख्त्री यवनों का आधिपत्य हो गया था जिन्होंने उनके संपूर्ण क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। जिसे टॉलेमी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंडोसीथिया कहा है और जिसमें अबेरिया या अबीरिया भी था। *मार्कण्डेय पुराण*[52] में उन्हें दक्षिणात्य जनों के साथ स्थित बतलाया गया है। *वायुपुराण*[53] में आभीरों को "दक्षिणापथवासिनः" कहा गया है।

ब्रह्मपुर -

यह अलकनंदा एवं कर्णाली नदी के मध्य का पहाड़ी प्रदेश है। यह चम्बा राज्य की प्राचीन राजधानी थी। ह्वेनसांग ने भी इसकी चर्चा की है।[54]

बाह्मणाबाद -

यूनानियों द्वारा नामांकित पेटेलीन(Patalene) का नाम उसकी राजधानी पट्टल के आधार पर हुआ था। साधारणतया पेटेलीन को सिन्धु नदी के डेल्टा से समीकृत किया जाता है और इसकी राजधानी पाटल (संस्कृत, प्रस्थल) को आधुनिक ब्राह्मणाबाद में या इसके समीप स्थित माना जाता है। डायोडोरस के अनुसार पाटल (ताउला, Tauala) का संविधान स्पार्टा के संविधान जैसा था। वहाँ ज्येष्ठकों की एक परिषद थी जिसमें व्यवस्था एवं सामान्य प्रशासन के संचालन के लिए सर्वोच्च अधिकार निहित थे। स्ट्रेबो के अनुसार सिकंदर के आक्रमण के बाद पेटलीन पर बख्त्रीयवनों का अधिकार हो गया था। कालान्तर में यह शकों या इंडो-सीथियन राजाओं के अधिकार में चला गया था।[55]

गांधार -

इस प्राचीन नगर की राजधानी तक्षशिला थी। अशोक के समय में मोग्गलिपुत्त तिस्स ने थेर मज्झन्तिक को गांधार और कश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रसार करने भेजा था।[56] गांधार में उत्तर पंजाब के पेशावर और रावलपिंडी के जिले सम्मिलित थे। गांधार नरेश पकुस्साति, मगध नरेश बिम्बिसार का समकालीन था उसने अपने मित्रता के परिचय के रूप में एक राजदूत और एक पत्र बिम्बिसार के पास भेजा था।उसने अवन्ति नरेश प्रद्योत को युद्ध में पराजित किया था। पुष्कलावती तथा तक्षशिला गांधार की प्राचीन राजधानियां जिनमें एक सिंधु नदी के पूर्व में तो दूसरी सिंधु नदी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिम में स्थित थी। जिसकी स्थापना भरत के पुत्र पुष्कर ने की थी। कुछ विद्वानों के अनुसार गांधार में कश्मीर तथा तक्षशिला के प्रदेश शामिल थे किन्तु जातकों के सन्दर्भ से इसकी पुष्टि नहीं होती। डेरियस (516 ईसा पूर्व) के बेहिस्तून अभिलेख में पारसीक साम्राज्य के अधीनस्थ एक राज्य के रूप में गदर या गांधार का उल्लेख मिलता है।[57] अशोक के पांचवे मानसेहरा शिलालेख में गांधार की चर्चा है।[58]

गन्धर्व -

महाभारत में वर्णित गन्धर्व देश को कुछ विद्वानों ने गांधार से समीकृत किया है।[59]

जेद -

पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में स्थित उण्ड (ओहिन्द) के समीप एक गांव है।[60]

मिन्नगर -

दूसरी शताब्दी ई. में यह अवर सिंध की राजधानी थी। इसकी वास्तविक स्थिति संदिग्ध है।[61] *'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी'* के अनुसार यह इंडोसीथिया की राजधानी थी। टॉलेमी ने इसे बिनगर कहा है। भंडारकर के अनुसार इसे मंदसोर से समीकृत किया जा सकता है। पेरिप्लस के लेखक ने राजा मेम्बेरस का उल्लेख किया है। (जिसे कुछ लोग नहपान से समीकृत करते हैं) [62]

मूषिक -

मूषिक या मूषक[63] लोग एक कबीले की शाखा थे जिन्हें सिकंदर के इतिहासकारों द्वारा मौसिकेनोज कहा गया है। मौसिकनोज के क्षेत्र में आधुनिक सिंध (संप्रति, पाकिस्तान में) का एक विशाल भाग था। इसकी राजधानी को सिखूर(Sikhur) जिले में स्थित अलोर(Alor) से समीकृत किया गया है। एरियन के अनुसार[64] मकदूनियाँ के आक्रांता के विरुद्ध जनविद्रोह कराने में यहाँ के ब्राह्मणों की मुख्य भूमिका थी। किंतु सिकंदर ने उन पर अचानक आक्रमण किया और उन्हें हार स्वीकार करनी पड़ी।[65] स्ट्रेबो ने इस प्रदेश के निवासियों का एक रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। मूषिकों का यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम संभवतः इसलिए पड़ा था कि उनका क्षेत्र पश्चिमोत्तर सार्थपथ के उस भाग में स्थित था जिसे मूषिकपथ कहते थे।[66] पतञ्जलि द्वारा *महाभाष्य* में वर्णित मौषिकार जन संभवतः मूषिकों से संबंधित थे।[67]

प्रायेस्ति क्षेत्र -

आक्सीकेनोस के देश के लोगों को प्रायेस्ति कहा जाता था। कनिंघम के अनुसार आक्सीकेनोस का क्षेत्र सिन्धु नदी के पश्चिम में परिवर्तीय समतल क्षेत्र में स्थित था। आक्सीकेनोज ने सिकंदर का विरोध करने की चेष्टा की थी किंतु निष्फल रहे।[68]

शंभु (सैम्बोस प्रदेश) -

यूनानी लेखकों के अनुसार सैम्बोस, मौसिकेनोस क्षेत्र के निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेश पर राज्य करते थे। इस देश की राजधानी सिन्दिमन (sindimana) थी जिसकी पहचान सिन्धु नदी के तट पर स्थित सेहवन नामक नगर से की जाती है। सैम्बोस ने सिकंदर के सम्मुख समर्पण किया था।[69]

सिन्धु-सौबीर-

सिन्धुसौवीर नाम से यह व्यंजित होता है कि सौवीर, सिन्धु और झेलम के तट पर स्थित था। यह तथ्य कि सौवीर प्रायः सिन्धु से संबंधित थे, यह निश्चित करता है कि ये दोनों जन जिन्हें कालांतर में एक ही माना जाने लगा, सिन्धु के तट पर रहते थे। इन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग लिया था। रुद्रदामन के जूनागढ़ शिलालेख में (150 ई0) आकर, अवन्ति, अनूप,अनर्त, सुराष्ट्र, स्वभ्र, मह, कच्छ, कुकुर, अपरान्त और अन्य देशों के समेत सिन्धु-सौवीर पर महाक्षत्रप की विजय का उल्लेख है।[70]

शिविपुर-

शोरकोट(shorkot) अभिलेख के अनुसार शोरकोट का प्राचीन नाम शिविपुर या शिवपुर था, जो शिबियों की राजधानी थी।[71] उत्तरापथ में स्थित शिवपुर या शिबियों के एक वीर कोटिकास्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन *महाभारत* में है। जो द्रौपदी के हरण में जयद्रथ के साथ था और उस समय सिंधु सौवीर का राजा था।[72] शिव या शिविजन इरावती एवं चन्द्रभागा नदियों के मध्य पंजाब में झंग के शोरकोट क्षेत्र में रहते थे। यह एक अत्यंत प्राचीन जाति प्रतीत होती है, जिसका उल्लेख *ऋग्वेद* में हुआ है।[73] वे दीर्घकाल तक स्वतंत्र थे, क्योंकि इनका उल्लेख सिकंदर कालीन यूनानी भूगोलवेत्ता, इतिहासकार एवं पाणिनि के भाष्यकार भी करते हैं। बाद में वे भारत के सुदूर दक्षिण में चले गये थे।[74] *ललितविस्तर* और *महावस्तु* में शिविदेश को जम्बुद्वीप के सोलह महाजन पदों में से एक बतलाया गया है।[75] अरिट्ठपुर शिवि जनपद की राजधानी थी। अरिट्ठपुर (संस्कृत, अरिष्टपुर) को संभवतः पंजाब के उत्तर में स्थित टॉलेमी की अरिस्तीबोथ्रा से समीकृत किया जा सकता है, जो संभवतः द्वारावती ही है।[76] क्षेमेन्द्र की *बोधिसत्त्वावदान कल्पलता* में शिववती नगरी का वर्णन है, जिसे शिवि देश से समीकृत किया जा सकता है। प्राचीन यूनानी लेखकों ने पंजाब में स्थित सिबोइ (Siboi) के प्रदेश का उल्लेख किया है जो शिविपुर ही है।[77]

तक्षशिला –

(चीनी, शी-शी-चेंग Shi-Shi-Cheng) तक्षशिला, गांधार जनपद की राजधानी थी। पाणिनि ने अपनी *अष्टाध्यायी* एवं पतञ्जलि ने *महाभाष्य* में इसका वर्णन किया है। अशोक के कलिंग शिलालेख में इसका उल्लेख मिलता है। मौर्य शासक बिन्दुसार के शासनकाल में उसके द्वारा तक्षशिला में, जो सदैव एक विद्रोही प्रांत था, वहां बिन्दुसार के समय हुए विद्रोह को शांत करने के लिए उसने अपने पुत्र अशोक को भेजा था और अशोक विद्रोह को दबा कर शांति स्थापना में सफल रहा था तथा प्रांताधिपति के रूप में कुमार की नियुक्ति की गयी थी। एरियन ने इस नगर को विशाल एवं समृद्ध बताया है। स्ट्रेबो ने यहाँ की भूमि की उर्वरता की प्रशंसा की है। प्लिनी ने इसे एक प्रसिद्ध नगर बतलाया है, और कहा है कि यह पहाड़ियों की तलहटी में समतल में स्थित था। तक्षशिला सुव्यवस्थित सड़कों से युक्त किसी यूनानी नगर की भाँति था। इस नगर को पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी जिले में स्थित आधुनिक तक्षशिला से समीकृत किया गया है।[78]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्यान-

यह सुपोफासुतु (Sup'ofasutu) नदी के तट पर स्थित है, जो संस्कृत की शुभवास्तु, एरिअन की सुआस्टस (Suastus), तथा आधुनिक स्वात नदी है। उद्यान में पंजकोर(Panjkora), बिजावर(Bijawar), स्वात तथा बुनीर(Bunir) के चार आधुनिक जिले सम्मिलित हैं। इसकी राजधानी का नाम मुंग-मे-ली(Mung-Me-li) या मंगला था।[79] फाह्यान के अनुसार, जो पाँचवीं शताब्दी ई0 में भारत आया था, उद्यान या वू- चेंग (Woochang) उत्तर भारत का भाग था। उद्यान का शाब्दिक अर्थ वाटिका है, जो पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) के उत्तर में शुभवास्तु जिसे अब स्वात कहा जाता है, के तट पर स्थित था। यहाँ पर बौद्ध धर्म प्रचलित था। यहाँ पर 500 संघाराम या विहार थे। उनमें रहने वाले भिक्षु बौद्ध धर्म की हीनयान शाखा के विद्यार्थी थे। बुद्ध इस देश में आये थे और यहाँ अपने पदचिह्न छोड़ गये थे। फाह्यान वू- चेंग में रुका था तथा यहाँ उसने ग्रीष्मावास किया था।[80]

बाह्लीक-

चन्द्र के मेहरौली लौहस्तंभ अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि वाह्लीक जन सिन्धु नदी के उस पार स्थित थे। कुछ विद्वान चन्द्र को समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तंभलेख में वर्णित चन्द्रवर्मन से, और कुछ लोग ससुनियाँ शिलालेख में वर्णित उसी नाम के राजा से समीकृत करते हैं। कहा जाता है कि इसने वंग देश में शत्रुओं को परास्त कर दिया था और युद्ध करते हुए सिन्धु के सात मुहानों को पार करके बाह्लीकों पर विजय प्राप्त की थी। बाह्लीक देश को वर्तमान बल्ख देश से समीकृत करने के प्रयास किया गया है। बाल्हीकों को बैक्ट्रियोइ (Baktrioi) से समीकृत किया जाना चाहिये, जो टॉलेमी के समय में अराकोशिया के निकटवर्ती प्रदेश में रहते थे।[81] *रामायण* के अनुसार बाह्लीक लोग उत्तर में रहने वाले निवासियों से संबद्ध थे। परन्तु उचित यही होगा कि बाह्लीक को पंजाब के पार स्थित किसी देश से समीकृत किया जाना चाहिये।[82]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यवनदेश-

पश्चिमोत्तर भारत के सीमांत पर स्थित यूनानियों को योन या यवन कहा जाता था। *रामायण* में शकोंयवनों के मिश्रित ओर्दु एवं हिंदुओं के संघर्ष का उल्लेख है।[83] किष्किन्धा काण्ड में सुग्रीव ने यवन-देश एवं शकों के नगरों को कुरु-मद्रों और हिमालय के बीच में स्थित बतलाया है।[84] पाणिनि ने अपनी *अष्टाध्यायी* में इसका उल्लेख किया है। वाराहमिहिर की *वृहद्संहिता* में यवन-देश को म्लेच्छों का आवास बताया गया है (म्लेच्छा हि यवनाः)।[85] गौतम बुद्ध एवं अस्सलायण के काल में किसी यवन तथा कम्बोज राज्य के अस्तित्व का साक्ष्य *मज्झिमनिकाय* से प्राप्त होता है।[86] यवन देश की ठीक स्थिति को निश्चित करना दुष्कर है।[87] प्राक युगीन किसी यूनानी (आयोनियन) उपनिवेश के अस्तित्व का अनुमान भारत के पश्चिमोत्तर सीमांत से प्राप्त मुद्राओं के साक्ष्य से लगाया जा सकता है, जो एथेन्स की प्राचीनतम मुद्रा प्रकारों से मिलती जुलती है।[88] यवनों को उत्तरापथ के अन्य जनों यथा, कम्बोज, गन्धार, किरात तथा बर्बर के साथ वर्गीकृत किया गया है। उनका वर्णन *भागवतपुराण* में भी किया गया है।[89] इनका उल्लेख अशोक के पाँचवें शिलालेख तथा बीर पुरुष दत्त के नागार्जुनीकोड अभिलेख में किया गया है। अशोक के ही पाँचवें एवं तेरहवें शिलालेखों में कम्बोजों के साथ योनों का वर्णन किया गया है।[90] वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावी के नासिक गुहालेख में गौतमी पुत्र शातकर्णि की प्रशंसा शकों, यवनों एवं पहलवों (पाथियनों) के संहारक के रूप में की गयी है तथा उसे क्षहरात राजकुल का विनाश करने वाला सातवाहन नरेश बतलाया गया है।[91] यवनदेश, डेरियस के नक्श-ए-रुस्तम अभिलेख में वर्णित आयोनिया ही है।[92]

कम्बोज-

ये प्राचीन वैदिक कबीलों में से एक है इनकी चर्चा पाणिनि की *अष्टाध्यायी*, पतंजलि के *महाभाष्य* तथा अशोक के पांचवें शिलालेख में है।[93] कंबोज की ठीक पहचान भारत के उत्तर पश्चिमी भूगोल के लिये महत्वपूर्ण है। गांधार,कपिशा, बाल्हीक और कंबोज – ये चार महाजनपद उत्तरापथ में स्थित थे। इनकी स्पष्ट भौगोलिक स्थिति अफगानिस्तान के मानचित्र में प्रदर्शित है, जिसमें मध्य एशिया और अफगानिस्तान के मानचित्र में इनकी भौगोलिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। हिंदुकुश के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर-पूर्व में कंबोज, उत्तर- पश्चिम में बाल्हीक, दक्षिणपूर्व में गंधार और दक्षिणपश्चिम में कपिशा था। आधुनिक 'पामीर' और 'बदख्शा' का सम्मिलित प्राचीन नाम कंबोज जनपद था। *महाभारत* में भी इस जनपद की चर्चा है।[94]

पुष्कलावती -

यह सिंधु नदी के पश्चिम में स्थित है तथा गांधार की प्राचीन राजधानी थी। इसे स्वात एवं काबुल नदी से पूर्व स्थित वर्तमान चारसद्दा से समीकृत किया जाता है। इस नगर की स्थापना भरत के पुत्र तथा राम के भतीजे पुष्कर द्वारा की गयी थी।[95] तारानाथ के अनुसार कनिष्क का पुत्र यहाँ रहता था।[96] वृहत्संहिता में भी पश्चिमोत्तर भारत में इस नगर की चर्चा है।[97]

सिन्ध प्रान्त अनुपजाऊ होने के कारण विदेशियों को आकर्षित नहीं करता था। इसके अतिरिक्त यहाँ से मरुस्थल पार करके भारत में प्रवेश करना नितांत कठिन था इसलिये अधिकांश विदेशी पहले पंजाब में प्रवेश करते थे, केवल शकों ने पहले सिंधु प्रदेश पर आधिपत्य स्थापित किया। एक ओर भारतीय हिन्दूकुश के पार होने वाली उथलपुथलों से तटस्थ रहते थे और इसलिये भावी विपत्ति को न समझ कर पश्चिमोत्तर प्रदेश की रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं करते थे, तो इस क्षेत्र में प्रादेशिक परम्पराओं के प्राबल्य के कारण वह संयुक्त होकर भगाने का यत्न नहीं कर पाते थे, इसलिए जब विदेशियों के पाँव सिन्धु नदी की घाटी में अच्छी तरह जम जाते थे, तब उन्हें अन्तर्वेदीय प्रदेश में प्रविष्ट होने से रोकना प्रायः असम्भव हो जाता था। उपर्युक्त भौगोलिक तथ्य ही हैं, जिनके कारण भारतीय, बाह्य शक्तियों को रोकने में प्रायः असमर्थ हो जाते थे।

प्राचीन भारत की राजनीतिक सीमाएं सदैव ही उस पर शासन करने वाले शासकों की सीमाओं के अनुसार निश्चित होती थी जो शासकों की हार-जीत के अनुसार परिवर्तित होती रहीं। छठीं शताब्दी ईसापूर्व से सातवीं सदी तक राजनीतिक सीमाएं मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत की सीमाएं विदेशियों के आगमन और जीते हुए क्षेत्रों के अनुसार परिवर्तित होती रही थी। पश्चिमोत्तर भारत के राजनीतिक परिदृश्य में हमेशा उतार-चढ़ाव बना रहा। इसके सन्दर्भ में सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया को इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध ग्रन्थ में बताने का प्रयास किया गया है, यद्यपि शोध विषय के अंतर्गत विस्तृत समयावधि एवं दीर्घ क्षेत्र का चुनाव है, फिर भी यहाँ हमें क्षेत्रविषयक विशिष्टता दिखाई पड़ती है, जो उत्तर पश्चिम भारत को शेष भारत से अलग करती है। प्रस्तुत शोधप्रबंध में पश्चिमोत्तर भारत में विदेशियों का आगमन, उनका शासन और उनका सम्मिलन इत्यादि का वृहद् विश्लेषण है। पश्चिमोत्तर भारत मात्र प्राचीन काल में ही एक विशिष्ट क्षेत्र नही रहा है अपितु इस क्षेत्र का आज भी भूराजनैतिक महत्व है। यही कारण है कि यह क्षेत्र आज भी ऐतिहासिक अध्यन्न के लिए प्रासंगिक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची :

(1) थपलियाल, यू. पी., *फॉरेन एलिमेंट्स इन एन्सिएंट इंडियन सोसाइटी*, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1979, पृ. 1।

(2) फ्लड, जी., *एन इंट्रोडक्शन टू हिंदुइज्म*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1996, पृ.6।

(3) बैरो, आई. जे., *फ्रॉम हिंदुस्तान टू इंडिया: नेमिंग चेंज इन चेंजिंग नेम्स*, साउथ एशिया: जर्नल ऑफ़ साउथ एशियाई स्टडीज, 2003, पृ. 1।

(4) *वही*, पृ. 23।

(5)सेन, एस., *ओल्ड पर्शियन इंस्क्रिप्शन्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, कलकत्ता, 1941, पृ. 94।

(6) सेन, एस., *एन्सिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइज़ेशन*, न्यू एज इंटरनेशनल, दिल्ली, 1999, पृ.116।

(7) थपलियाल, यू. पी., *पूर्वोक्त* , पृ. 22।

(8) मजूमदार, आर. सी., *भारत का वृहत इतिहास*, मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया, दिल्ली, 2009, पृ.1।

(9) तागेपेरा, आर., *साइज एंड ड्यूरेशन ऑफ़ एम्पायर्स: ग्रोथ डिक्लाइन कर्व्स,* 600 बी.सी. टू 600 ऐ. डी., सोशल साइंस हिस्ट्री, पृ. 120-123।

(10) *महाभारत*,(अनु.) पं रामनारायण शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 275।

"भरताद् भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्।

अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ॥ 131 ॥"

(11) ऐतरेय *ब्राह्मण*, सप्तम पाञ्चिका, चतुर्थ अध्याय, (अनुवाद-सुधाकर मालवीय), तारा प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी, १९८३, पृष्ठ-१३०८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(12) *मत्स्य पुराण,* 114 /5,

"अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।

भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥ 5॥"

(13) *वही*, पृ. 383।

(14) ऋग्वेद, 3/53/12।

(15) रेप्सन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वॉल्यूम 1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ. 324।

(16) लेगे(legge),जेम्स, द *ट्रेवल्स ऑफ़ फाह्यान*,ओरिएण्टल पब्लिशर, दिल्ली,1971, पृ. 26।

(17) रेप्सन, ई. जे., पूर्वोक्त, पृ. 324।

(18) *वही।*

(19) रायचौधरी, एच. सी., *स्टडीज इन इंडियन एंटीक्विटीज़*,कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1932, पृ. 81।

(20) कनिंघम, ए., द *एन्सिएंट जियोग्राफी ऑफ़ इंडिया*,त्रूबनार एंड कंपनी, लंदन, 1871, पृ.2।

(21) *श्रीमद्वाल्मीकी रामायण*, किष्किन्धाकाण्ड, 42/43।

(22) *विष्णुपुराण*, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 114।

(23) *महाभारत*, भीष्म पर्व, पृ. 599-611।

(24) *वही*, पृ. 118।

"भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान्निशामय। इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान् ॥ 6॥

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ 7॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(25) *वायुपुराण*, (अनु .) रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग , 1987, पृ. 260।

(26) *मत्स्य पुराण*,114 / 7, 8, 9

"भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्।

नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः ॥ ८

अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।"

(27) *काव्यमीमांसा*,(अनु.) गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 2007, पृ. 253-264।

(28) *रघुवंशमहाकाव्यम*, (अनु.) हरगोविंद मिश्र,चौखम्बा संस्कृत संस्थान,वाराणसी, 2007, पृ. 114-115।

(29) *नैषधीयचरितम*, (अनु.) शेषराज शर्मा,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2012, पृ. 10140।

(30) दशकुमारचरित

(31) *हर्षचरितम*, (अनु.) जगन्नाथ पाठक,चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2005, पृ. 79।

(32) लॉ,वी.सी., *जियोग्राफी ऑफ़ अर्ली बुद्धिज़्म*, त्रूबनार एंड कंपनी लिमिटेड, लन्दन, 1932, प्रथम परिच्छेद, पृ. X।

(33) रायचौधरी,एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 42।

(34) रेप्सन, ई. जे., *द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वॉल्यूम 1, पूर्वोक्त, पृ. 321।

(35) *वही* , पृ.28।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(36) लॉ, वी.सी ., *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल* (अनु .)राम कृष्ण द्विवेदी,उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ ऐकेडमी, 1972, लखनऊ, पृ. 7।

(37) मैक्रिंडल, जे . डब्लू., *एन्सिएंट इंडिया एस डिस्क्राइब्ड बाइ मेगस्थनीज़ एंड एरियन*,त्रुब्नेर एंड कंपनी,लन्दन, 1877, पृ. 7।

(38) *द इंडिका ऑफ़ ऐरियन*, (अनु) मैक्रिंडल, डव्लू, एजुकेशन सोसाइटी प्रेस,ब्यकुला (byculla), 1876, पृ. 4।

(39) लॉ, वी.सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 17।

(40) लॉ, बी.सी., *जियोग्राफी ऑफ़ अर्ली बुद्धिज़्म*, पूर्वोक्त, पृ. 49।

(41) लॉ,वी.सी., *जियोग्राफी ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया*, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ पेरिस, फ्रांस, 1954, पृ. 61 .

(42) गेजर, डब्लू ., *द महावंश*,ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, 1912, पृ. 194।

(43) *महाभारत*, द्रोण पर्व, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 290।

तं श्रुतायुस्तथाम्बष्ठो व्रजमानं न्यवारयत् ॥ ६० ॥

(44) अग्रवाल, वी . एस., *पाणिनिकालीन भारतवर्ष*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1996, पृ. 67।

(45) रेप्सन, इ .जे ., *द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*,भाग 1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन,1922, पृ. 352।

(46) *वही* , पृ. 371।

(47) लॉ, बी .सी., *इंडोलॉजिकल स्टडीज*, इंडियन रिसर्च इंस्टिट्यूट,दिल्ली, 1950, पृ. 33 .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(48) रायचौधरी,एच .सी ., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता प्रेस , कलकत्ता, 1923, पृ. 269।

(49) गुप्ता, पी.एल ., *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख* (भाग 2), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013,पृ. 19।

(50) *मार्कण्डेयपुराणम*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2009, पृ. 150।

(51) *महाभारत*, सभापर्व, श्लोक 21-25।

(52) *मार्कण्डेयपुराण*, पूर्वोक्त, पृ. 161।

(53) *वायुपुराण*, (अनु .) रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग , 1987, पृ. 329।

"अथापरे जनपदा दक्षिणापचवासिनः।पाण्डचाश्र्व केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च ॥124 ॥

सेतुका मूषिक्राश्चैव कुमना वनवासिकाः। महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ 125 ॥

अ(आ)भीराः सहचैषीका आटव्याच वराश्च ये। पुलिन्दा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥126॥

पौनिका मौनिकाश्चैव अस्मका भोगवर्धनाः। नैणिकाः कुन्तला अन्ध्रा उद्भिद्रा नलकालिकाः ॥127॥"

(54) वाटर्स, टी .,*ऑन ह्वेनसांग ट्रेवल इन इंडिया*,रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन, 1904,पृ. 329।

(55) रेप्सन, इ .जे ., पूर्वोक्त, पृ. 378-379।

(56) गेजर (Gieger) , डब्लू ., पूर्वोक्त, पृ. 82।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(57) किंग,एल .डबल्यू .,*द स्कल्प्चर एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ़ बेहिस्तून*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1907, पृ. 4, 95, 161।

(58) गुप्त, पी.एल., *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख*,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011, पृ. 21।

(59) मोतीचंद, *ज्योग्राफिकल एंड इकनोमिक स्टडीज इन द महाभारत*, उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी, लखनऊ, 1945, पृ. 115।

(60) *एपिग्रफिया इंडिका* (भाग 19), (संपा.) हीरानंद शास्त्री,आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, दिल्ली,1927, पृ. 1.

(61) लॉ , बी.सी ., *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल* (अनु .)राम कृष्ण द्विवेदी,उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ ऐकेडमी, 1972, लखनऊ, पृ. 481।

(62) मैक्रिंडल, *एन्सिएंट इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड बॉई टॉलेमी*, त्रुब्नेर एंड कंपनी, लंदन, 1985, पृ. 152।

(63) *महाभारत*, तृतीय खंड,भीष्म पर्व, पृ. 603।

"कर्णाटका महिषका विकल्पा मूषकस्तथा।

झिल्लिकाः कुंतलश्चैव सौहृदा नाभकाननः ॥"

(64) चिन्नॉक, ई. जे., *द एनाबासिस ऑफ एलेग्जेंडर*, होड्डर एंड स्टोघ्टन, लंदन, 1883, पृ. 343।

(65) रैपसन, इ .जे ., पूर्वोक्त, पृ. 377 .

(66) लाहा, बी.सी ., *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल* (अनु .)राम कृष्ण द्विवेदी,उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ ऐकेडमी, 1972, लखनऊ, पृ. 48।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(67) *महाभाष्य*, (अनु.) सुरेंद्र नाथ दासगुप्ता, इंडियन कौंसिल ऑफ़ फिलोसोफिकल रिसर्च, 1991, पृ. 413।

(68) मैक्रिंडल, जे .डब्लू., द *इन्वेजन ऑफ़ इंडिया*, आर्किबाल्ड कांस्टेबल एंड कंपनी, 1896, पृ. 159।

(69) *वही*, पृ. 404।

(70) अग्रवाल, वी . एस., पूर्वोक्त, पृ. 62-63।

(71) *एपिग्राफिया इंडिका, भाग 16*,गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया प्रेस, कलकत्ता, 1921, पृ. 16।

(72) *महाभारत, वन पर्व,अध्याय 262,(अनु.)* पं रामनारायण दत्त *शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2010, पृ. 836-840।*

(73) लॉ (law), बी.सी., *हिस्टोरिकल जियोग्राफी ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया*, पूर्वोक्त,पृ. 128।

(74) *वृहत्संहिता*,,(व्याख्याकार) पं अच्युतानंद झा, चौखम्बा विद्याभवन,वाराणसी, 2011, पृ. 120।

"कङ्कटकङ्कण वनवासिशिबिकफणिकारकोङ्कणाभीराः।

आकर वेणावर्त्तकदशपुर गोनर्दकेरलकाः ॥ 12 ॥"

(75) लॉ, बी.सी., *ए स्टडी ऑफ़ महावस्तु*, ठक्कर स्प्रिंक एंड कंपनी, कलकत्ता, 1930, पृ. 7।

(76) डे,एन. एल ., *ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ़ एन्सिएंट एंड मैंडिवल इंडिया*, लूज़ाक एंड कंपनी, लंदन, 1927, पृ. 11।

(77) *वही* , पृ. 187।

(78) कनिंघम, ए., द *एन्सिएंट जियोग्राफी ऑफ़ इंडिया*, त्रुब्नेर एंड कंपनी, लंदन, 1871, पृ. 104-105।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(79) *वही* , पृ. 81।

(80) लेगे (legge),जेम्स , *ट्रेवल्स ऑफ़ फाह्यान*, ओरिएण्टल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1971, पृ. 28-29।

(81) लॉ (law), बी.सी ., पूर्वोक्त, पृ. 225।

(82) *श्रीमद्वाल्मीकिरामायण*, (अनु.) पं रामतेज पांडेय, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2009, पृ. 856।

(83) *श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण*,भाग 1, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ. 136।

"भूय एवासृजद् घोराञ्छकान् यवनमिश्रितान्।

तैरासीत् संवृता भूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः ॥ 21 ॥"

(84) *रामायण*, किष्किन्धाकाण्ड, गीताप्रेस,गोरखपुर, 2016,पृ. 764।

"कम्बोजयवनांश्चैव शकानां यवनां पत्तानि च ॥"

(85) *वृहत्संहिता* , पूर्वोक्त, पृ. 121।

"फेणगिरियवनमार्गरकर्णप्रावेयपारशवशुद्राः ॥18॥"

(86) *मज्झिमनिकाय*, (अनु.), राहुल सांस्कृतायन, महाबोधि सभा सारनाथ, वाराणसी, 1933, पृ. 387।

(87) रायचौधरी, एच .सी., *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, कलकत्ता, 1938, पृ. 253।

(88) *जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड*, अलबेमर्ले (albemarle) स्ट्रीट,लंदन, 1895,पृ. 874।

(89) *श्रीमदभागवतम पुराणम*, (अनु.) पं रामतेज पांडेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004, पृ. 527।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(90) भंडारकर, डी. आर ., *अशोका*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता,कलकत्ता,1925,पृ. 284.

(91) गुप्त, पी.एल., *पूर्वोक्त*, पृ. 185।

(92) किंग,एल .डबल्यू ., पूर्वोक्त, पृ. 4,95,161।

(93) बरुआ,बी .एम., *अशोक एंड हिज इंस्क्रिप्शन*, न्यू ऐज पब्लिशर लिमिटेड, कलकत्ता,1946, पृ. 92।

(94) *महाभारत*, भीष्म पर्व, पृ. 603।

उत्तमाश्वदशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।

दुर्गालाः पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरंधराः ॥ 41 ॥

(95) *श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण*, (अनुवाद-रामतेज पांडेय), चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, २००९, दिल्ली, पृष्ठ-१७८७।

(96) स्मिथ, वी. ए., द *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*,चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफ़ोर्ड प्रेस,इंग्लैंड, 1924, पृ.277।

(97) *वृहत्संहिता*, पूर्वोक्त, पृ. 134।

तक्षशिलमात्तिकावतत्रहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः।

प्रस्थलमालबकैकयदाशार्णोशीनराः शिवयः ॥ 26 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय 2

पश्चिमोत्तर भारत में विदेशियों का

आगमन एवं शासन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 2

पश्चिमोत्तर भारत में विदेशियों का आगमन एवं शासन

हमारी भारतभूमि प्राचीनकाल से ही अनेक नामों तथा विशेषणों से हमारे ग्रंथों में सम्बोधित होती रही है। पुरातत्वविदों तथा इतिहासकारों के अथक परिश्रम का परिणाम है कि न केवल प्राचीन वरन प्रागैतिहासिक काल की सूचनाएं भी हमें प्राप्त होती रही है। यह सूचनाएं हमें सदैव ही गर्व की अनुभूति कराती रही है तथा हमारे गौरवशाली इतिहास से हमें परिचित कराती आयी है। भारतभूमि का सांस्कृतिक इतिहास अत्यंत प्राचीन है जिसका प्रमाण हमें अपने वेदों तथा अन्य ग्रंथों से भी मिलता है परन्तु यदि राजनीतिक इतिहास के विषय में ज्ञान प्राप्त करना है तो यह जानकारी ईसापूर्व की सातवीं शताब्दी के पूर्व एक निश्चितता के साथ नहीं मिल पाती है। सोलह जनपदों के उपरांत छठीं शताब्दी ईसापूर्व में मध्य भारत में एक सार्वभौम सत्ता का उदय हुआ जिनमें हर्यक वंश, शिशुनाग वंश तथा नन्दवंश प्रमुख थे। नन्दवंश को पराजित करके ही चन्द्रगुप्त मौर्य ने भारत में एक महान तथा विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी।[1] मगध सम्राटों ने अपने राज्य की सीमाओं को विस्तृत करने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये परन्तु यह उल्लेखनीय है की छठीं शताब्दी ईसापूर्व तक मगध साम्राज्य की विस्तारवादी नीति मध्य भारत तक ही सीमित रही। फलस्वरूप पश्चिमोत्तर भारत में मगध साम्राज्य एक स्थाई प्रभाव स्थापित करने में असफल रहा। पश्चिमोत्तर भारत इस कालखंड में अनेक छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त था, जिनमें कम्बोज, गांधार एवं मद्र महत्वपूर्ण थे। ये राज्य परस्पर संघर्षरत थे, और इन्हें एक सूत्र में बाँधने वाली मगध जैसी कोई सार्वभौम सत्ता नहीं थी। जिस कारण विदेशियों के लिए पश्चिमोत्तर भारत आकर्षण का केंद्र बना। अनेक विदेशी शक्तियों ने इस अवसर का लाभ उठाया तथा यहाँ विस्तार हेतु अपने अभियान प्रारम्भ किये। सर्वप्रथम फारस से हखामनी वंश ने पश्चिमोत्तर भारत की राजनीतिक उथल पुथल का लाभ उठाया तथा भारत पर आक्रमण किया जो भारत के राजनीतिक इतिहास में विदेशी आक्रमण की प्रथम घटना थी।[2]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालान्तर में पश्चिमोत्तर भारत की समृद्धि तथा राजनीतिक अस्थिरता के कारण अन्य बाह्य शक्तियों ने भी आक्रमण किये।

2.1 हखामनी साम्राज्य का आक्रमण

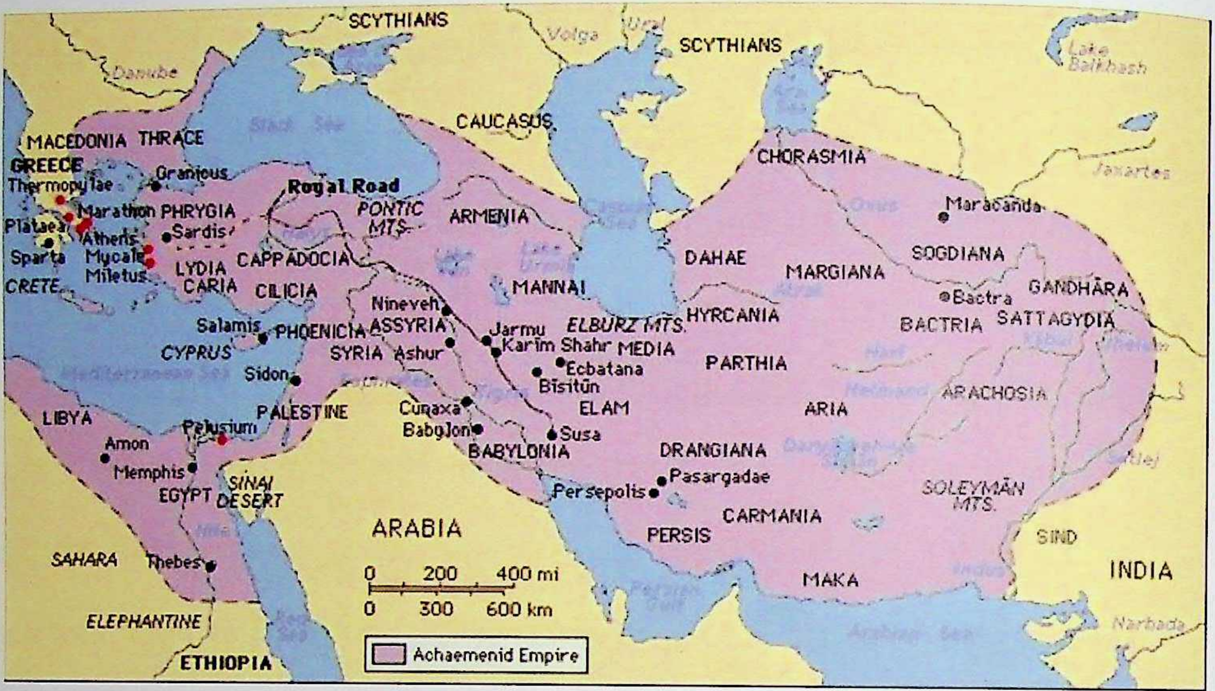

मानचित्र 1-साइरस द्वितीय का साम्राज्य

वाह्य शक्तियों में हखामनी साम्राज्य के साइरस द्वितीय (कुरुष) ने सर्वप्रथम छठीं शताब्दी ईसापूर्व में पश्चिमोत्तर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए भारतीय अभियान आरम्भ किया। साइरस द्वितीय ने ईसापूर्व 550 में हखामनी साम्राज्य क़ी स्थापना की तथा कालान्तर में पश्चिम एशिया का एक शक्तिशाली शासक बनकर उभरा (मानचित्र 1)। साइरस की अजेय सेना ने असीरिया, बेबीलोनिया, लीडिया तथा एशिया माइनर को विजित कर फारस में सम्मिलित कर लिया था।[3] रोमन साम्राज्य के पूर्व इतिहास में यदि कोई विशाल तथा महत्वपूर्ण साम्राज्य था तो वह साइरस का ही था। शक्तिशाली सम्राट साइरस द्वितीय के राज्य की सीमाएं भारत को स्पर्श करने लगी थी तथा यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि भारत भी साइरस द्वितीय के साम्राज्य विस्तार का ग्रास अवश्य बनेगा तथा पश्चिमोत्तर भारत की राजनीतिक शिथिलता उसे सहायता ही प्रदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करेगी जो अंततः सत्य ही सिद्ध हुआ। साइरस का भारत हेतु प्रथम अभियान जो कि असफल था जेड्रोसिया के मार्ग द्वारा हुआ था।[4] साइरस का द्वितीय अभियान अपेक्षाकृत अधिक सफल रहा जो कि काबुल घाटी के मार्ग से हुआ। साइरस ने घोरबंद और पंजशीर के निकट स्थित कपिशा नामक शहर को ध्वस्त किया था।[5] सिंध व काबुल के मध्य स्थित भारतीय जनजातियां अश्वक तथा अस्मक साइरस को कर प्रदान करती थी। इतिहास के अनेक विवरणों से ज्ञात होता है कि साइरस के आक्रमण का केंद्र पश्चिम भारत तक ही सीमित रहा था तथा उसने कभी भी सिंधु नदी को पार नहीं किया। साइरस ने हिन्दुकुश व गांधार क्षेत्र में भारतीय जनजातियों पर अधिकार स्थापित किया था।[6] जेनोफोन के अनुसार साइरस का साम्राज्य एरिथरीन सागर तक विस्तृत था तथा बैक्ट्रियन व भारतीय उसके शासन के अंतर्गत आते थे। एक भारतीय राजा, संभवतः गांधार का राजा पुष्करसरीन जो 519 ईसापूर्व में हखामनी साम्राज्य के आधीन हो गया था, ने उपहार के रूप में अत्यधिक धन दूतों द्वारा साइरस को भिजवाया था।[7] साइरस ने राजनीतिक चतुराई व उदारता का परिचय देते हुए बेबीलोन, सार्डिस तथा अन्य भारतीय राजाओं को पराजित करने के उपरान्त भी राज्य करने का अधिकार दिया। हेरोडोटस के अनुसार साइरस ने भारत में ड्रेंजिआना, आधुनिक सीस्तान का कुछ भाग, सत्तागयदिन(sattagydin) तथा गांधार क्षेत्र पर अधिकार स्थापित किया था।[8] फारसी दरबार के चिकित्सक के अनुसार साइरस की मृत्यु भारतीयों के साथ हुए युद्ध में घायल होने के परिणाम स्वरूप हुई थी।[9] उसकी मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र काम्बैसेस(Cambyses) सिंहासनारूढ़ हुआ। शासन सँभालने के पश्चात उसने मिस्र तथा साइप्रस की ओर अपना अभियान आरम्भ किया परन्तु पश्चिमोत्तर भारत की दिशा में किसी प्रकार का ध्यान नहीं दिया इस प्रकार काम्बैसेस के शासनकाल में हखामनी साम्राज्य का भारतीय अभियान मंद पड़ गया। काम्बैसेस की मृत्यु के पश्चात बर्डिया(Bardiya) राजा बना जिसने कुछ महीने ही शासन किया था। डेरियस ने विद्रोह कर बर्डिया को सत्ता से बाहर कर स्वयं को ईसापूर्व 522 में राजा घोषित कर दिया। उसके सिंहासन पर बैठते ही उसके राज्य के अनेक भागों में जैसे मिस्र, लीडिया, सुसिआना, बेबीलोनिया, मीडिया तथा अन्य स्थानों पर विद्रोह हो गया। परन्तु डेरियस द्वारा उन सभी विद्रोहों को सफलतापूर्वक कुचल दिया गया।[10] इन विद्रोहों को कुचलने के साथ ही डेरियस ने स्वयं को विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास में एक कुशल शासक के रूप में स्थापित कर दिया। भारतीय अभियानों में भी दारा प्रथम (डेरियस) को साइरस से अधिक सफलता मिली। फ़ारसी भाषा व कीलाक्षर लिपि में वर्णित तीन अभिलेखों बेहिस्तून, पर्सिपोलिस तथा नक्श-ए-रुस्तम से दारा प्रथम के शासनकाल के बारे में पता चलता है।

मानचित्र 2 -दारा प्रथम का साम्राज्य

बेहिस्तून अभिलेख में दारा प्रथम द्वारा विजित 23 प्रांतो का उल्लेख मिलता है। इनमें शतगु (सप्त सिंधु), ग़दर (गांधार), हरवती (अराकेसिया) , मका (मकरान तट) इत्यादि का उल्लेख मिलता है।[11] 518 से 515 ईसापूर्व में निर्मित अभिलेखों पर्सिपोलिस तथा नक्श-ए-रुस्तम में गदर तथा हिदू (सिंधु) का उल्लेख मिलता है। विभिन्न अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि गांधार, कम्बोज, पश्चिमी पंजाब व सम्पूर्ण सिंध दारा के साम्राज्य के अंतर्गत आता था। गांधार क्षेत्र को साइरस ने पर्सिया के साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था परन्तु पंजाब क्षेत्र का सम्मिलन दारा के काल में ही संभव हो पाया था। भारतीय क्षेत्र दारा प्रथम का बीसवां प्रान्त था जो सर्वाधिक घनी आबादी का क्षेत्र भी था।[12] दारा प्रथम को अपने राजस्व हेतु एक बड़ा भाग भारत से ही प्राप्त होता था। यह धनराशि 360 टैलेंट स्वर्ण चूर्ण के बराबर थी।[13] सुसामहल अभिलेख से ज्ञात होता है कि इस महल के निर्माण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग हुई सागौन की लकड़िया गांधार क्षेत्र से लाई गई थी।[14] हमादान अभिलेख में हिन्दुकुश का वर्णन दारा प्रथम के साम्राज्य के एक प्रान्त के रूप में मिलता है। स्वर्ण और चांदी द्वारा निर्मित इस अभिलेख में हिन्दोव नामक प्रान्त का उल्लेख मिलता है।[15]

दारा प्रथम महत्वाकांक्षी तथा दूरदृष्टि रखने वाला सम्राट था तथा उसने नौसेना के विकास हेतु भी अनेक कार्य किये। अपने दक्षिणी तट पर सुरक्षा हेतु नौसेना की आवश्यकता को उसने समझ लिया था तथा एक शक्तिशाली नौसेना की स्थापना पर बल दिया। दारा ने अरब सागर पर एक जहाजी बेड़ा भेजा था जिसका मुख्य उद्देश्य इस डेल्टा पर हखामनी साम्राज्य की प्रभुत्ता को स्थापित करना तथा मिस्र हेतु एक समुद्री मार्ग का अन्वेषण करना था। हेरोडोटस के अनुसार दारा प्रथम ने 517 ईसापूर्व में अपने नौसेनाध्यक्ष स्काईलेक्स को सिंधु नदी मार्ग की खोज के लिए भेजा था। यह जहाजी बेड़ा गांधार पकतीत(Gandarian Pactyica) प्रदेश में स्थित कास्पाप्यरस (Caspapyrus) नगर के पूर्व की ओर रवाना हुआ तथा हिंद महासागर तक पंहुचा था।[16] पर्सिपोलिस से एलामी भाषा में उत्कीर्ण मृत्फलक से पर्सिपोलिस व हिइनतू (निचली सिंधु घाटी) के मध्य प्रशासनिक संवाद का वर्णन मिलता है। इससे सूचना मिलती है की पर्णक नामक अधिकारी निचली सिंधु घाटी से पारसीक सम्राट को प्रशासनिक सूचना भेजता था।[17]

दारा को इतिहास में एक महान वास्तुकला निर्माता के रूप में भी सम्बोधित किया जाता है, उसके शासनकाल में विशाल राजमार्गों का निर्माण हुआ था तथा सभी मुख्य शहरों को इन से जोड़ा गया था। दारा ने अपने साम्राज्य में सुसा, पर्सिपोलिस, बेबीलोन, मिस्र आदि में निर्माण कार्य करवाया था। इस प्रकार दारा प्रथम इतिहास में न केवल एक शक्तिशाली राजा के रूप में प्रसिद्ध था अपितु अपनी दूरदृष्टि के कारण उसने सैन्य अभियानों तथा आधारभूत संरचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्यों को सम्पादित किया।[18] सम्पूर्ण सिंधु क्षेत्र दारा प्रथम के अधीन आ गया था इस प्रकार सिंधु घाटी एकता के सूत्र में बंध गयी थी तथा भारत अंततः पाश्चात्य जगत से जुड़ गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दारा प्रथम के उपरांत 486 ईसापूर्व में जरक्सीस (क्षयार्ष/Xerxes) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। एच. सी. रायचौधरी के अनुसार जरक्सीस का यूनानी लोगों से युद्ध हुआ था जिसमें भारतीय तथा गांधार प्रान्त के सैनिक उसकी सेना के साथ यूनानियों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुए थे। जिससे यह ज्ञात होता है कि पिता की मृत्यु के उपरान्त भी भारत तथा गांधार क्षेत्र पर जरक्सीस का व्यापक प्रभाव था। जरक्सीस की सेना में भारतीय सैनिकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। भारतीयों द्वारा जरक्सीस को प्रचुर मात्रा में हथियार, रथ व घोड़े भी प्रदान किये गए थे। यूनान से युद्ध में व्यस्त रहने के कारण जरक्सीस भारत में अपने साम्राज्य को अधिक विस्तार नहीं दे पाया।[19] हेरोडोटस के अनुसार भारतीय सैनिक फर्नाजथरेस (Pharnazathres) के नेतृत्व में यूनान के विरुद्ध वीरतापूर्वक लड़े थे। गांधार क्षेत्र के सैनिक नरकट के बाणों तथा छोटे भालों से सुसज्जित थे तथा भारतीय सैनिक सूती वस्त्रों में धनुष तथा लोहे की नोकों वाले बाणों से युक्त थे।[20] भारतीय सैनिक अपनी वीरता हेतु यूरोप में प्रसिद्ध थे तथा कालान्तर में यूरोप व फारस में संपन्न हुए अनेक अभियानों हेतु उनको आमंत्रित किया गया था।

राजनैतिक अस्थिरता के मध्य जरक्सीस के अंगरक्षक अर्बनियस ने ही उसकी हत्या कर दी थी जिसके उपरांत अर्तजरक्सीस(Artaxerxes) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।[21] अर्तजरक्सीस का शासन सामान्य से कमजोर रहा तथा राज्य की व्यवस्था में महती गिरावट आयी। अर्तजरक्सीस की मृत्यु के पश्चात पारसीक शासन अस्थिर रहा तथा अंततः दारा द्वितीय हखामनी सम्राट बना। दारा तृतीय हखामनी साम्राज्य का अंतिम शासक था जिसने भारतीय क्षेत्रों पर प्रभुत्व स्थापित रखने में सफलता प्राप्त की थी। सिकंदर के आक्रमण के समय उसने अपनी सेना में भारतीय सैनिकों की भर्ती की थी। एरियन के अनुसार इन भारतीय सैनिकों ने दारा तृतीय की ओर से सिंधु के नगर आरबेला (गोगामेला) में सिकंदर की सेना से युद्ध किया था।[22] दारा तृतीय के शासन काल में फारस का आधिपत्य भारतीय क्षेत्रों से क्रमशः कम होता चला गया। सिकंदर की सेना ने पारसीक सेना को कई स्थानों पर पराजित किया तथा दो शताब्दियों से भारत में चले आ रहे पारसीक आधिपत्य का भी अंत कर दिया । साइरस तथा दारा प्रथम शक्तिशाली तथा दूरदृष्टि रखने वाले राजा थे जबकि उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तराधिकारियों में इसका अभाव था। जिससे शासन तथा अधिकारियों के मध्य भ्रष्टाचार व अयोग्यता में वृद्धि हुई व अंततः हखामनी साम्राज्य का पतन हो गया। इतिहासकारों ने सत्य ही कहा कि पर्सिया का साम्राज्य साइरस तथा दारा प्रथम ने बनाया जिसे जरक्सीस ने उत्तराधिकार में पाया तथा उसके उत्तराधिकारियों ने नष्ट किया।[23]

2.2 सिकंदर का भारत पर आक्रमण

भारत व यूनान प्राचीनकाल से ही एक दूसरे से परिचित थे। हड़प्पा तथा क्रीट के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[24] भारतवासी यूनानियों को योन कहते थे तथा भारत में हखामनी साम्राज्य के समय यूनानियों से उनका संपर्क युद्ध क्षेत्र में हुआ था जिसमें भारतीय सैनिक फारस&यूनान युद्ध में यूनान के विरुद्ध लड़े थे। यूनानी आक्रमण अत्यंत प्रबल था तथा इस आक्रमण ने हखामनी साम्राज्य को नष्ट कर दिया। इसके साथ ही पश्चिमोत्तर भारत में हखामनी शासन छिन्न भिन्न हो गया।

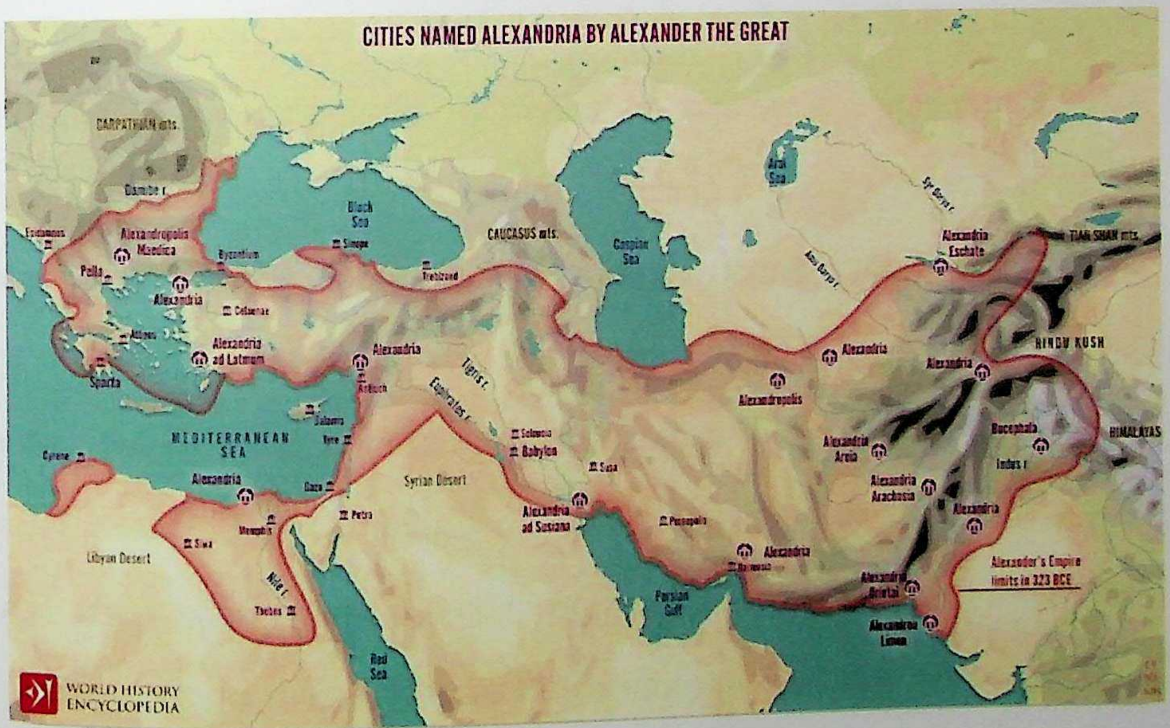

मानचित्र 3- सिकंदर महान का साम्राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एरियन के अनुसार भारतीय अपने हाथियों के साथ युद्ध क्षेत्र में उपस्थिति हेतु प्रसिद्ध थे।[25] युद्ध क्षेत्र का भारतीय तथा यूनानी संपर्क अल्प समय हेतु ही था, दोनों के मध्य संबंधों की प्रगाढ़ता सिकंदर के आक्रमण के उपरांत गति के साथ बढ़ी। भारत पर प्रथम यूनानी आक्रमण मकदूनिया के क्षत्रप फिलिप द्वितीय के पुत्र सिकंदर ने किया था जो स्वयं को एकीलीज़ के वंशज बताते थे। सिकंदर ने अनेक प्रसिद्ध गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की जिसमें अरस्तु मुख्य थे। उसने विभिन्न विजय यात्राओं द्वारा कालान्तर में स्वंय को विश्वविजयी महान सम्राट के रूप में स्थापित किया। अपने पिता की हत्या के उपरांत 336 ईसापूर्व में सिकंदर मकदूनिया का राजा बना उस समय उसकी आयु केवल 20 वर्ष थी। राज्यभार ग्रहण करते ही युवा सिकंदर को पदच्युत करने हेतु अनेक विद्रोही शक्तियां कार्यरत हो गयी थी।[26] परन्तु सिकंदर ने सभी विपरीत परिस्थितियों को धीरे-धीरे अपने अनुकूल कर लिया तथा उत्कृष्ट क्षमता का प्रदर्शन किया। उसने अपनी कुशलता का परिचय देते हुए सर्वप्रथम सभी पड़ोसी राज्यों में विरोधियों को समाप्त किया । तदुपरांत वह एक विशाल सेना लेकर फारस के अभियान पर निकल गया। दारा तृतीय की सेना सिकंदर की सेना के सामने निष्क्रिय सिद्ध हुई तथा दारा युद्ध क्षेत्र से अपने प्राणों की रक्षा करते हुए भाग निकला। इसके उपरांत दारा के विषय में जानकारी का अभाव है, परन्तु संभव है कि वह अपने ही लोगों द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ। हखामनी सम्राट को पराजित करने के पश्चात सिकंदर ने बैक्ट्रिया में अलेक्जेंड्रिया नामक नगर की स्थापना की जिसे आधुनिक कांधार के नाम से जाना जाता है। इसके उपरांत उसने खैबर दर्रे से हिन्दुकुश पर्वत को पार किया व अंततः 326 ईसापूर्व में सिकंदर ने भारतीय भूमि पर कदम रखा।[27] सिकंदर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर भारत में कोई भी केंद्रीय शक्ति नहीं थी। पंजाब तथा सिंध में छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य थे जो मकदूनिया कि सेना का शिकार बने। पंजाब तथा सिंध में 100 से भी अधिक स्वतंत्र सत्ताएं थी जो परस्पर संघर्षरत रहती थी । वह किसी भी बाह्य आक्रमण का सामना करने में सक्षम नहीं थी। झेलम तथा व्यास नदी के मध्य भारतीय क्षेत्र में सात जनजातियों का शासन था। तक्षशिला व पोरस में राजतंत्र तथा मालवा व क्षुद्रक राज्यों में गणतंत्र का उल्लेख मिलता है परन्तु इन प्रमुख राज्यों के मध्य कूटनीतिक सम्बन्धों का अभाव था । इस कारण वो किसी भी वाह्य शक्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामना करने में सक्षम नहीं थे।[28] डॉ राय चौधरी[29] जी के अनुसार पश्चिमोत्तर भारत 28 स्वतंत्र राज्यों में विभक्त था। ये राज्य निम्नलिखित हैं -

1-आस्पेशियन (अश्मक)

2-गुरेअन्स (गौरी)

3-अस्सकेनोज (अश्वक)

4-नीसा

5-प्यूकेलाइटिस (पुष्कलावती)

6- तक्षशिला

7-अरसेक्स (उरसा)

8-अभिसार

9-पुरु

10-ग्लौगनिकाई

11-गान्दारिस

12-अद्रेस्ताई

13-कथाई (कठ)

14-सोफाइटस (सौभूति)

15-फेगेलस (फेगेला)

16-सिबोई (शिवि)

17-आगलसोई

18-आक्सीड्रकाई(क्षुद्रक)

19-मल्लोई (मालव)

20-आबस्टनोई (अम्बष्ठ)

21-जाथ्रोई (क्षत्रि)

22-ओसेडिओई (वसाति)

23-सोद्राई

24-मसनोई

25-मेसिकेनस (मूषिक)

26-आक्सीकनोस

27-सम्बोस

28-पटलेन (पाटल)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यूनानी स्रोतों के अनुसार 326 ईसा पूर्व में सिकंदर की अजेय सेना ने सिंधु नदी को पार कर भारत में प्रवेश किया। सिकंदर की सेना का तक्षशिला के राजा आम्भी तथा अन्य राजाओं ने अपनी 5000 की संख्या के सुसज्जित सैन्यदल के साथ स्वागत किया। आम्भी के दरबार में सिकंदर को भारतीय शासकों ने उपहार भेंट किये, सिकंदर ने भी उन्हें स्वर्ण तथा रजत के रूप में बहुमूल्य उपहार प्रदान किये। आम्भी के अतिरिक्त शशिगुप्त (हिन्दुकुश के उत्तर में शासक), संजय (पुष्कलावती के शासक), कोफायस (काबुल के शासक) तथा अश्वजीत ने भी सिकंदर की अधीनता स्वीकार कर ली। सिकंदर ने अपने कुछ विजित क्षेत्रों को आम्भी के राज्य में सम्मिलित कर दिया था। सिकंदर ने अपने विजय अभियान को आगे बढ़ाते हुए पुष्कलावती के शासक अष्टक (हस्ती) व कुनार घाटी के आस्पेशियन (अश्मक) पर भी अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था। सिकंदर ने सिंधु के पश्चिमी प्रदेशों में निकानोर(nikanor) को क्षत्रप नियुक्त किया। सिकंदर ने ओर्नोस(Aornus) के किले पर भी कब्ज़ा किया जिसका शासक उसने शशिगुप्त को नियुक्त किया।[30]

झेलम तथा चेनाब नदी के मध्य पोरस (पुरु) का राज्य था। वह अपनी संस्कृति के प्रति समर्पित था तथा उसकी रक्षा हेतु सर्वस्व न्योछावर करने को सदैव तत्पर रहता था। इसी कारण युद्ध में पराजय के उपरांत भी इतिहास में वीर पोरस का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। चिनाब के उत्तर में स्थित पौरव राजा ने सिकंदर के समक्ष समर्पण कर दिया था तथा अभिसार के राजा ने भी अपने भ्राता को भेजकर सिकंदर के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित कर दी थी। इस प्रकार पश्चिमोत्तर भारत के अधिकांश महत्वपूर्ण क्षेत्र सिकंदर के अधीन हो गए थे परन्तु पोरस इन तथ्यों से विचलित नहीं हुआ । उसने सिकंदर की आधीनता के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था जिसके उपरांत दोनों के मध्य युद्ध अवश्यसम्भावी हो गया था। सिकंदर ने आक्रमण की रणनीति बनाई। वह वर्षा ऋतु से पूर्व ही आक्रमण कर देना चाहता था जिससे न तो उसे नदी की बाढ़ का सामना करना पड़े न ही पोरस को सेना मजबूत करने का समय मिल पाए। अपने क्षत्रप फिलिप को तक्षशिला में नियुक्त करके सिकंदर झेलम नदी के घाट की दिशा में बढ़ गया। दोनों ही राजाओं की सेनाएँ झेलम नदी के दोनों किनारों पर व्यवस्थित हो गई। भारतीय सेना सिकंदर की सेना को नदी पार करने से रोकने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिबद्ध थी। अपने युद्ध कौशल हेतु प्रसिद्ध सिकंदर तथा उसकी सेना युद्ध में साम, दाम, दंड, भेद आदि किसी भी प्रकार की नीति के प्रयोग को तत्पर थी। इसी क्रम में सिकंदर ने नदी के किनारे स्थित अपनी सेना को अनावश्यक रूप ने इधर उधर भेजने का कार्य किया। उसका उद्देश्य यह था कि बिना पोरस को सूचना दिए वह उपयुक्त स्थान से नदी के दूसरे छोर पर जा सके। अंततः उसकी युक्ति सफल हुई तथा उसकी सेना शांतिपूर्वक नदी पार करने में सफल हुई। उसने मुख्य दल से दूर स्थान से नावों का सेतु बनाकर इस योजना का क्रियान्वित किया। जानकारी मिलने के उपरान्त पोरस ने अपने पुत्र के इस अतिक्रमण को समाप्त करने हेतु भेजा परन्तु अत्यधिक समय नष्ट हो गया था, अति शीघ्रता में तैयार हुई भारतीय सेना की इस टुकड़ी को यूनानी सेना के सम्मुख पराजय का सामना करना पड़ा। भारतीय सेना संख्या में भी सिकंदर की सेना से कम थी। राजा पोरस के पुत्र को वीरगति प्राप्त हुई तथा इससे भारतीय सेना के मनोबल में भी ह्रास हुआ। अंततः पोरस ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ सिकंदर पर आक्रमण किया। एरियन के अनुसार पोरस की सेना में 30000 पैदल सैनिक, 4000 घोड़े, 3000 रथ और 200 हाथी थे। कर्टियस के अनुसार पोरस के आगे बढ़ने से पहले भगवान कृष्ण की पताका को सेना के सामने से ले जाया गया था, जो इस बात का द्योतक है कि भारतीय युद्ध धार्मिक भावनाओं के साथ लड़ते थे। परन्तु भाग्य का साथ पोरस को नहीं मिल सका, रातभर हुई बारिश के कारण भूमि चिकनी तथा कीचड़ युक्त हो गयी थी जिसके कारण रथ के पहिये मिट्टी में फंसने लगे थे तथा एक प्रकार से युद्ध हेतु अक्षम हो गए थे। पोरस की सेना के धनुष भी समतल भूमि पर रखकर चलने वाले थे जो कीचड़ युक्त सतह होने के कारण अनुपयोगी हो गए थे। इस प्रकार युद्ध भूमि में आधा युद्ध यूनानी सेना ने बिना किसी पराक्रम के ही विजित कर लिया था। सिकंदर ने मध्य एशिया के धनुर्धरों तथा मकदूनिया के घुड़सवारों की सहायता से भारतीय सेना पर आक्रमण किया जिसने भारतीय सेना में भूचाल ला दिया तथा उन्हें सँभलने का अवसर नहीं मिला। राजा पोरस की 20000 से अधिक की सेना का क्षय युद्ध में हुआ तथा उसके दो पुत्र भी वीरगति को प्राप्त हुए जिसने उसकी पराजय को सुनिश्चित कर दिया था। पोरस पराजित हुआ पर उसकी वीरता तथा निर्भीकता से प्रभावित होकर सिकंदर ने न केवल उन्हें अपना गवर्नर बनाया बल्कि विजित 15 गणराज्यों के शासन की भी जिम्मेदारी प्रदान की। राजा पोरस ने भी इस नए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गठबंधन को सुचारु रूप से निभाया। युद्ध के उपरांत सिकंदर ने दो नए नगर का निर्माण करवाया, प्रथम नगर को अपनी विजय के साक्षी के रूप में युद्ध क्षेत्र में बसवाया जिसका नाम निकैया रखा तथा द्वितीय नगर झेलम के दूसरे तट पर अपने प्रिय घोड़े की स्मृति में बसवाया जिसका नाम बऊकेफेला रखा।[31]

इससे पूर्व की सिकंदर अपनी विजय यात्रा को आगे बढ़ाता उसके अनेक विजित क्षेत्रों में विद्रोह हो गया। कांधार तथा अश्मक में विद्रोह हुआ, जिसमें अश्मक प्रदेश में सिकंदर द्वारा नियुक्त क्षत्रप निकानोर की हत्या कर दी गई। फारस से मकदूनिया की सेना ने आकर इन विद्रोहों को शांत किया। इसके उपरांत सिकंदर ने चिनाब नदी को पार किया तथा पूर्व दिशा में अपने विजय अभियान को आगे बढ़ाया। सिकंदर ने ग्लाउगानिकाय(Glauganikai) पर आक्रमण किया, तथा 37 नगरों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। असिक्नी(चंद्रभागा) -चिनाब के पार पोरस द्वितीय का शासन था जो वहां से भागकर गंडारिदै (Gandaridae) में शरणागत हुआ। चिनाब व रावी नदी के मध्य का सम्पूर्ण क्षेत्र पोरस के राज्य में मिला दिया गया। जिसमें छोटा पुरु का राज्य गौदारिस भी शामिल था। तदुपरांत सिकंदर रावी नदी की ओर बढ़ा तथा अद्रेस्ताई राज्य पर आक्रमण कर उसकी राजधानी पिम्प्रमा पर अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात सिकंदर ने गणराज्य कठ पर आक्रमण किया। कठ एक लड़ाकू कबीला था परन्तु अंततः सिकंदर द्वारा पराजित हुआ तथा इसे भी पोरस के राज्य में मिला दिया गया। दो अन्य निकटवर्ती राजाओं सौभूति (झेलम की पूर्व दिशा के शासक) तथा भगल (रावी और व्यास के मध्य के क्षेत्र का शासक) ने भी सिकंदर के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। इसके उपरान्त सिकंदर की योजना व्यास नदी को पारकर भारत में और भीतर तक घुसने की थी परन्तु युद्धों में सतत रूप से व्यस्त होने के कारण सिकंदर की सेना को अत्यंत थका दिया। अतः सेना ने पुनः युद्ध में सम्मिलित होने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।[32]

झेलम व संगल (कठ की राजधानी) के युद्धों के उपरान्त उनका उत्साह शिथिल पड़ गया। उन्हें जानकारी थी की व्यास नदी के पार का क्षेत्र साहसी योद्धाओं से परिपूर्ण था तथा वो क्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत की तुलना में सुशासित व मजबूत था । सिकंदर की सेना थकान तथा व्याधियों से भयभीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थी, लम्बे समय से वो अपने परिवार वालों से दूर थे तथा अपने अपने घर लौटने को आतुर हो चले थे। सेनानायक कोनोस ने भी सिकंदर से स्वदेश जाने का आग्रह किया तथा सिकंदर को अंततः वापस लौटना पड़ा। व्यास नदी के तट पर उसने अपनी विजय सीमा अंकित करते हुए यूनानी देवताओं की स्मृति में 12 वेदिका स्तम्भ स्थापित किये।[33] सिकंदर के पुरागमन के समय उसकी सुरक्षा हेतु नदी के दोनों ओर सैनिक नियुक्त थे तथा साथ ही क्षत्रप फिलिप भी पश्च भाग से सुरक्षा देते हुए आगे बढ़ रहा था। मार्ग में मालवा तथा क्षुद्रक की सामूहिक सेना ने सिकंदर पर आक्रमण कर दिया। इस सामूहिक सेना में 90000 पैदल, 10000 घुड़सवार और 900 रथ तैनात थे। सम्पूर्ण मालव शहर ही अपनी संस्कृति की रक्षा हेतु युद्ध क्षेत्र में तत्पर था। मालव सैनिक युद्ध से पलायन कर ब्राचमानस / ब्राह्मण नामक नगर में छुप गए। परन्तु सिकंदर की सेना ने ब्राचमानस/ ब्राह्मण तथा मालव सैनिक सभी को मृत्यु के घाट उतार दिया। अपार पराक्रम दिखाने के उपरान्त भी मालव की सेना पराजित हुई तथा क्षुद्रक ने भी अपनी पराजय स्वीकार कर ली।[34] इसके उपरान्त सिकंदर को अगलस(Agalassians) जाति की विशाल सेना का भी सामना करना पड़ा। अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ वो वीरता से लड़े परन्तु उन्हें भी पराजय का सामना करना पड़ा जिसके पश्चात उन्होंने स्वयं को तथा अपनी स्त्रियों व सन्तानों को भी आग में स्वाहा कर लिया। राजपूतों में जौहर की परम्परा को इससे जोड़ कर देखा जाता है।[35] शिवि, अम्बष्ठ, वसाति, क्षतृ, आदि गणराज्यों ने सिकंदर के सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया।[36] सिकंदर के सिंध पहुंचने पर थोड़े गतिरोध के पश्चात सोग्डोई, मूषिक, सम्बोस आदि राज्यों ने भी समर्पण कर दिया। निचली सिंधु घाटी में ब्राह्मणों का वर्चस्व था उन्होंने धर्म की रक्षा हेतु किसी भी विदेशी शक्ति का सम्पूर्ण बहिष्कार किया तथा अपने शासकों, जिन्होंने सिकंदर की अधीनता को स्वीकार किया था, को देशद्रोही बताया। इस प्रकार की नैतिक बाध्यता ने मूषिकनोस और ऑक्सीकनोस को सिकंदर की दासता को अस्वीकार करने पर विवश कर दिया, परन्तु सिकंदर की सेना ने उन्हें भी पराजित किया।[37] सिकंदर अंत में पाटल पंहुचा जहाँ सिंधु नदी दो भागों में विभाजित होती है। पाटल का राजा अपनी सेना तथा नागरिकों सहित स्थान छोड़कर वहां से चला गया। सिकंदर ने पिथोन(Peithon) को वहां का क्षत्रप नियुक्त किया।[38] इसके पश्चात सिकंदर ने 325 ईसापूर्व में अपने गृहप्रदेश हेतु मकरान के रेगिस्तानी मार्ग से प्रस्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया। सिकंदर ने नियार्कस को सिंधु के मुहाने से तट के साथ- साथ फारस की खाड़ी में नौसैन्य बेड़ा ले जाने का आदेश दिया। 2 वर्ष पश्चात 323 ईसापूर्व में सिकंदर की मृत्यु बेबीलोन में हो गई। सिकंदर की मृत्यु के बाद सेल्यूकस को सीरिया का राजा बनाया गया तथा सीरिया के पूर्व में स्थित सिकंदर द्वारा विजित सम्पूर्ण प्रदेश की जिम्मेदारी भी उसे स्थानांतरित की गई। कालांतर में सेल्यूकस वंश का भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात उसका राज्य छिन्न-भिन्न हो गया तथा मकदूनिया के क्षत्रपों को भारत छोड़कर हिन्दुकुश के पार जाना पड़ा।[39] मकदूनिया के आधिपत्य को खत्म करने में चन्द्रगुप्त मौर्य की पूरे भारत को एक सूत्र में बांधने की सोच का महत्वपूर्ण योगदान रहा। 321 ईसापूर्व तक भारत में मकदूनिया शासन का लगभग अंत हो गया था। सिकंदर की पंजाब और सिंध को अपने साम्राज्य में मिलाने की आशा का भी अंत हो गया तथा भारत ने विदेशी साम्राज्य को नष्ट करके खुद को स्वतंत्र कर लिया।

2.3 सेल्यूकस का आक्रमण

पश्चिमोत्तर भारत पर द्वितीय यूनानी आक्रमण बख्त्री-यवनों द्वारा हुआ था जिस के फलस्वरूप भारत में हिन्द-यवन शासन की नींव पड़ी। इस आक्रमण की सफलता का मुख्य कारण मौर्य साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होना था। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात उसके सेनानायकों ने उसके साम्राज्य को आपस में विभाजित कर लिया था, जिसमें पश्चिमी एशिया के क्षेत्र पर सेल्यूकस का आधिपत्य स्थापित हो गया। ऐन्टिगोनस से पराजित होकर सेल्यूकस को मिस्र की ओर प्रस्थान करना पड़ा परन्तु तीन वर्ष पश्चात सेल्यूकस ने बेबीलोन पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिया।[40] 306 ईसा पूर्व में उसने बैक्ट्रिया को भी अपने अधिकार में ले लिया। वह इतिहास में सीरिया के राजा के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि उसके साम्राज्य में सीरिया का एक भाग ही था तथा साथ में पश्चिमोत्तर भारत का भी भाग सम्मिलित था। 305 ईसापूर्व में सेल्यूकस ने भारत हेतु अपना अभियान आरम्भ किया परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य की सैन्य शक्ति से पराजित होकर, भारत में उसे अपने साम्राज्य विस्तार के स्वप्न को विश्राम देना पड़ा। पराजय के उपरान्त सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलना का विवाह चन्द्रगुप्त से कराया। सिंधु के किनारे सिकंदर के द्वारा विजित प्रदेशों को (जो पूर्व में पारसीकी आधिपत्य में थे),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य को विवाह के भेंट स्वरुप प्रदान किये। एरियाना का विशाल भाग मकदूनिया द्वारा चन्द्रगुप्त को प्रदान किया गया था। चन्द्रगुप्त द्वारा भी सेल्यूकस को 500 हाथियों की भेंट उपहार स्वरूप प्रदान की गई। सेल्यूकस ने चार क्षत्रप हेरात, कंधार, मकरान तथा काबुल चन्द्रगुप्त को दहेज़ के रूप में प्रदान किये थे। सेल्यूकस ने 302 ईसापूर्व में मेगस्थनीज नामक राजदूत को सम्राट चन्द्रगुप्त के पाटलिपुत्र दरबार में भेजा जो इतिहास में अत्यंत प्रसिद्ध हुआ।[41] भविष्य पुराण के प्रतिसर्ग पर्व[42] में चन्द्रगुप्त का सेल्यूकस की पुत्री के साथ हुए विवाह का वर्णन मिलता है-

चन्द्रगुप्त सुतः पौरसाधिपतेः सुताम

सुलूवस्य तथोद्वाह्य यावनी बौद्धतत्पर

सेल्यूकस का भारतीय अभियान भारत पर कोई भी प्रभाव स्थापित करने में असफल सिद्ध हुआ, परन्तु सेल्यूकस के कारण पश्चिम में मौर्य साम्राज्य का विस्तार अवश्य हुआ। सैन्य प्रभाव के विपरीत, सेल्यूकस के द्वारा स्थापित वैवाहिक सम्बन्धों ने मौर्य राज दरबार को प्रभावित किया। मेगस्थनीज को मौर्य दरबार में भेजना ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ तथा समकालीन इतिहास की जानकारी हेतु मेगस्थनीज की लेखनी अतिआवश्यक सिद्ध हुई।

सेल्यूकस के उत्तराधिकारी अन्तियोकस प्रथम के उपरांत अन्तियोकस द्वितीय शासक बना जिसने 261 ईसापूर्व से 246 ईसापूर्व तक शासन किया। उसके शासनकाल में 250 ईसापूर्व में उसके साम्राज्य के दो प्रान्त पार्थिया तथा बैक्ट्रिया ने विद्रोह कर दिया। पार्थिया ने अर्सेक्स के नेतृत्व में तथा बैक्ट्रिया ने डायोडोटस के नेतृत्व में यह विद्रोह किया तथा दोनों ही राज्यों ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अन्तियोकस द्वितीय के उपरांत उसके उत्तराधिकारी सेल्यूकस द्वितीय व सेल्यूकस तृतीय भी इस विद्रोह को समाप्त करने में असफल रहे थे। अंततः अन्तियोकस तृतीय ने दोनों प्रान्त की स्वाधीनता को स्वीकार कर लिया। सेल्यूकस के असफल भारतीय अभियान के उपरांत 100 वर्षों तक किसी भी यूनानी शासक ने भारत पर आक्रमण नहीं किया था, अन्तियोकस तृतीय ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

206 ईसापूर्व में भारत पर आक्रमण किया तथा काबुल की घाटी पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।[43]

2.4 बख्त्री-यवन आक्रमण

बैक्ट्रिया के स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त डिओडोटस ने वहां के राजा की उपाधि ग्रहण की, डिओडोटस पूर्व में बैक्ट्रिया का गवर्नर था जिसने सेल्यूकस साम्राज्य से विद्रोह किया था। डिओडोटस की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र की हत्या कर यूथिडेमस शासक बना। अन्तियोकस तृतीय ने यूथिडेमस की राजधानी को दो वर्षों तक घेरे रखने के उपरांत 206 ईसापूर्व में संधि की तथा उसे राजा स्वीकार किया, साथ ही अपनी पुत्री का विवाह भी उसके पुत्र डेमेट्रियस के साथ संपन्न किया।[44] इस विद्रोह से निवृत्त होने के उपरान्त अन्तियोकस तृतीय ने हिन्दुकुश पार कर काबुल के मार्ग से होते हुए भारतीय शासक वीरसेन के पुत्र सुभगसेन के राज्य में पंहुचा तथा उपहार स्वरुप हाथी प्राप्त किये।

मानचित्र 4-हिन्द यवन शासकों का साम्राज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभगसेन ने अशोक की मृत्यु के पश्चात गांधार में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की थी।[45] ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है की यूथीडेमस ने भारत पर किसी भी प्रकार का आक्रमण नहीं किया था तथा उसका साम्राज्य हिन्दुकुश तक ही सीमित था। यूथीडेमस की मृत्यु के पश्चात 190 ईसापूर्व में उसका पुत्र डेमेट्रियस सिंहासनारूढ़ हुआ। डेमोट्रियस एक अत्यंत शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ तथा उसने हिन्दुकुश को पार करते हुए सिंध तथा पंजाब के कई क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की।[46] डेमेट्रियस के विषय में भारतीय ग्रंथों पतंजलि कृत *महाभाष्य*[47], गार्गीसंहिता के *युगपुराण*[48], कालिदास कृत *मालविकाग्निमित्र*[49] तथा रेह *अभिलेख*[50] से ज्ञात होता है। इन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि यवन शासक साकेत, माध्यमिका (चित्तौड़), पांचाल तथा मथुरा को विजित करते हुए पाटलिपुत्र तक आ पहुंचे थे। मध्यदेश में प्रवेश के पश्चात उन्हें शीघ्र ही वापस जाने हेतु बाध्य होना पड़ा अपितु भारतदेश से भी प्रस्थान करना पड़ा। इसके मुख्यतः दो कारण थे प्रथम कारण के विषय में जानकारी *गार्गी संहिता* से प्राप्त होती है जिसके अनुसार यवनों में परस्पर युद्ध हुआ जिसने उनकी शक्ति को अत्यंत क्षीण कर दिया था फलस्वरूप उन्हें मध्यदेश से प्रस्थान करना पड़ा। द्वितीय कारण अधिक सारगर्भित प्रतीत होता है जो यह जानकारी देता है कि शक्तिशाली शासक पुष्यमित्र शुंग ने यवन आक्रमण का भीषण प्रतिरोध किया तथा उसके पौत्र वसुमित्र ने यवनों को सिंधु नदी के पार पराजित किया था।[51] इस प्रकार डेमेट्रियस का शासन पश्चिमी पंजाब और निचली सिंधु घाटी तक ही सीमित रहा। इस क्षेत्र से ताम्र मुद्रायें मिलती है जिन पर यूनानी तथा खरोष्टी लिपियों में *महरजस अपरजितस दिम* उत्कीर्ण है।[52] खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में दिमिति नामक यवनराजा का उल्लेख मिलता है जिसका समीकरण कुछ विद्वानों ने डेमेट्रियस से किया है। डेमेट्रियस ने आक्सस नदी से सिंधु नदी तक के क्षेत्र पर अपना अधिपत्य स्थापित कर लिया था।[53]

जिस समय डेमेट्रियस भारतीय विजयों में व्यस्त था उसी समय यूक्रेटाइडीज ने बैक्ट्रिया में विद्रोह कर दिया। डेमेट्रियस ने अपने अभियान को विराम देकर विद्रोह को समाप्त करने हेतु प्रयास आरम्भ किये परन्तु डेमेट्रियस इन विद्रोहों को समाप्त करने में असफल सिद्ध हुआ। डेमेट्रियस के अंतिम दिनों के विषय में जानकारी का अभाव है परन्तु यह प्रतीत होता है कि या तो यूक्रेटाइडीज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्रोह को समाप्त करने के क्रम में वह मृत्यु को प्राप्त हुआ अथवा अपने अंतिम दिन उसने भारत में व्यतीत किये।[54] यूक्रेटाइडीज ने डेमेट्रियस की मृत्यु के पश्चात कतिपय भारतीय प्रांतो को भी विजित किया था जिसका प्रमाण पश्चिमी पंजाब से प्राप्त हुई मुद्राओं से मिलता है। स्ट्रेबो के अनुसार यूक्रेटाइडीज अपने विजय अभियान को झेलम नदी तक विस्तृत करने में सफल हुआ।[55] यूक्रेटाइडीज की भारतीय विजय के पश्चात भारत में दो यवन राज्य स्थापित हो गए थे प्रथम राज्य में यूथिडेमस तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा शासन किया गया था जिसका विस्तार झेलम से मथुरा तक था तथा उसकी राजधानी शाकल थी, द्वितीय राज्य यूक्रेटाइडीज तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा शासित हुआ था जो बैक्ट्रिया से झेलम नदी तक विस्तृत था तथा इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। यूक्रेटाइडीज की हत्या के उपरांत उसके पुत्र हेलियोक्लीज ने सिंहासन पर अपना अधिकार स्थापित किया। हेलियोक्लीज वह अंतिम यवन शासक था जिसने बैक्ट्रिया पर शासन किया था। शकों ने बैक्ट्रिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था जिसके फलस्वरूप हेलियोक्लीज काबुल घाटी तथा सिंधु स्थित अपने राज्य तक ही सीमित होकर रह गया था।[56] बैक्ट्रिया के शकों द्वारा विजित किये जाने के उपरान्त यवन शासन मध्य व दक्षिण अफगानिस्तान तथा पश्चिमोत्तर भारत के मध्य तक ही सीमित हो गया था। इस सीमित क्षेत्र में डेमेट्रियस तथा यूक्रेटाइडीज के अनेक उत्तराधिकारियों ने शासन किया। इन शासकों के विषय में जानकारी उत्खनन के फलस्वरूप प्राप्त हुई मुद्राओं से मिलती है। मुद्राओं के काल गणना तथा विस्तृत अध्ययन के उपरांत इतिहासकारों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि भारतभूमि पर यूथिडेमस तथा यूक्रेटाइडीज वंश के 42 राजाओं ने शासन किया था।[57] उन्होंने संभवतः 100 वर्षों तक इस क्षेत्र पर शासन किया तथा यह दोनों वंश सदैव परस्पर संघर्षरत रहे। परस्पर संघर्ष ने दोनों ही वंशों को इस प्रकार शक्तिहीन कर दिया था कि पहलव तथा शकों के आक्रमण से वह स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ सिद्ध हुए तथा इन विदेशी शक्तियों ने भारत में शासित अपनी पूर्ववर्ती विदेशी शक्तियों के शासन का अंत कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्द-यूनानी शासकों में यूथीडेमस वंश का शासक मेनाण्डर का नाम एक बौद्ध विद्वान् तथा बौद्ध धर्म के संरक्षक शासक के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मेनाण्डर एक न्यायप्रिय शासक था जो प्रजा के मध्य अत्यंत लोकप्रिय था तथा उसकी मृत्यु के उपरान्त उसकी अस्थियों के स्वामित्व को लेकर विवाद भी हुआ था।[58] बौद्ध भिक्षु नागसेन की पुस्तक मिलिंदपञ्ह, जिसमें बौद्ध भिक्षु तथा राजा मिलिंद के मध्य प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद वर्णित है, में मिलिंद की पहचान हिन्द-यवन राजा मेनाण्डर से की गई है। मिलिंदपञ्ह के अनुसार मेनाण्डर का जन्म काबुल के निकट अलसंद में हुआ था।[59] मेनाण्डर के शासन के कालनिर्धारण के विषय में विद्वान् दुविधा की स्थिति में है। कतिपय विद्वान उसके शासन का काल ईसापूर्व 160 से ईसापूर्व 140 तक मानते है। कुछ विद्वान् मेनाण्डर तथा यूक्रेटाइडीज को समकालीन मानते है।[60] ए. के. नारायण मेनाण्डर का समय 155-130 ईसापूर्व निर्धारित करते हैं जो अन्य तथ्यों के अध्ययन से अधिक सारगर्भित प्रतीत होता है।[61] पश्चिमोत्तर भारत से सम्बंधित बौद्ध साक्ष्य इस दिशा में इंगित करते हैं कि मेनाण्डर का शासन परिनिर्वाण के 500 वर्षों के पश्चात का है।[62] बाजौर(Bajaur) घाटी से प्राप्त हुई शिनकोट की धातुगर्भ मंजूषा पर मेनाण्डर से सम्बंधित एक लेख मिलता है जो बाजौर (वर्तमान पेशावर) में उसके शासन को प्रमाणित करता है । जी. आर. शर्मा के अनुसार उत्तरप्रदेश के रेह में मिले लेख का सम्बन्ध मेनाण्डर से ही है जिससे इस भाग में भी उसके शासन का प्रमाण मिलता है।[63] पेरिप्लस के अनुसार भरुच में भी मेनाण्डर द्वारा प्रचलित मुद्राओं के साक्ष्य मिले हैं।[64] स्ट्रेबो के अनुसार मेनाण्डर एक शक्तिशाली तथा दूरदर्शी शासक सिद्ध हुआ था जिसने भारत में सिकंदर से भी अधिक क्षेत्रों को विजित किया था तथा व्यास नदी को पार कर इसेमस (यमुना या इक्षुमति) तक अपने विजय रथ को पहुंचाया था।[65] मेनाण्डर का विस्तृत साम्राज्य झेलम नदी के तट से मथुरा तक विस्तृत हो गया था तथा उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी शाकल थी।[66] मिलिंदपञ्ह में इस शाकल का विवरण मिलता है।[67] काबुल व सिंध क्षेत्र से मिली मुद्राओं से ज्ञात होता है कि यूथीडेमस वंश के राजा मेनाण्डर ने यूक्रेटाइडीज वंश के शासकों को पराजित कर उनके भूभाग के कुछ प्रदेशों पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। मेनाण्डर द्वारा प्रचलित करवाई गई मुद्रायें काठियावाड़ तथा सौराष्ट्र से भी मिली है।[68] मेनाण्डर द्वारा प्रचलित रजत मुद्रायें भी उत्खनन में प्राप्त हुई हैं । इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्राओं के मुख भाग पर मुकुट धारण किये हुए राजा के शीश का चित्रण है तथा उसके साथ यूनानी में मेनाण्डर का नाम अंकित है जबकि मुद्रा के पृष्ठ भाग में खरोष्ठी लिपि में *महाराजस त्रतरस मेनद्रस* उत्कीर्ण है। मेनाण्डर से सम्बंधित ताम्र मुद्रायें बहुतायत में पायी गयी हैं जिन पर यूनानी तथा प्राकृत भाषाओं में *महाराजस ध्रमिकस मेनद्रस* उत्कीर्ण है।[69] मेनाण्डर एक समर्पित बौद्ध था तथा उसे प्रदान की गयी ध्रमिकस की उपाधि उसके धर्मनिष्ट बौद्ध होने को प्रमाणित करती है। मेनाण्डर की मृत्यु के उपरान्त उसका उत्तराधिकारी स्ट्रैटो प्रथम हुआ। गांधार तथा अफगानिस्तान के क्षेत्रों का आधिपत्य मेनाण्डर के उत्तराधिकारियों के हाथों से निकल गया था। मुद्राओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसका शासनकाल 50 वर्षों से भी अधिक का था। स्ट्रैटो के उपरान्त अन्य हिन्द-यवन शासकों ने भी भारत के एक भूभाग पर शासन किया परन्तु उनकी शक्ति क्रमशः क्षीण होती रही। शकों व पह्लवों के अनवरत आक्रमणों ने उनके राज्यों को सीमित कर दिया था तथा प्रथम शताब्दी ईसापूर्व के मध्य तक पूर्वी पंजाब स्थित उनका राज्य शकों के अधिकार में चला गया। अंततः यूथीडेमस वंश समाप्त हो गया।[70] यूथीडेमस वंश की समाप्ति के उपरान्त यवन भारत में शक, पहलव तथा कुषाणों के आधीन रहे थे। इतिहास में यूक्रेटाइडीज वंश के दो शासकों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रथम शासक अंतियालकीडस था जो तक्षशिला का शासक था तथा उसने शुंग नरेश भागभद्र के विदिशा दरबार में हेलियोडोरस नामक राजदूत को भेजा था, जिसका उल्लेख बेसनगर के गरुड़ स्तम्भ से प्राप्त होता है। द्वितीय शासक का नाम हर्मियस था जो कि यूक्रेटाइडीज वंश का अंतिम हिन्द-यवन शासक सिद्ध हुआ। उसका शासन काबुल घाटी तक सीमित था तथा उसके द्वारा प्रचलित कराई गयी मुद्राओं में कुजुल कडफिसस का नाम उत्कीर्ण मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि उसने कुषाणवंश की अधीनता को स्वीकार कर लिया था। प्रथम शताब्दी ईसापूर्व के द्वितीयार्ध में पह्लवों ने उसके राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया था, इस प्रकार भारत में यवनों के 200 वर्षों के शासन का अंत हो गया।[71]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2.5 भारत पर पहलव आक्रमण

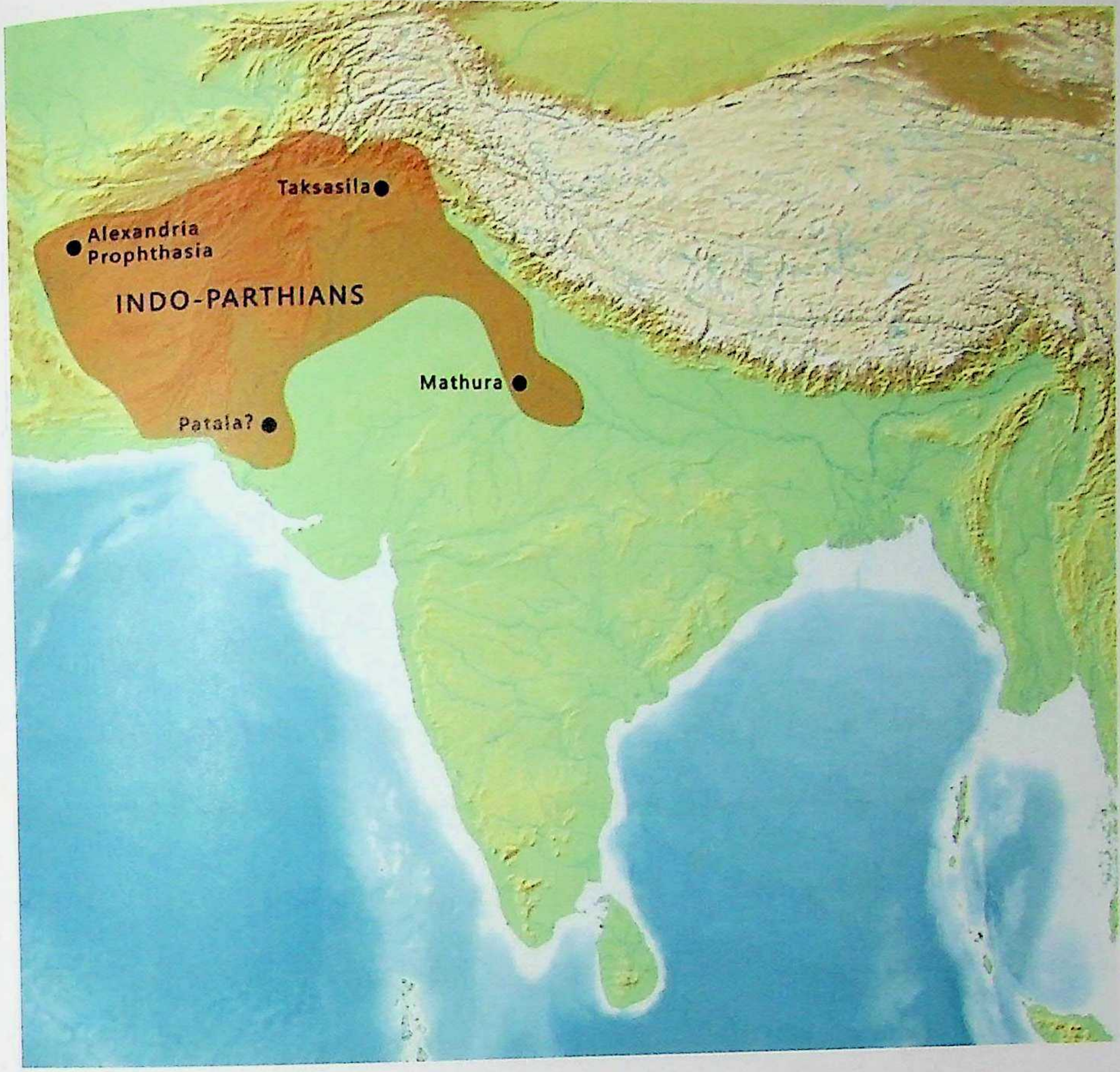

मानचित्र 5- पहलव वंश का साम्राज्य

फारस में अर्सासिद साम्राज्य का उद्भव तथा भारत में इस वंश का साम्राज्य विस्तार एक प्रकार से भारत हेतु द्वितीय हिन्द-ईरानी सम्मिलन था। भारतीय पुराणों में इस वंश को पहलव नाम से सम्बोधित किया गया है।[72] रामायण[73] में उनका वर्णन कीरत के रूप में हुआ है तथा महाभारत[74] में वर्णित है कि युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने भाग लिया था तथा पहलवों की उत्पत्ति पवित्र गौमाता नंदिनी द्वारा बताई गयी है। पहलवों ने ऋषि वशिष्ठ के साथ मिलकर ऋषि विश्वामित्र से युद्ध किया था। पहलव एक योद्धा जाति थी, जो मूलतः फारस से थी, जिसके आगमन ने भारत व फारस के इतिहास में महत्वपूर्ण प्रभाव स्थापित किया था। यद्यपि पह्लवों के उद्भव स्थान के विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों में मतभेद है। डेरियस ने पर्थिया के मूल निवासियों को पार्थव द्वारा सम्बोधित किया तथा बेहीस्तून अभिलेख में उन्हें हीरसानियंस(Hyrcanians) के साथ सम्बोधित किया गया था।[75] फारस कैस्पियन सागर के दक्षिण पूर्व तथा दक्षिणी तुर्कमेनिस्तान के मध्य स्थित था।[76] स्ट्रेबो के अनुसार पहलव ने सर्वप्रथम शकों को पराजित कर बैक्ट्रिया पर अपना अधिकार स्थापित किया तदुपरांत पश्चिमोत्तर भारत पर शनैः शनैः अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[77] यद्यपि पहलव वंश की स्थापना का श्रेय अर्सासेस को जाता है परन्तु विश्व इतिहास में पहलव वंश को सम्मानित स्थान, मिथ्रदत प्रथम की विजय यात्रा से ही संभव हो सका था। मिथ्रदत प्रथम ने 171 ईसा पूर्व से 138 ईसापूर्व तक शासन किया था तथा उसने जेड्रोसिया, हेरात तथा सीस्तान को अपने राज्य में शामिल किया था।[78] मिथ्रदत द्वितीय इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी राजा था जिसने 123 ईसा पूर्व से 87 ईसा पूर्व तक शासन किया। मिथ्रदत द्वितीय ने शकों को युद्ध में पराजित कर ख्याति प्राप्त की थी।[79] पहलव शासकों को दो शाखाओं में विभक्त किया गया है प्रथम मुख्य शाखा तथा द्वितीय सहायक शाखा। प्राप्त स्रोतों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पहलव वंश की मुख्य शाखा ने किसी महत्वपूर्ण भारतीय अभियान को संपन्न नहीं किया था, परन्तु सहायक शाखा ने भारत में अपना अभियान सफलतापूर्वक संपन्न किया था।[80] मुख्य पहलव वंश का शासक मिथ्रदत प्रथम अत्यंत प्रतापी राजा था जिसने पर्सिया तथा बेबीलोनिया को विजित कर अपनी श्रेष्ठता को सिद्ध किया था। मिथ्रदत प्रथम ने सिंध के पार भारत में साम्राज्य विस्तार हेतु प्रयास किये थे। रोमन इतिहासकार क्रोसियस के अनुसार झेलम तथा सिंधु के मध्य के क्षेत्र में मिथ्रदत प्रथम ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। दक्षिणी अफगानिस्तान का कंधार क्षेत्र भी संभवतः पह्लवों के शासन के अंतर्गत मिथ्रदत प्रथम के शासनकाल में ही आया। मिथ्रदात प्रथम के उपरान्त मिथ्रदत द्वितीय ने भी भारत के कतिपय भूभाग को विजित किया था, जिसका प्रमाण मुद्राओं से मिलता है। यद्यपि मिथ्रदत प्रथम तथा मिथ्रदत द्वितीय ने भारत के एक भूभाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था परन्तु उन्हें भारत का शासक नहीं कहा जा सकता है।[81] पहलव शासक वोनोनीज तथा गोण्डोफर्नीज ने भारतीय अभियानों में अपेक्षाकृत अधिक सफलता प्राप्त की थी तथा भारतीय इतिहास में अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित करवाया परन्तु वो मुख्य पहलव वंश के शासक न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर सहायक पहलव वंश के शासक थे। पह्लवों के मुख्य तथा सहायक वंशों में कभी कभी विभेद करना कठिन हो जाता है। राय चौधरी जी के अनुसार वोनोनीज एक पर्थियन राजवंश का नाम था न की किसी शासक का, जबकि भंडारकर के अनुसार वोनोनीज एक शक था तथा उसके परिवार का जुड़ाव ड्रेनजिआना से था।[82] इस प्रकार नाम की सहायता किसी के वंश को चिन्हित करने में त्रुटि की सम्भावना में वृद्धि हो जाती है। पूर्वी ईरान से भारत में प्रवेश करने वाली वाह्य शक्तियों के वंशों के विषय में निश्चिततापूर्वक कहना अत्यंत कठिन है। सभी तथ्यों तथा साक्ष्यों के सूक्ष्म विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि पूर्वी ईरान से भारत में प्रवेश करने वाली वाह्य शक्तियों को मुख्यतः दो वंशों में विभक्त किया जा सकता है, जिनमें प्रथम वंश शकों का था तथा द्वितीय वंश पह्लवों का था। कतिपय विद्वान इसी कारण से भारतीय इतिहास में इन दोनों वंशो का अध्ययन एक साथ ही करते हैं तथा उन्हें शक-पहलव के सामूहिक नाम से सम्बोधित करते हैं । महाभारत के उद्योगपर्व में भी शक व पहलव का विवरण एक साथ ही मिलता है।[83] मोतीचंद्रजी ने उपायन पर्व की सहायता से पहलवों का सम्बन्ध जूनागढ़ से स्थापित किया है।[84] कैम्पबेल ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि फारस की खाड़ी तथा भारतीय समुद्र के पश्चिमी तट के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध थे संभवतः इन्हीं सम्बन्धों के कारण पह्लवों को गुजरात आगमन की प्रेरणा मिली।[85] वोनोनीज सीस्तान तथा भारत का प्रथम पहलव शासक बना। उसने 75 ईसा पूर्व से 57 ईसा पूर्व तक शासन किया तथा उसके समकालीन शक शासक मावेज या मोग था। वोनोनीज ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। वोनोनीज द्वारा प्रचलित रजत तथा कांस्य मुद्राओं में उसके भ्राताओं स्पलहोर तथा स्पलग्दम के नाम अंकित मिलते हैं जो कि उनके प्रांतो के गवर्नर थे।[86] वोनोनीज के उपरांत उसका भ्राता स्पैलिरस शासक बना। उसकी मुद्राओं में मुख्य भाग पर यूनानी भाषा में उसका नाम तथा पृष्ठ भाग पर एजेज का नाम मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि शक शासक एजेज प्रथम उसकी अधीनता में था।[87]

इसके उपरांत गोण्डोफर्नीज पहलव वंश का शासक बना तथा इतिहास में पहलव वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा सिद्ध हुआ तथा उसका शासन ईस्वी सन 21 से 46 तक रहा। गोण्डोफर्नीज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले प्रसिद्ध राजा आर्थोगन्स के राज्य में अराकोसिया का पहलव वायसराय था। रैपसन के अनुसार गोण्डोफर्नीज तथा उसके भ्राता, आर्थोगन्स के अधीन राज्य में दो प्रांतों के उपराजा थे।[88] महत्वाकांक्षी गोण्डोफर्नीज ने शनैः शनैः अपनी शक्ति में वृद्धि की तथा अंत में स्वयं को एक सम्राट के रूप में स्थापित किया। उसके शासन के विषय में जानकारी उपलब्ध करवाने वाला सबसे महत्वपूर्ण स्रोत तख्त -ए- बही अभिलेख है जो की वर्तमान पेशावर में स्थित है। गोण्डोफर्नीज ने रजत व ताम्र मुद्राएं प्रचलित करवाई जो पंजाब, सिंध, कंधार, सीस्तान तथा काबुल घाटी में उत्खनन द्वारा प्राप्त हुई है।[89] गोण्डोफर्नीज ने सीस्तान, पंजाब ,सिंध तथा अफगानिस्तान पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था तथा तक्षशिला को अपनी राजधानी के रूप में व्यवस्थित किया। उसके समकालीन क्षत्रपों अस्पवर्मन तथा सस की मुद्राओं में उनके स्वयं के नाम के अंकन के साथ-साथ महाराजाधिराज गोण्डोफर्नीज के नाम का अंकन भी प्राप्त होता है। अस्पवर्मन तथा सस दोनों ही क्षत्रप उससे पूर्व एजेज द्वितीय के आधीन थे, इससे ज्ञात होता है कि गोण्डोफर्नीज ने शकों को पराजित किया था।[90] गोण्डोफर्नीज ने कई उपाधियाँ धारण की जिनमें प्रमुख है *महाराजा राजाधिराज त्रदाता देवत्रता गुड़फरासा, महाराजा राजराजा महाता धरमिआ देवव्रत गुड़फरासा,* इत्यादि। गोण्डोफर्नीज द्वारा प्रचलित मुद्राओं में त्रिशूल तथा तालपत्र धारण किये हुए भगवान शिव का भी अंकन मिलता है जो उसके शिवभक्त होने का प्रमाण है। देवत्रता की उपाधि भी उसकी शिव के प्रति भक्ति की सूचक है।[91] ईसाई धर्म के लेखों के अनुसार गोण्डोफर्नीज भारत का राजा था तथा भारतवर्ष में प्रथम ईसाई धर्म का प्रचारक गोण्डोफर्नीज के शासनकाल में ही भारत आया था, जिसका नाम सेन्ट टॉमस था।[92] गोण्डोफर्नीज की मृत्यु के पश्चात एब्दगेसस तथा पकोरिस सिंहासनारूढ़ हुए परन्तु ये दोनों ही निर्बल शासक सिद्ध हुए।[93] तत्पश्चात कुषाणों द्वारा पहलव शासन का अंत हुआ। सत्ता चले जाने के पश्चात भी उनके भारत में प्रासंगिक बने रहने के प्रमाण मिलते हैं जिसमें मुख्य है सुविशाख जो कि पहलव था, रुद्रदामन के राज्य में सौराष्ट्र का गवर्नर नियुक्त हुआ था।[94] गौतमीपुत्र शतकर्णि को शक-यवन तथा पह्लवों का उन्मूलक कहा गया है।[95] हिन्द-यवन तथा शक शासकों की भांति ही पहलव शासकों के सिक्कों पर भी ध्रमिक्स की उपाधि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलती है जो विदेशी शासकों की भारतीय सम्मिलन की प्रक्रिया को दर्शाता है तथा इस दिशा में इंगित करता है कि संभवतः उनकी बौद्ध धर्म में श्रद्धा थी।

2. 6 भारत पर शकों का आक्रमण

शकों का आक्रमण भारत के इतिहास में भिन्न स्थान रखता हैं क्योंकि शकों के प्रथम आक्रमण के पश्चात वो समय-समय पर भारत पर आक्रमण करते रहे, यहाँ तक कि हूणों के भारत पर शासनकाल में भी उनकी एक शाखा ने भारत पर आक्रमण किया था। शक तथा पह्लवों के इतिहास की प्रारंभिक जानकारी चीनी स्रोतों से मिलती है तथा इन चीनी ग्रंथों में शकों को सई नाम से सम्बोधित किया गया है। शकों को वृहद् सीथियन प्रजाति की एक शाखा के रूप में माना जाता है जिसने एशिया के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। शक तथा पह्लवों के बारे में जानकारी के मुख्य स्रोत उनके द्वारा अंकित अभिलेख तथा मुद्राएं है। शक या सीथियन का मूल स्थान दक्षिणी रूस माना जाता है परन्तु शकों की एक शाखा मध्य एशिया में भी निवास करती थी।[96] ऐतिहासिक विवरणों से ज्ञात होता है कि शक एक खानाबदोश जाति थी जो डेरियस प्रथम के समय में सीरदारिया के उत्तर में निवास करती थी।[97] शकों ने बैक्ट्रिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था, बैक्ट्रिया पर शकों की विजय का मुख्य कारण यवन साम्राज्य की आंतरिक कलह तथा पह्लवों के आक्रमणों से उनकी शक्ति का क्षीण होना था।[98] 165 ईसा पूर्व में यू-ची नामक जनजाति ने उन पर आक्रमण किया, इस आक्रमण ने शकों को स्थान परिवर्तन हेतु विवश कर दिया फलस्वरूप शकों को स्थायी निवास की खोज में अन्य स्थानों पर आक्रमण करने पड़े इसी क्रम में उन्होंने भारत पर भी आक्रमण आरम्भ किया जिसमें अंततः उन्हें सफलता प्राप्त हुई तथा वो उत्तर दिशा से भारत भूमि में प्रवेश कर गए।[99] यद्यपि विद्वानों द्वारा शकों के भारत आक्रमण हेतु अन्य कारण भी प्रस्तुत किए गए है जिनमें राजनीतिक, तथा जलवायु सम्बन्धी कारण भी उचित प्रकट होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

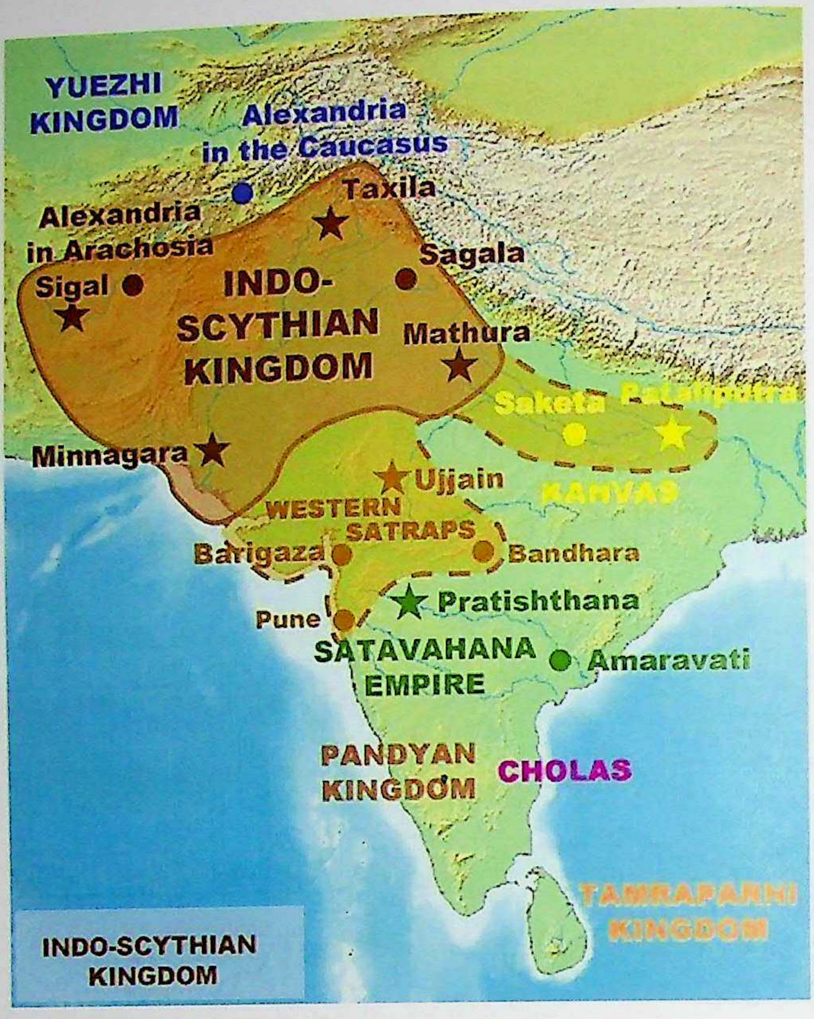

मानचित्र 6 -भारत में शक साम्राज्य

अन्य विद्वान् हखामनी साम्राज्य की भारत विजय, जो उनको अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक प्राप्त हुई थी, को भी एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। यह सर्वथा अनुचित नहीं है क्योंकि शक, साइरस महान की सेना में सम्मिलित थे तथा संभवतः वह साइरस के साथ भारत भी आये थे। शकों का एक अन्य समूह भी दक्षिण दिशा से भारत की ओर अग्रसर हुआ। उत्तरी पंजाब पर उस समय यवन सम्राट का शासन था तथा शक, भारत भूमि को अनेक मार्गों से अतिक्रमित करते हुए आगे बढे व अंततः उन्होंने पश्चिमोत्तर भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया। पश्चिमोत्तर भारत की इस शाखा ने सर्वप्रथम सीस्तान पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, तत्पश्चात अराकोसिया व बलूचिस्तान के मार्ग से अग्रसर होते हुए निचले सिंध क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित किया जो भारतीय इतिहास में शकद्वीप के नाम से प्रसिद्ध हुआ। शकों की द्वितीय शाखा ने काराकोरम श्रेणी को पार कर कश्मीर में अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया जिन्हें प्राचीनकाल में जिबिन या कि-पिन नाम से जाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था।[100] तदुपरांत अपने विजयरथ को अग्रसारित करते हुए उन्होंने तक्षशिला तथा मथुरा के शासकों को पराजित कर वहां पर अपना शासन स्थापित किया। राजबली पांडे के अनुसार मालव गण के प्रमुख विक्रमादित्य ने सभी गणतंत्रों को संगठित करके 57 ईसा पूर्व में शकों को मालवा में पराजित कर भारत से प्रस्थान हेतु विवश किया। इस ऐतिहासिक विजय को विक्रमादित्य ने उत्सव के रूप में मनाया तथा मालव गण ने इस वर्ष को एक संवत के रूप में आरम्भ किया जिसे प्रारम्भ में कृत नाम से जाना गया व कालांतर में मालव कहा गया। यह अंततः विक्रम संवत के रूप में भारत में प्रसिद्ध हुआ।[101] शकों का उल्लेख *रामायण*[102], *महाभारत*[103] तथा *मनुस्मृति*[104] में मिलता है। *हरिवंश पुराण*[105] तथा *युगपुराण*[106] में भी उनका उल्लेख मिलता है तथा *हरिवंश पुराण* के अनुसार वो अपने सिर में आधे स्थान पर ही बाल रखते थे। गौतमीपुत्र शातकर्णि[107] तथा समुद्रगुप्त[108] की प्रशस्ति में भी शकों का उल्लेख मिलता है। प्राप्त विवरणों के अनुसार भारतीय उपमहाद्वीप में शकों की अनेक शाखायें थीं तथा उनके राजाओं को क्षत्रप कहा जाता था । इन शाखाओं को मुख्यतः 2 भागों में विभाजित किया जाता है-

1. उत्तरी क्षत्रप- जिनमें तक्षशिला और मथुरा के शक शासक आते हैं।
2. पश्चिमी क्षत्रप- जिनमें उज्जैन तथा नासिक क्षेत्रों के शक शासक आते हैं।

2. 6.1 तक्षशिला के शक शासक

मेउस को भारत में शक वंश का प्रथम शासक माना जाता है जिसे तक्षशिला के शासक मोग के रूप में भी जाना जाता है। तक्षशिला से प्राप्त हुए ताम्रपत्र के अनुसार शक शासक मेउस विक्रम संवत 78 (20 ईसापूर्व) में भारत का राजा बना । मेउस ने स्वयं को इतिहास में एक शक्तिशाली शासक के रूप में सिद्ध किया तथा भारत पर 42 वर्षों तक (ईसा पूर्व 20 से ईस्वी सन 22 तक) शासन किया।[109] मेउस ने यवनों को पराजित कर उनके प्रसिद्ध प्रांत पुष्कलावती व तक्षशिला को अपने आधीन कर लिया था।[110] तक्षशिला से प्राप्त अभिलेखों के अनुसार मेउस ने गांधार क्षेत्र पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था तथा उसका साम्राज्य मथुरा तक विस्तृत हो गया था। दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षत्रप कुसलक तथा उसका पुत्र पतिक उसके आधीन थे तथा उन्होंने महात्मा बुद्ध के अवशेषों को तक्षशिला में स्थापित करवाने के साथ साथ वहां पर एक बौद्ध स्थल का निर्माण भी करवाया था।[111] मेउस द्वारा प्रचलित करवाई गयी मुद्राओं तथा डेमेट्रियस व स्ट्रैटो प्रथम द्वारा प्रचलित मुद्राओं में समानता देखने को मिलती है। इन ताम्र तथा रजत मुद्राओं पर बाएं हस्त में राजदंड धारण किये हुए यूनानी देवता जियस तथा दायीं हथेली में विजय की देवी नाइक का अंकन मिलता है (चित्र-1)। इनमें उत्कीर्ण लेख यूनानी तथा प्राकृत भाषा में थे तथा इन पर *राजदीराजसा महातसा मोआसा* जैसी उपाधियाँ अंकित थी। उत्खनन से प्राप्त मुद्राओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि मेउस के उपरान्त गांधार के सिंहासन पर उसका जमाता एज़ेज़ प्रथम बैठा था जिसने पूर्वी पंजाब में यवन शासन का अंत किया तथा हिप्पोस्ट्रेटस के राज्य को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसने अपोलोडोटस द्वितीय तथा हिप्पोस्ट्रेटस की मुद्राओं को पुनरंकित करवाया था।[112] एज़ेज़ प्रथम ने नवीन प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन भी करवाया था जिसमें एक राजा बख्त्री ऊँट के साथ एक अंकुश लिए हुए है जो उसके खानाबदोश जीवन को दर्शाता है।[113] (चित्र-2) सर जॉन मार्शल के अनुसार एज़ेज़ प्रथम ने यमुना घाटी पर भी विजय प्राप्त कर ली थी।[114] एज़ेज़ प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र एजिलिसेज शासक बना, तदुपरांत एज़ेज़ द्वितीय शासक बना।[115] पहलव शासक गोण्डोफर्नीज ने एजेज द्वितीय को पराजित कर उन्हें उस क्षेत्र से पलायन हेतु विवश कर दिया तथा तक्षशिला को अपनी राजधानी बनाया। उत्तरवर्ती शक क्षत्रपों ने पहलव तथा कुषाण शासकों के अधीन शासन किया था।[116]

2. 6.2 मथुरा के शक शासक

ब्राह्मी लिपि से सुशोभित मोरा अभिलेख राजबुल का उल्लेख करता है।[117] मथुरा के सिंह शीर्ष अभिलेख से यह निष्कर्ष निकालता है कि मथुरा का प्रथम शक क्षत्रप राजुल था जिसे राजबुल के नाम से भी जाना जाता था।[118] राजुल की मुद्राओं पर महाक्षत्रप की उपाधि का अंकन मिलता है जो इस बात का सूचक है उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था (चित्र3)।[119] राजुल की मुद्राएं यूनानी शासक स्ट्रैटो प्रथम तथा स्ट्रैटो द्वितीय की मुद्राओं के समान ही है जिससे यह निष्कर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकलता है कि मथुरा का क्षत्रप बनने के पूर्व उसने पूर्वी पंजाब पर भी शासन किया था। राजबुल के काल में उसका पुत्र शोडस क्षत्रप बना तदुपरांत उसने अपने पिता की मृत्यु के उपरांत महाक्षत्रप के रूप में शासन किया। शोडस के विषय में अधिक जानकारी आमोहिनीदान पट्टिकालेख (amohini votive tablet) से मिलती है।[120] कुषाण वंश ने शकों को पराजित कर मथुरा में उनके प्रादुर्भाव का अंत कर दिया।

2. 6.3 नासिक के शक शासक

नासिक के शक शासकों को क्षहरात वंश का माना जाता हैं तथा इस वंश का प्रथम शक शासक भूमक था। भूमक के शासन के विषय में जानने का एकमात्र स्रोत उसके द्वारा प्रचलित मुद्राएं है। खरोष्ठी व ब्राह्मी में लिपिबद्ध उसकी मुद्रायें गुजरात, काठियावाड़, मालवा इत्यादि क्षेत्रों से प्राप्त हुई है। उसकी मुद्राओं में उसके लिए क्षहरात क्षत्रप उपाधि का उपयोग हुआ है (चित्र-4)। पहलवों के साथ भूमक का युद्ध हुआ था अतः भूमक का शासन ईस्वी सन 50 के आस पास प्रारम्भ हुआ था। भूमक के उपरांत उसका पुत्र नहपान क्षहरात वंश का शासक बना। नहपान क्षहरात वंश का सर्वाधिक प्रतापी शक शासक सिद्ध हुआ।[121] नासिक के निकट प्राप्त हुए गुहा अभिलेख से नहपान के विषय में जानकारी मिलती है। उल्लेख मिलता है कि उसका जमाता उषावदात उसे प्रशासनिक कार्यों में सहयोग करता था तथा उषावदात ही उसकी सेना का सेनाप्रमुख था।[122] नहपान के शासनकाल में प्रचलित रजत तथा ताम्र मुद्राएं महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़, अजमेर तथा दक्षिणी सिंध में बड़ी संख्या में मिलती है (चित्र-5)। विशाल संख्या में प्राप्त हुई मुद्राओं से उसके साम्राज्य की विशालता का आभास होता है। अनेक समृद्ध क्षेत्र उदाहरणतः भड़ौच, दशपुर, सोपारा, गोवर्धन तथा नासिक उसके आधिपत्य में थे। उसने महाक्षत्रप तथा राजन की उपाधि धारण की।[123] पेरिप्लस में नामबनस (Nammadus) के विषय में लिखा है जिसे भारत का राजा कहा गया है। यह नामबनस, नहपान के लिए ही प्रयुक्त हुआ था।[124] नहपान का जमाता ऋषभदत्त (उषावदात) गोवर्धन तथा मामल्ल का वायसराय था जिसके अभिलेख नासिक तथा कार्ले से प्राप्त होते हैं। नासिक अभिलेखों में उसकी मालवों पर विजय प्राप्त कर राजस्थान के उत्तमभद्र जाति के लोगों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा का उल्लेख मिलता है, तथा यह भी ज्ञात होता है की उसने पुष्कर तीर्थ में प्रचुर मात्रा में दान भी दिया था।[125] नासिक अभिलेख से ज्ञात होता है कि ऋषभदत्त ने एक ब्राह्मण असविभूति से भूमि खरीदकर बौद्ध भिक्षुओं को प्रदान की थी।[126] नहपान के बाद क्षहरात वंश के किसी शासक का उल्लेख नहीं मिलता है। अंततः गौतमीपुत्र शातकर्णि ने नहपान को परास्त कर क्षहरात वंश का अंत कर दिया।

2. 6.4 उज्जैन के शक शासक

पश्चिमोत्तर क्षत्रपों की द्वितीय शाखा उज्जैन में चष्टन द्वारा प्रारम्भ की गयी थी। चष्टन इस शाखा का प्रथम महाक्षत्रप था जो यशोमतिक का पुत्र था। रैपसन के अनुसार चष्टन द्वारा प्रारम्भ वंश का नाम कार्दमक था। चष्टन के विषय में प्रथम जानकारी अंधौ अभिलेख (शक सम्वत 52) में मिलती है जो ईस्वी सन 130 है। जिसमें चष्टन को महाक्षत्रप तथा रुद्रदामन को क्षत्रप के रूप में बताया गया है।[127] डी सी सरकार कहते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाणों ने चष्टन को अपने साम्राज्य के दक्षिणी-पश्चिमी भूभाग का उपराजा नियुक्त किया था। इसके द्वारा चष्टन को मुख्य रूप से यह उत्तरदायित्व दिया गया था कि शातकर्णि द्वारा विजित क्षेत्रों को पुनः कुषाण साम्राज्य में सम्मिलित किया जाए।[128] कुषाण शासक कनिष्क ने क्षत्रपों के माध्यम से अपने विशाल साम्राज्य को कुशलतापूर्वक चलाया था तथा शक क्षत्रप उसके वायसराय के रूप में कार्य करते थे।[129] मथुरा में चष्टन की एक सिरविहीन मूर्ति प्राप्त हुई है जो चष्टन के व्यक्तित्व के विषय में एक सकारात्मक छवि को दर्शाती है।[130] प्रारम्भ में शकों के भारत आने का कारण उनके लिए एक सुरक्षित तथा संपन्न भूमि की खोज हेतु था, परन्तु यह भी सत्य है की उन्होंने अपने पूर्ववर्ती सभी वाह्य शक्तियों की अपेक्षा भारत में अधिक सफलता प्राप्त की। चष्टन का पुत्र जयदामन उसके शासनकाल में क्षत्रप बना जिसका वर्णन अन्धौ, जूनागढ़ तथा गुंडा के अभिलेखों में मिलता है। जयदामन से सम्बंधित मुद्राओं में उसे केवल क्षत्रप के रूप में ही व्यक्त किया गया है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसकी मृत्यु महाक्षत्रप बनने के पूर्व ही हो गई थी। जयदामन की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र रुद्रदामन को क्षत्रप बनाया गया जिसने अपने दादा चष्टन के साथ शासन किया था तथा चष्टन की मृत्यु के पश्चात उसने महाक्षत्रप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की उपाधि धारण की। रुद्रदामन प्रथम उज्जैन का सर्वाधिक शक्तिशाली शक क्षत्रप था जिसने संभवतः ईस्वी सन 130 से 150 ईस्वी के मध्य शासन किया था।[131] जूनागढ़ अभिलेख के अनुसार सभी जातियों ने रुद्रदामन को अपना रक्षक चुना तथा उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण की। एक महान शासक होने के उपरांत भी उपलब्ध साहित्य में रुद्रदामन के विषय में अत्यंत कम जानकारी ही मिल पाती है। जूनागढ़ तथा गिरनार के पाषाण अभिलेखों से रुद्रदामन द्वारा यौधेय जाति को पराजित करने की जानकारी मिलती है। अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि रुद्रदामन ने आकर, अवन्ति, अनूप, अपरान्त, आनर्त, सुराष्ट्र, कुकुर, स्वभ्र, मरू, सौवीर, निषाद आदि क्षेत्रों को विजित किया।[132] सातवाहन शासक वशिष्ठीपुत्र शातकर्णि तथा रुद्रदामन के मध्य अनेक युद्ध हुए थे, परन्तु कन्हेरी गुफा अभिलेख से रुद्रदामन की पुत्री की सातवाहन राजा वशिष्ठीपुत्र शातकर्णि से विवाह की जानकारी मिलती है यह सूचना इस बात का द्योतक है कि अंत में दोनों ही शासकों ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर शत्रुता समाप्त की ।[133]

2. 7 कुषाणों का आक्रमण

शक तथा पहलवों को पराजित कर कुषाणों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया तथा अपने साम्राज्य की सीमा को भारतभूमि में अपने पूर्ववर्ती किसी भी विदेशी शक्ति से अधिक विस्तृत किया था। कुषाणों का शासन भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि मौर्य साम्राज्य के उपरांत भारत में कोई भी भारतीय अथवा विदेशी वंश इतना विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सक्षम नहीं हो पाया था। कुषाण साम्राज्य का विस्तार न केवल उत्तर भारत में अपितु मध्य एशिया तक था।[134] कुषाण भारतीय समाज में पूर्ण रूप से घुल मिल गए थे यहाँ तक की उन्होंने भारतीय धर्म तथा भाषा को भी अपना लिया था। पश्चिम तथा मध्य एशिया के साथ भारतीय सम्बन्धों को एक नया आयाम कुषाण शासक कनिष्क के शासनकाल में ही मिला। कुषाण वंश की प्रारंभिक जानकारी चीनी ग्रंथों *सिएन-हान-शू* तथा *हाऊ-हान-शू* से मिलती है।[135]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

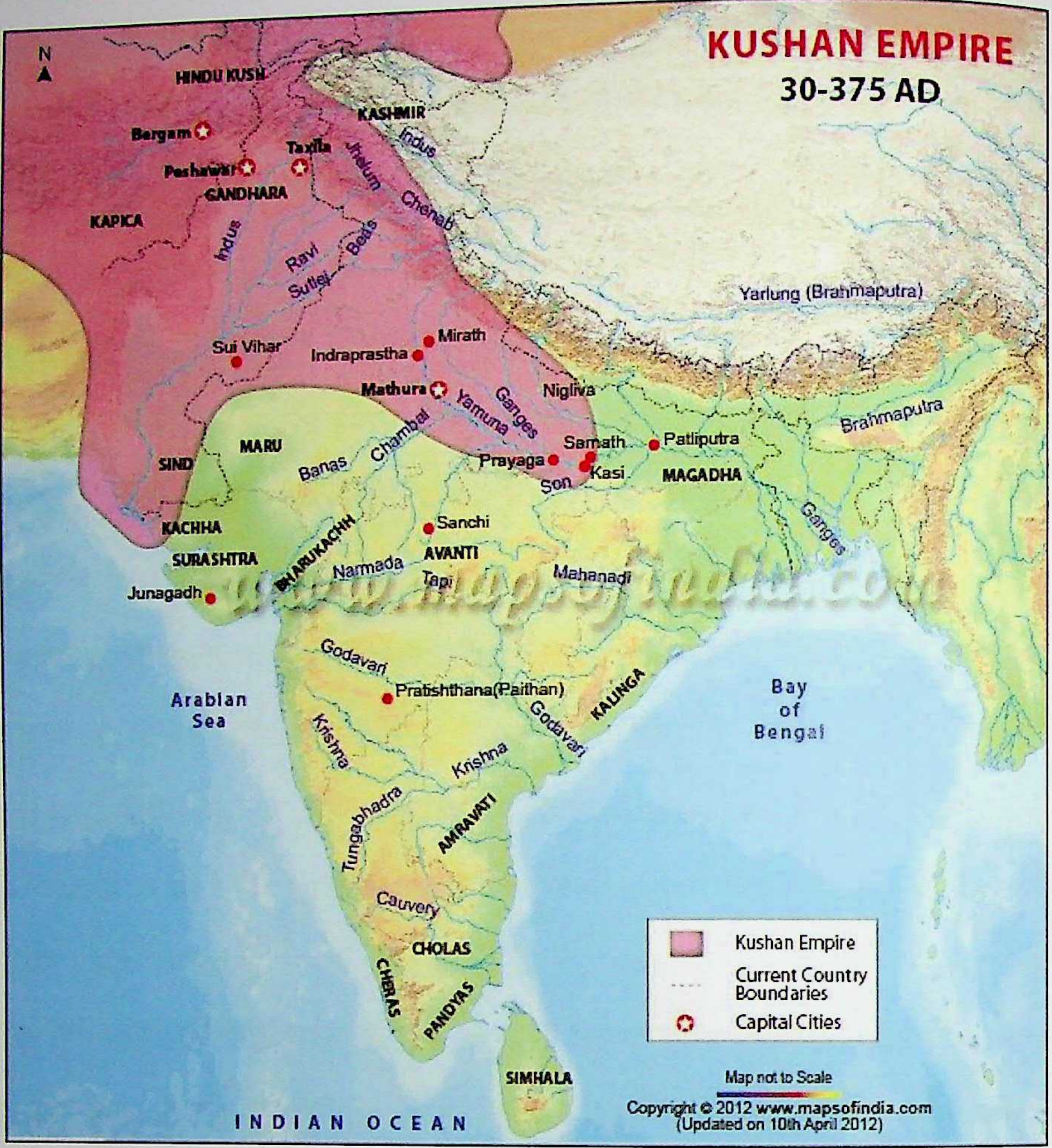

मानचित्र 7 -भारत में कुषाण साम्राज्य

कुषाण, चीन के पश्चिमी सीमा के निकट निवास करने वाली यूची जाति की एक शाखा थी जो हूँग-नू शासक के आक्रमण के उपरांत वहाँ से भागकर मध्य एशिया की इली नदी घाटी में चली गयी थी। यहाँ से यह जाति दो शाखाओं में विभक्त हो गई थी जिसकी एक शाखा, जिसे लघु यू-ची कहा जाता है, दक्षिण दिशा में अग्रगामी होकर उत्तरी तिब्बत में व्यवस्थित हो गई। द्वितीय शाखा, जिसे महान यूची कहा जाता है, पश्चिम दिशा में अग्रगामी होकर मध्य एशिया के सीरदरिया में शकों को पराजित कर व्यवस्थित हो गई। द्वितीय शाखा ने साम्राज्य विस्तार की प्रक्रिया में यवनों को पराजित कर बैक्ट्रिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। बैक्ट्रिया में महान यू-ची शाखा पुनः 5

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखाओं में विभक्त हो गई जिसकी एक शाखा कुई-शुआंग ने आगे बढ़ते हुए भारत में अपना शासन स्थापित किया, यही शाखा कालान्तर में कुषाण के नाम से प्रसिद्ध हुई।[136] कुजुल कदफिसस भारत में कुषाण वंश का प्रथम शासक था। उसने यू-ची की सभी पांच शाखाओं को विजित किया तथा किपिन तथा काबुल पर अपना शासन स्थापित किया। यू-ची जाति के सम्राट कदफिसस, जिसका सम्बन्ध शक्तिशाली कुषाण शाखा से था, ने शक्तिहीन होते हिन्द-यवन शासकों तथा शकों को पराजित किया। यवन राजा हर्मियस के साथ उसकी मुद्रायें पायी जाती है (चित्र-6)। यवन राजा हर्मियस के साथ प्रचलित तथा खरोष्ठी लिपि में अंकित प्रारंभिक मुद्राओं से विद्वान यह निष्कर्ष भी निकालते है की कुजुल कदफिसस यवन राजा का सामंत था, तथा कालांतर में यवन राजा की मृत्यु के उपरांत स्वतंत्र शासक बना व महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।[137] कुजुल कदफिसस ने पहलव शासकों को पराजित किया तथा भारतीय सीमा में झेलम नदी तक अपने राज्य का विस्तार किया। स्मिथ के अनुसार कुजुल कदफिसस ने ईस्वी सन 45 से 85 तक शासन किया था परन्तु वर्तमान विद्वान इस तिथि को सहज स्वीकार नहीं कर पाते हैं।[138] कुजुल कदफिसस ने अपने शासन काल में केवल ताम्र मुद्राएं प्रचलित करवाई थी जिन पर उसकी उपाधि *सचधर्मथिद* (sacha dhrama thita) उत्कीर्ण है जो बौद्ध धर्म में उसकी आस्था को दर्शाती है।[139] कुजुल कदफिसस के उपरांत विम कदफिसस कुषाणवंश का द्वितीय शासक बना। परन्तु शासन के दृष्टिकोण से विम कदफिसस को ही भारत में कुषाण वंश का संस्थापक माना जाता हैं क्योंकि उसने भूमि के आंतरिक भूभागों को विजित करके उसमें अपने सामंत नियुक्त किये जो उसके नाम से शासन चलाते थे। चीनी विश्लेषकों के अनुसार येन-काओ-चेन ही विम कदफिसस था जो कुजुल कदफिसस का पुत्र था, उसने निचले भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था।[140] राय चौधरीजी के अनुसार विम कदफिसस के शासनकाल में चीनी सेनापति पान-चाओ ने दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र पर आक्रमण कर कुषाण सेना को पराजित किया फलस्वरूप कुषाण सम्राट को चीनी शासक हो-ती को कर देना पड़ा था।[141] विम कदफिसस के शासनकाल के समय अंतराष्ट्रीय व्यापार में स्वर्ण मुद्राओं के प्रचलन में वृद्धि हो रही थी जिस कारण से कुषाण शासक ने भारत में भी स्वर्ण मुद्राओं का व्यापक रूप से विस्तार किया। यद्यपि पूर्व में हिन्द यवन राजाओं ने स्वर्ण मुद्रायें चलवाई थी परन्तु व्यापक रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन विम कदफिसस ने ही आरम्भ करवाया था। कालान्तर में अन्य कुषाण शासकों तदुपरांत गुप्त शासकों द्वारा भी स्वर्ण मुद्राओं को प्रचलन में रखा गया।[142] पंजाब, कंधार तथा काबुल से प्राप्त हुई मुद्राओं पर सोटर मेगस अंकित है, विद्वानों का एक वर्ग इसे विम कदफिसस की उपाधि मानता है तथा अन्य वर्ग इसे विम कदफिसस के सामंत का नाम मानते हैं। सोटर मेगास अंकित मुद्राओं का विस्तार सिद्ध करता है कि कुषाण साम्राज्य का प्रसार सिंधु से गंगा नदी के मध्य था। मुद्राओं से पता चलता हैं कि उसने *महाराजाधिराज, सर्वलोकेश्वर तथा महेश्वर* आदि उपाधियाँ धारण की थी। उसकी मुद्राओं पर शिव, नंदी तथा त्रिशूल की आकृतियों का अंकन मिलता है जो उसके शैव धर्मावलम्बी होने का प्रतीक है। विम कदफिसस के शासन काल में भारत, चीन तथा रोम के मध्य राजनीतिक तथा व्यापारिक संबंध अधिक सुदृढ़ हुआ।[143] कुजुल कदफिसस की भांति ही विम कदफिसस का शासन काल भी विवादित है, स्मिथ[144] उसका शासनकाल ईस्वी सन 85 से 120, कनिंघम[145] उसका शासन काल ईस्वी सन 35 से 75 तक का मानते हैं। विम कदफिसस के उपरान्त कनिष्क कुषाण वंश का शासक बना। भारतीय इतिहास के महानतम शासकों में कुषाण वंश के कनिष्क का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। पूर्ववर्ती कुषाण शासकों की भांति ही कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि भी अत्यंत विवादापस्द है, विभिन्न विद्वानों ने राज्यारोहण की तिथि को भिन्न-भिन्न माना है तथा एक मत बनाना अत्यंत दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा बतायी गयी राज्यारोहण की तिथि की सूची निम्न है-

फ्लीट[146], कन्निंघम[147]	58 ईसापूर्व
बनर्जी[148], रैप्सन[149]	ईस्वी सन 78
स्मिथ[150], राजबलि पांडे[151]	ईस्वी सन 120
मार्शल[152]	ईस्वी सन 125
घिरशमन[153]	ईस्वी सन 144
यू होआन[154]	ईस्वी सन 248

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ए. एल. बाशम ने 1960 में लंदन में संपन्न हुए सम्मलेन में कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि को प्रमाणित करते हुए इसे ईस्वी 78 बतलाया जो वर्तमान समय में विद्वानों के मध्य में सर्वाधिक मान्य तिथि है।[155] चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार कनिष्क ने एक विशाल साम्राज्य पर अपना शासन स्थापित किया जिसकी राजधानी पुरुषपुर थी। उसने कपिशा को भी अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया था।[156] कल्हण रचित राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कश्मीर भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित था[157] उसने वहां कनिष्कपुर नामक नगर की स्थापना की थी, एक मत ये भी है कि इस नगर की स्थापना संभवतः कनिष्क प्रथम ने नहीं वरन कनिष्क द्वितीय ने की थी।[158] कनिष्क के साम्राज्य का विस्तार पूर्व में बिहार से लेकर पश्चिम में खुरासान तक, उत्तर में खोतान से लेकर दक्षिण में कोंकण तक हो गया था। उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त, बहावलपुर, मथुरा, साँची, सिंध, मालवा, राजपुताना, सौराष्ट्र पर भी कनिष्क ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। साकेत तथा पाटलिपुत्र पर भी कनिष्क ने विजय प्राप्त कर ली थी।[159] अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण पश्चिमोत्तर भारत पर कनिष्क ने अधिकार स्थापित कर लिया था। अफगानिस्तान स्थित रबातक अभिलेख से कनिष्क के समय की अनेक जानकारियां प्राप्त हुई हैं तथा इस अभिलेख से यह ज्ञात होता है की उसने *देवपुत्र* उपाधि धारण की थी।[160] कनिष्क ने अपने साम्राज्य के पूर्वोत्तर में महाक्षत्रप खरपल्लान तथा क्षत्रप वनस्पर को अपना सामंत नियुक्त किया था जिसकी जानकारी सारनाथ के अभिलेख से प्राप्त होती है।[161] मणिक्याला अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने उत्तरी भाग में दंडनायक नामक अधिकारी नियुक्त किये थे।[162] कनिष्क ने अपने राज्यारोहण के समय एक नवीन सम्वत प्रारम्भ किया था तथा नेपाल के लिच्छवि राजवंश द्वारा इस सम्वत के प्रयोग करने के प्रमाण मिलते हैं।[164] कनिष्क द्वारा प्रचलित सम्वत पश्चिमोत्तर भारत तक ही लगभग 100 वर्षों तक प्रचलन में रहा जिसे बाद में शक सम्वत के रूप में जाना गया ।[164] पह्लव शासक वोलोगसेस ने कुषाण राज्य पर आक्रमण किया परन्तु कनिष्क ने उसको पराजित कर आक्रमण को विफल कर दिया था।[165]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनिष्क की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र वासिष्क शासक बना उसने ईस्वी सन 102 से 106 तक शासन किया। वासिष्क द्वारा प्रचलित स्वतंत्र मुद्रायें प्राप्त नहीं होती है।[166] कनिष्क तृतीय के सिंध क्षेत्र के निकट से प्राप्त आरा अभिलेख से वासिष्क के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस अभिलेख में उसे कनिष्क का पिता बताया गया है जो संभवतः कनिष्क द्वितीय है । उसे खरोष्ठी लिपि में वाझेष्क नाम से सम्बोधित किया गया है। वासिष्क ने अपने भ्राता हुविष्क के साथ शासन किया था।[167] साँची से प्राप्त मथुरा कला की मूर्तियों में वासिष्क का नाम मिलता है जिसमें उसकी उपाधि *महाराजा राजातिराजा देवपुत्र शाही वासिष्क अंकित है।*[168] मथुरा के निकट ईसापुर अभिलेख से भी वशिष्क का सम्बन्ध मिलता है जहाँ उसकी उपाधि *महाराजस्य राजातिराजस्य देवपुत्रस्य शाही वसिष्कास्य* संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है।[169] राजतरंगिणी में उल्लिखित जुष्क ही संभवतः वसिष्क है जिसने कश्मीर में जुष्कपुर नगर की स्थापना की थी। कल्हण की लेखनी से यह भी आशय निकलता है की वसिष्क तथा हुविष्क ने भी एक साथ शासन किया था।[170] कनिष्क के शासन के उपरांत हुविष्क को इतिहास में कुषाणवंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक माना गया हैं जिसका शासनकाल ईस्वी सन 106 से 138 तक था। हुविष्क की मुद्रायें उत्तर में कपिशा से लेकर पूर्व में बिहार तक पायी गई है। काबुल के निकट वार्दक(wardak) अभिलेख से उसके अफगानिस्तान में शासन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। हुविष्क ने बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान किया था तथा बौद्ध धर्म की उन्नति हेतु महत्वपूर्ण कार्य किये थे। उसके द्वारा मथुरा में बौद्ध विहार का निर्माण कार्य कराया गया था जिसमें *महाराजस्य देवपुत्रस्य हुविष्क* उत्कीर्ण है। मध्य एशिया के कतिपय प्रांतों के शासकों ने मथुरा की पुण्यशाला में 1100 रजत मुद्राएं समर्पित की थी। यह पुण्यशाला निर्धनों को भोजन करने हेतु हुविष्क द्वारा चलायी गयी थी। संभव है की यह शासक वस्तुतः हुविष्क के वायसराय थे।[171] पाटलिपुत्र तथा बोधगया में हुविष्क की स्वर्ण मुद्राएं तथा प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जो हुविष्क के इस स्थानों पर शासन को सुनिश्चित करती है।[172] हुविष्क ने कनिष्क प्रथम की ही भांति कश्मीर में हुविष्कपुर नामक नगर स्थापित किया था जिसका साक्ष्य राजतरंगिणी से प्राप्त होता है। हुविष्क ने कुषाण वंश की राजधानी पुरुषपुर से स्थानान्तरित कर मथुरा कर दी थी।[173] हुविष्क को धर्म में विशेष रूचि थी तथा उसकी प्रजा भी उसके इस गुण पर मोहित थी। कनिष्क प्रथम की ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति उसने बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया तथा मथुरा में बौद्ध मठ भी बनवाया था।[174] परन्तु उसकी मुद्राओं के अध्ययन से उसके हिन्दू धर्म के प्रति श्रद्धा की जानकारी मिलती है । उसके द्वारा प्रचलित मुद्राओं पर प्रचुरता के साथ हिन्दू देवी देवताओं का अंकन मिलता है। शिव, स्कन्दकुमार, विशाख, कार्तिकेय, चतुर्भुज विष्णु, धनुर्धारी गणेश का अंकन उसकी मुद्राओं पर बहुतायत से प्राप्त होता है (चित्र-7)।[175] कनिष्क द्वितीय ने हुविष्क के साथ शासन कार्य आरम्भ किया था परन्तु उसके स्वतंत्र रूप से शासन करने के पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलते है।[176] कतिपय विद्वानों का मत है की कश्मीर के कनिष्कपुर की स्थापना कनिष्क द्वितीय ने की थी न कि कनिष्क प्रथम ने।[177] कनिष्क द्वितीय के उपरांत कुषाण वंश का अंतिम महान सम्राट वासुदेव प्रथम था जिसने तीसरी शताब्दी में भारत में शासन किया था। वासुदेव नाम से यह प्रकट होता है कि कुषाणों का पूर्णतः भारतीयकरण हो गया था। वासुदेव की मुद्राएं सहरी बहलोल, जमालगढ़ी, सिरकप तथा तक्षशिला से प्राप्त हुई हैं, जो उसके साम्राज्य की विशालता को प्रदर्शित करता है। वह अफगानिस्तान से वाराणसी तक विस्तृत विशाल साम्राज्य का शासक था। वासुदेव ने चीन में अपने दूत भेजे थे तथा चीनी साहित्य में उसे ता-यू-ची के शासक की उपाधि से सम्बोधित किया गया है। घिर्शमन ने बेग्राम से प्राप्त मुद्राओं को वासुदेव प्रथम से सम्बंधित किया है।[178] उसके अधिकतर अभिलेख मथुरा में प्राप्त होते हैं तथा उसकी मुद्राओं पर शिव व नंदी तथा शिव का हाथी के साथ अंकन मिलता है जो उसके शैव धर्मावलम्बी होने का सूचक है। पश्चिमोत्तर भारत के प्रांतों को वासुदेव प्रथम युद्ध में हार गया तथा उसका राज्य मथुरा के निकट तक ही सीमित रह गया था।[179] मगध व कौशाम्बी में भी अनेक जातियों ने उसके विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया था फलस्वरूप यह स्थान भी उसकी अधीनता से मुक्त हो गए। वासुदेव प्रथम के काल में पश्चिम से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध क्षीण होने लगा था जिसका मुख्य कारण कुषाणों की क्षीण होती शक्ति थी जो व्यापार हेतु स्वर्ण मुद्राओं के मानकों को उच्च नहीं रख सकी। वासुदेव प्रथम को मूल कुषाण वंश का अंतिम शासक माना जाता है इसके पश्चात के शासक उत्तर कुषाण कहलाते हैं। नागों, यौधेयों आदि वंशों ने भी अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया था तथा अपने क्षेत्रों में स्वयं की मुद्राओं का विनिमय प्रारम्भ कर दिया था। कुषाण वंश के पतन के अनेक कारण विद्वानों के मध्य प्रचलित हैं परन्तु सर्वाधिक प्रचलित कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि विदेशी आक्रमणों मुख्यतः ससेनियन का आक्रमण तथा भारतीय जातियों के विद्रोहों ने शनैः शनैः कुषाणवंश की शक्ति को अत्यंत क्षीण कर दिया था। अंततः कुषाण साम्राज्य अपने पतन की ओर अग्रसर हो गया। उत्तर कुषाण शासकों ने काबुल घाटी तथा भारतीय सीमा के क्षेत्रों पर अपना अधिकार स्थापित रखा था। समुद्रगुप्त के सिंहासनरूढ़ होने के उपरांत उत्तर कुषाण शासक ने पश्चिमोत्तर भारत से उन्हें उपहार प्रदान किये थे। पांचवी शताब्दी में कुषाणों ने गांधार तथा कश्मीर पर आधिपत्य स्थापित कर लिया था तथा दीर्घकाल तक इस भूखंड के शासक बने रहे। छठी शताब्दी में कुषाणों ने हूणों के साथ तथा नौवीं शताब्दी में मुस्लिम आक्रमणकारियों से भी युद्ध किया था। नौवीं शताब्दी में ब्राह्मण शासक कल्लर ने काबुल स्थित उनके राज्य को अत्यंत सीमित कर दिया था तथा हिन्दू शासन की नींव रखी थी। दसवीं शताब्दी में भी काबुल में उनके युद्ध के प्रमाण मिलते हैं। इस प्रकार कुषाण भारत में 1000 वर्षों तक किसी न किसी भूभाग पर शासन अवश्य करते रहे थे। अपने दीर्घकालिक शासन में उन्होंने भारत पर अपना दूरगामी प्रभाव स्थापित किया था।[180]

2. 8 हूणों का आक्रमण

हूण मध्य एशिया की एक अत्यंत बर्बर जाति थी जिसका मूलनिवास पश्चिमी चीन था। पश्चिमी चीन से निकलकर हूण पश्चिम की दिशा में आगे बढ़े तथा दो शाखाओं में विभक्त हो गए। प्रथम शाखा, जो पश्चिमी शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई, वोल्गा की दिशा में अग्रगामी हुई जबकि द्वितीय शाखा, जो पूर्वी शाखा के नाम से जानी जाती है, ऑक्सस की दिशा में चली गई। पश्चिमी शाखा यूराल पर्वत को पारकर पूर्वी यूरोप की दिशा में आगे बढ़ी तथा पूर्वी शाखा ने हिन्दुकुश को पार कर गांधार पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। पश्चिमी शाखा के हूणों को काले हूण तथा पूर्वी शाखा के हूणों को श्वेत हूण कहा जाता है ये नाम उन्हें स्थानीय लोगों के रंगो की तुलना द्वारा प्रदान किये गए थे।[181] कालिदास की*रघुवंश*[182] तथा राजशेखर की *काव्यमीमांसा*[183] में हूणों का वर्णन मिलता है। हूणों ने भारत पर प्रथम आक्रमण स्कंदगुप्त के शासनकाल में किया था जिसमें गुप्तवंश के सम्राट स्कंदगुप्त की सेना ने उन्हें पराजित कर उनके भारत अभियान पर विराम लगा दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

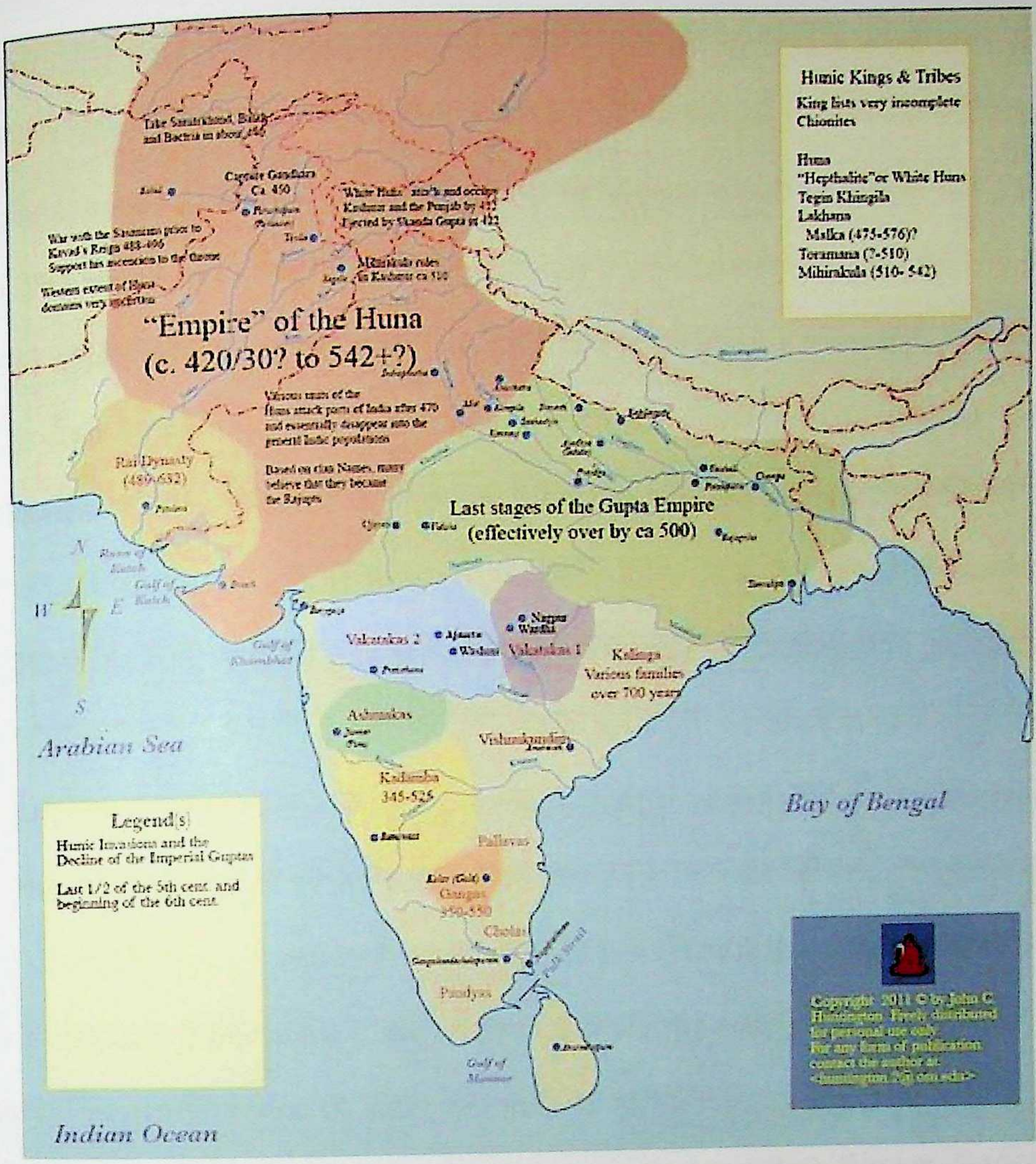

मानचित्र 8-भारत में हूण साम्राज्य

स्कंदगुप्त ने हूणों को सतलज नदी के पार तक विस्थापित कर दिया था तथा हूणों से गुप्त साम्राज्य को सुरक्षित रखा था । इस काल में हूण आक्रमण का भय न्यूनतम हो गया था। पर्सिया तथा यूरोप में हूण अत्यंत विनाशकारी सिद्ध हुए थे। तत्कालीन समाज तथा इतिहासकारों ने स्कंदगुप्त की विजय को अत्यंत महत्वपूर्ण माना। उसे भारत भूमि के रक्षक की उपाधि से सुशोभित किया गया, यहाँ तक की उसकी तुलना भगवान कृष्ण द्वारा प्राप्त विजय से भी की गयी थी, जिसका उल्लेख भीतरी स्तम्भ अभिलेख में मिलता है।[184] यद्यपि गिरनार अभिलेख में स्कंदगुप्त द्वारा म्लेच्छों की पराजय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वर्णन मिलता है जिसे पूर्ण रूप से हूणों का पराजय कहना संभवतः सत्य न हो।[185] ऐसे साक्ष्य नहीं मिलते हैं जिनसे यह कहा जा सके कि स्कंदगुप्त के काल में द्वितीय हूण आक्रमण हुआ था। डॉ आर. एस. त्रिपाठी के अनुसार स्कंदगुप्त की मृत्यु के पश्चात हूणों ने भारत पर द्वितीय आक्रमण किया। यह आक्रमण तोरमाण के नेतृत्व में संपन्न हुआ तथा उसकी विशाल सेना ने भारत में विजय प्राप्त की। तोरमाण ने मध्य एशिया से मध्य भारत तक अपना विशाल साम्राज्य स्थापित किया तथा अनेक वर्षों से स्थायी निवास की खोज में भटक रहे हूणों को एक स्थायी निवास प्राप्त करवाने में सफलता प्राप्त की। पंजाब के कुरा अभिलेख[186] से तोरमाण के शासन तथा राज्य के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है। एरण के अभिलेख के अनुसार वो मालवा का स्वतंत्र शासक ईस्वी सन 493 में बना तथा *महाराजाधिराज* की उपाधि धारण की।[187] एरण प्रान्त के धान्यविष्णु के राज्य पर अपना आधिपत्य स्थापित किया जो पूर्व में गुप्त साम्राज्य के आधीन था।[188] मंदसौर लेख के अनुसार यशोधर्मन के पूर्वज ने तोरमाण को पराजित कर मालवा क्षेत्र पर पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।[189] गुजरात के पंचमहल जिले से तीन ताम्र पट्टिकाएं प्राप्त हुई हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि तोरमाण का राज्य गुजरात तक विस्तृत था।[190] जैन ग्रन्थ *कुवलयमाला* के अनुसार उसने हरिगुप्त से जैन धर्म की दीक्षा ली थी। इस ग्रन्थ में उसे विश्व का स्वामी बताया गया है तथा उसके द्वारा स्थापित चंद्रभागा (चिनाब) नदी के तट पर स्थित नगर पवैया का वर्णन है जो संभवतः उसकी राजधानी थी।[191] तोरमाण ने बौद्ध विहार का भी निर्माण करवाया था जिसकी जानकारी कुरा अभिलेख से मिलती है, इसके अलावा एरण अभिलेख में धान्यविष्णु द्वारा वराह प्रतिमा व नारायण मंदिर का निर्माण करवाने के प्रमाण मिलते हैं जो उसकी धार्मिक सहिष्णुता को दर्शाता है।

तोरमाण की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र मिहिरकुल हूणवंश का शासक बना। राजतरंगिणी के अध्ययन से ज्ञात होता है की मिहिरकुल एक शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ तथा उसने कश्मीर तथा गांधार पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था तथा दक्षिणी भारत व सीलोन पर भी विजय प्राप्त की थी। तोरमाण धार्मिक रूप से सहिष्णु तथा न्यायप्रिय शासक के रूप में प्रसिद्ध हुआ था परन्तु मिहिरकुल की ख्याति एक क्रूर व अत्याचारी शासक के रूप में स्थापित हुई थी जिसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण राजतरंगिणी व ह्वेनसांग के लेखों से प्राप्त होते हैं। ह्वेनसांग ने मिहिरकुल को पंच भारत का स्वामी कहकर सम्बोधित किया था तथा उसकी राजधानी साकल को बताया है। मिहिरकुल ने अपने निकटवर्ती समस्त राज्यों को अपने अधीन कर लियां था। वह शैव मतावलम्बी था तथा वर्णित है कि उसने बौद्धों के समूल नाश की आज्ञा दी थी। उसने अनगिनत बौद्ध धर्मावलम्बियों की हत्या करवाई थी तथा अनेक बौद्ध स्तूपों व विहारों को नष्ट करवाया था। इसी क्रम में उसने बौद्ध धर्म को आश्रय देने वाले नरसिंह गुप्त बालादित्य पर भी आक्रमण किया तथा उसको युद्ध में परास्त कर बंधक बना लिया था, यद्यपि मिहिरकुल ने उसे पुनः स्वतंत्र कर दिया था।[192] इसके उपरांत मिहिर कुल ने कश्मीर पर आक्रमण कर वहां के शासक को पराजित किया तथा इस क्षेत्र को भी अपने अधिकार में ले लिया।[193] मंदसौर लेख में मिहिरकुल को सर्वप्रथम परास्त करने का श्रेय यशोधर्मन को दिया गया है।[194] जैन स्रोत जिनसेन कृत *हरिवंशपुराण* तथा गुणभद्र कृत *उत्तरपुराण* में उसे दुष्ट शासक के रूप में सम्बोधित किया गया है। मिहिरकुल ने ईस्वी 515 से 530 तक शासन किया जिसे हूण काल का सर्वाधिक शक्तिशाली समय माना जाता है। मिहिरकुल को बालादित्य तथा यशोधर्मन ने युद्ध में पराजित किया था, इन पराजयों ने हूण शक्ति को अत्यधिक कमजोर कर दिया था। इसके अतिरिक्त मौखरि वंश के शासक ईशानवर्मा तथा अवन्तिवर्मा ने भी हूणों को युद्ध में पराजित किया जिसके विषय में जानकारी उनके द्वारा प्रचलित मुद्राओं के माध्यम से मिलती है।[195] बाणभट्ट रचित *हर्षचरित* से ज्ञात होता है की वर्धन वंश के प्रभाकरवर्धन ने युद्ध में हूणों को पराजित किया था।[196] तदुपरांत पाल शासक देवपाल ने भी हूणों को परास्त किया था जिसके साक्ष्य बादल अभिलेख में मिलता है।[197] परमार शासक सीयक ने भी हूणों को परास्त किया था।[198] मिहिरकुल के उपरांत हूण वंश का भारत में आधिपत्य समाप्त सा हो गया था परन्तु उसके सामंत पश्चिमोतर भारत तथा मालवा में सीमित स्थानों पर शासन करते रहे और इस क्रम में भारतीय राजाओं से अनवरत युद्ध में व्यस्त रहे, अंततः अन्य विदेशी शक्तियों की भांति ही उनका भी भारतीय समाज में सम्मिलन हो गया तथा उनका अपना अस्तित्व समाप्त हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची :

(1) लॉ, बी. सी., द *मगधाज इन एन्सिएंट इंडिया*, द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1946, पृ० 3; शास्त्री, एन. के., *एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज़*, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1952, पृ० 10 -11।

(2) सेन, एस. एन., *एन्सिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन*, न्यू एज इंटरनेशनल, दिल्ली, 1999, पृ० 116।

(3) ब्रोसियस, एम., *ए हिस्ट्री ऑफ पर्शियन एम्पायर: द अकहमदि एम्पायर*, विले-ब्लैकवेल, न्यू जर्सी, 2021, पृ० 1; कुहृत, ए., द *एन्सिएंट नियर ईस्ट*, रूटलेज, 1995, पृ० 647।

(4) महाजन, वी. डी., *एन्सिएंट इंडिया*, एस चाँद, दिल्ली, 2019, पृ० 203।

(5) जयराजभोय, आर., *फॉरेन इन्फ्लुएंस इन एन्सिएंट इंडिया*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1963, पृ० 38।

(6) रामकृष्णन, एस., द *एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी*, भारतीय विद्या भवन , मुंबई , 2001, पृ० 40 ; रायचौधरी, एच. सी., *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1923 , पृ० 122।

(7) सागर, के. सी., *फॉरेन इन्फ्लुएंस ऑन एन्सिएंट इंडिया*, नॉर्दर्न बुक सेंटर, दिल्ली, 1992, पृ० 19।

(8) द हिस्टोरिज, (अनु.)जी.,रॉलिंसन, रोमन रोड्स मीडिया, आइडहो, 2013 , पृ० 218।

(9) बरी, जे. बी., द *कैम्ब्रिज एन्सिएंट हिस्ट्री*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1926 , पृ० 15।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(10) डैनिएल्स, पी. टी., *फ्रॉम साइरस टू एलेग्जेंडर: ए हिस्ट्री ऑफ द पर्शियन एम्पायर*, आईजेनब्राउन्स, इंडिआना, 2002, पृ० 97-108।

(11) विलियम, एल., द *स्कल्पचर्स एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ डेरियस द ग्रेट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1907, पृ० 124।

(12) सॉफ, डब्लू, एच., द *पेरिप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी*, लोंगमानस ग्रीन एंड को, न्यूयॉर्क, 1912, पृ० 165-190; तोलमान, एच. सी., *ए गाइड टू द ओल्ड पर्शियन इंस्क्रिप्शन्स*, अमेरिकन बुक कंपनी, न्यूयॉर्क, 1893, पृ० 146।

(13) द हिस्टोरिज, *पूर्वोक्त* , पृ० 219।

(14) वीजहोफर, जे., *एन्सिएंट पर्शिया*, आई. बी. टॉरिस, लंदन, 2001, पृ०27।

(16) ओल्मस्टेड, ए. टी., *हिस्ट्री ऑफ द पर्शियन एम्पायर*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1948, पृ०144-145।

(18) पोलार्ड, ई., *वर्ल्डस टुगेदर, वर्ल्डस अपार्ट*, भाग1. नॉर्टन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क, 2015, पृ० 132।

(19) वाटर्स, एम., *एन्सिएंट पर्शिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2014 , पृ० 114-115।

(20) द हिस्टोरिज, *पूर्वोक्त*, पृ० 455।

(21) ओल्मस्टेड, ए. टी., *पूर्वोक्त* , पृ० 289।

(22) चिन्नॉक, ई. जे., द *एनाबासिस ऑफ एलेग्जेंडर*, होड्डर एंड स्टोघ्टन (hodder and Stoughton), लंदन, 1883, पृ०156157।

(23) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 25।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(24) देवरास सी, *ब्रोंज ऐज क्रीट एंड इंडिया*, सेज जर्नल्स, खंड32, भाग1, 2005, पृ० 1।

(25) चिन्नॉक, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 156, 167-168; गीगर, डब्लू., *महवामसा*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. लंदन, 1912, पृ० 19-**12** ।

(26) कारनी, ए., *ओलिम्पअस : मदर ऑफ एलेग्जेंडर द ग्रेट*, रूटलेज, न्यूयॉर्क, 2006, पृ 05; सेविल, ए., *एलेग्जेंडर द ग्रेट*, बार्नेस एंड नोबल वर्ल्ड डिजिटल लाइब्रेरी, न्यूयॉर्क, 2002, पृ० 913

(27) चिन्नॉक, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ०196-199; जयराजभोय, आर., *पूर्वोक्त* , पृ० 49 ।

(28) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 56-57।

(29) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 123-134।

(30) मजूमदार, आर.सी., *द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल*, भाग2, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 2001, पृ० 43-47।

(31) *वही* , पृ० 47-50; रैपसन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ० 368।

(32) मजूमदार, आर.सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 49-50।

(33) रैपसन, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 372-373; चिन्नॉक, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 311-315।

(34) त्रिपाठी, आर. एस., *हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1960, पृ० 136-138।

(35) *वही*, पृ० 136।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(36) मैक्रिनडल, जे. डब्लू., द *इनवेजन ऑफ इंडिया बाई एलेग्जेंडर द ग्रेट*, आर्किबाल्ड कांस्टेबल एंड कंपनी, वेस्टमिनिस्टर, 1896, पृ० 232; चिन्नॉक, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 340।

(37) चिन्नॉक, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 341-343।

(38) *वही* , पृ० 344 ।

(39) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 60-62।

(40) बोई, टी., *लेट अकहमदि एंड हेलेनिस्टिक बेबीलोन*, पीटर्स पब्लिशर्स, पेरिस, 2004, पृ० 123-125।

(41) घोष, एस., *फ्रॉम द ऑक्सस टू इंडस*, प्राइमस बुक, दिल्ली, 2017, पृ० 30 ।

(42) *भविष्य पुराण*, (व्याख्याकार) एस. एन. खंडेलवाल , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान , दिल्ली , 2017 , पृ० 253 ।

(43) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 86 ।

(44) टार्न, डब्लू. डब्लू., द *ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एंड इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1938, पृ०74, 82।

(45) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 193।

(46) जोंस, एच, एल., द *जियोग्राफी ऑफ स्ट्रेबो*, खंड5, विलियम हीनमान, लंदन, 1961, पृ० 279-281।

(47) *महाभाष्य*, (अनु.) काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर ,भंडारकर प्राच्य विद्या संसोधन मंदिर ,पूना , 1889

(48) मिचिनर, जे. ई., द *युग पुराण*, द एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता,1986, पृ० 91

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(49) टॉने, सी. एच., *मालविकाग्निमित्र*, ठक्कर स्पिंक एंड को, कलकत्ता, 1875, पृ० 78

(50) शर्मा , जी.आर.,*रेह इंस्क्रिप्शन ऑफ़ मेनाण्डर एंड इंडो-ग्रीक इन्वेजन* ,अभिनाश प्रकाशन, इलाहाबाद ,1980, पृ० 12 ।

(51) सेन, एस. एन., *एन्सिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइजेशन*, न्यू एज इंटरनेशनल, दिल्ली, 1999, पृ० 170; लाहिरी, बी., *इंडिजेनस स्टेट्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1974, पृ० 51।

(52) वाइटहेड, आर. बी., *कैटेलॉग ऑफ कॉइन्स इन द पंजाब म्यूजियम*, लाहौर, भाग1, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1914, पृ० 14।

(53) गुप्ता, पी. एल., *कुषाणा क्वाइंस एंड हिस्ट्री*, डी, के, प्रिंटवर्ल्ड, दिल्ली, 1994, पृ०184।

(54) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त* , पृ० 184।

(55) जोंस, एच. एल., द *जियोग्राफी ऑफ स्ट्रेबो*, विलियम हीनमान लिमिटेड, लंदन, 1961, पृ० 275-281।

(56) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 207-209।

(57) अरोड़ा, यू. पी., *प्राचीन यूनान*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2011, पृ० 443।

(58) पेसाला, बी, द *डिबेट ऑफ किंग मिलिंद*, इनवर्ड पाथ, पेनांग, 2001, पृ०18।

(59) डेविड्स, टी. डब्लू., द *क्वेश्चनस ऑफ किंग मिलिंद*, क्लैरेडों प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1890 , पृ०22।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(60) शुक्ला, आर., *मिलिन्दपन्ह एक अध्ययन*,अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2004, पृष्ठ-17-20।

(61) *वही* ।

(62) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 96 ।

(63) शर्मा, जी आर, रेह *इंस्क्रिप्शन ऑफ मेनाण्डर एंड द इंडोग्रीक इन्वेजन ऑफ द गंगा वैली*, अबिनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980, पृ० 10-11।

(64) सॉफ, डब्लू, एच., *पूर्वोक्त* , पृ० 41-42 ।

(65) जोंस, एच. एल., *पूर्वोक्त* , पृ० 279-281।

(66) पेसाला, बी, *पूर्वोक्त* , पृ० 1924 ।

(67) डेविड्स, टी. डब्लू., *पूर्वोक्त* , पृ० 36।

(68) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त* , पृ० 203।

(69) वाइटहेड, आर. बी., *पूर्वोक्त* , 1914, पृ० 54-61।

(70) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त* , पृ०235-236; रैपसन, ई. जे., *वही* , पृ० 552-554।

(71) रैपसन, ई. जे., *वही* , पृ०556-562; आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया , एनुअल रिपोर्ट (1908-09), सुपरिटेंडेंट गोवेर्मेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1912, पृ० 129।

(72) अली, एस. एम., द *जियोग्राफी ऑफ पुराणास*, पीपल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966, पृ० 141

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(73) गोल्डमैन, आर. पी., द *रामायण ऑफ वाल्मीकि, भाग1*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 1990, पृ० 227।

(74) रॉय, पी. सी., *महाभारत, भाग1*, ओरिएण्टल पब्लिशिंग, कलकत्ता, पृ० 402।

(75) बज, इ. ए. डब्लू., द *स्कल्पचर्स एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ बेहिस्तून*, ब्रिटिश म्यूजियम, 1907, पृ० 4, 40।

(76) डिजाजी, एम. जी., *रिमार्क्स ऑन द लोकेशन ऑफ द प्रोविंस ऑफ पार्थिया इन द ससानियन पीरियड*, ब्रिटिश इंस्टिट्यूट ऑफ पर्शियन स्टडीज, विएना, 2012, पृ० 1।

(77) जोंस, एच. एल., पूर्वोक्त , पृ०275।

(78) देबेवॉइस, एन, सी., *अ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ पार्थिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1938, पृ०19,20,29।

(79) यर्शटर, ई., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ ईरान*, खंड3, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1986, पृ०3941।

(80) देबेवॉइस, एन, सी., पूर्वोक्त , पृ०65।

(81) यर्शटर, ई., पूर्वोक्त , पृ०32-41।

(82) रायचौधरी, एच. सी., पूर्वोक्त, पृ०228 ।

(83) रॉय, पी. सी., *महाभारत, भाग4,* ओरिएण्टल पब्लिशिंग को., कलकत्ता, पृ०6 ।

(84) मोतीचंद., *ज्योग्राफिकल एंड इकनोमिक स्टडीज इन द महाभारत: उपायन पर्व*, यूपी हिस्टोरिकल सोसाइटी, लखनऊ, 1945 , पृ०104-105।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(85) कैम्पबेल, जे. सी., बॉम्बे गैजेटियर, खंड1, भाग1, गवर्मेंट सैन्ट्रल प्रेस, बॉम्बे, 1896 , पृ० 35।

(86) वासुदेव उपाध्याय, *पूर्वोक्त* , पृ०101

(87) गैजेरानी, एस., द *सिस्तानी साईकल ऑफ एपिक्स एंड ईरांस नेशनल हिस्ट्री: ऑन द मार्जिन्स ऑफ हिस्टोरिओग्राफी*, ब्रिल, लीडेन, 2015, पृ०15-16।

(88) रैपसन, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ०577-578।

(89) गार्डनर, पी., द *कॉइन्स ऑफ द ग्रीक एंड सीथियन्स किंग्स ऑफ बैक्ट्रिया एंड इंडिया इन द ब्रिटिश म्यूजियम*, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, 1886, पृ० 44-45।

(90) वाइटहेड, आर. बी., *पूर्वोक्त*, पृ०146 -153।

(91) गार्डनर, पी., *पूर्वोक्त* , पृ० 103-104।

(92) कोनो, एस., *खरोष्टी इंस्क्रिप्शन*, कार्पस इंस्क्रिप्शनुम इंडिकारम, खंड2, भाग1, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया सेंट्रल पब्लिकेशन ब्रांच, कलकत्ता, 1929, पृ०58।

(93) गार्डनर, पी., *पूर्वोक्त* , पृ०45।

(94) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका, भाग8*, आरकीओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981, पृ०41।

(95) *वही*, पृ०61।

(96) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ०118-119।

(97) रैपसन, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ० 564-565।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(98) टाईशन, यू., *सिनोप्लेटोनिक पेपर्स, ए स्टडी ऑफ शक हिस्ट्री*, यूनिवर्सिटी ऑफ पेनसिलवेनिया, फिलेडैल्फिया, 1998, पृ०1।

(99) स्मिथ, वी., द *शकाज इन नॉर्दर्न इंडिया*, हररसोविट्ज़ वेरलॉग पब्लिशर(Harrassowitz Verlag), भाग 61, 1907, पृ०415।

(100) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ०119।

(101) पांडेय, आर., *विक्रमादित्य*, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960, पृ०6, 41।

(102) गोल्डमैन, आर. पी., *पूर्वोक्त*, पृ०227।

(103) रॉय, पी. सी., *पूर्वोक्त*, पृ०402।

(104) दत्त, एम. एन., *मनु संहिता* (अनुवाद), एच सी दास प्रेस, कलकत्ता, 1909, पृ०371।

(105) पांडेय, आर एस., *श्री हरिवंश पुराण*, गीताप्रेस गोरखपुर, 1995, पृ०52।

(106) मिचिनर, जे. ई., *पूर्वोक्त*, पृ०93।

(107) हुलत्ज, इ., *पूर्वोक्त*, पृ०61।

(108) फ्लीट, जे. एफ., *कार्पस इंस्क्रिप्शनुम इंडिकारम: इंस्क्रिप्शन्स ऑफ द अर्ली गुप्ताज, खंड3*, इंडोलॉजिकल बुक हाउस, 1960, पृ०14।

(109) चट्टोपाध्याय, एस., द *शकाज इन इंडिया*, विश्वभारती शांतिनिकेतन, कलकत्ता, 1955, पृ०14-17 ; कोनो, एस., *पूर्वोक्त* , पृ०24।

(110) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त*, पृ०315।

(111) कोनो, एस., *पूर्वोक्त*, पृ०24-26।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(112) गार्डनर, पी., *पूर्वोक्त* , पृ०40-41; *कॉइन्स ऑफ द शकाज,* द नुमिस्मैटिक क्रॉनिकल एंड जर्नल ऑफ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी, खंड10, 1890, पृ०106; टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त,* पृ०319।

(113) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०125।

(114) मार्शल, जे., *ऐ गाइड टू तक्षशिला,* सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1918, पृ०13।

(115) *वही* ।

(116) मार्शल, जे., *तक्षशिला: स्ट्रक्चरल रिमेंस, खंड1,* यूनिवर्सिटी प्रेस. कैंब्रिज, 1951, पृ०85।

(117) चक्रवर्ती, एन. पी., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड24,* गवर्मेंट ऑफ इंडिया प्रेस, कलकत्ता, 1942, पृ०194।

(118) कोनो, एस., *पूर्वोक्त* , पृ०30-36।

(119) ऐलन, जे., *कॉइन्स ऑफ एन्सिएंट इंडिया,* ईस्टर्न बुक हाउस, पटना 1989, पृ०187।

(120) चट्टोपाध्याय, एस., *पूर्वोक्त* , पृ०28-29।

(121) चट्टोपाध्याय, एस., *सम अर्ली डाईनेस्टीज ऑफ साउथ इंडिया,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1974, पृ०54-55।

(122) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड7,* पृ०58।

(123) चट्टोपाध्याय, एस., *द शकाज इन इंडिया,* पृ०35-40।

(124) सॉफ, डब्लू. एच., *पूर्वोक्त,* पृ०39।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(125) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड8* , पृ०78-79।

(126) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड7, वही* , पृ०58य हुलत्ज, इ., एपिग्राफिया इंडिका, खंड8, *वही* , पृ०78-79।

(127) स्वामीनान्धा, वी. एस., *एन्सिएंट हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन*, पांडिचेरी, 1920, पृ०26-28।

(128) चट्टोपाध्याय , एस., *पूर्वोक्त* , पृ०50 ।

(129) रैपसन, ई. जे., द *कैटालॉग ऑफ इंडियन कॉइन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम*, एल्डेन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1967, पृ०111-112 ।

(130) अग्रवाल, वी. एस., *हैंडबुक ऑफ द स्कल्पचर्स इन द कर्जन म्यूजियम ऑफ आरकिओलोजी मुत्तरा*, सुपरिंटेंडेंट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, यूनाइटेड प्रॉविन्सेस, इलाहाबाद, 1939, पृ०14 ।

(131) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ०137 ।

(132) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड8*, *वही* , पृ०47 ।

(133) बर्गीज, जे., *आरकीओलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया*, त्रुब्नेर एंड कंपनी, लंदन, 1883, पृ०78 ।

(134) थापर, आर., *अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू एडी 1300*, पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2002, पृ०221 ।

(135) ग्रोसट, आर, द *एम्पायर ऑफ द स्टेप्स: ए हिस्ट्री ऑफ सेंट्रल एशिया*, रुत्गेर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1970, पृ०32 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(136) मजूमदार, आर. सी., *द ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी*, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1960, पृ०136-137।

(137) जोंगेवार्ड, डी., *कुषाण, कुषाणोंसासनीयन एंड कीदारित कॉइन्स*, अमेरिकन नुमिस्मैटिक सोसाइटी, न्यूयॉर्क, 2015, पृ०21-37।

(138) स्मिथ, वी. ऐ., *कैटेलॉग ऑफ द कॉइन्स इन द इंडियन म्यूजियम कलकत्ता*, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1906, पृ०64।

(139) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त*,पृ०138।

(140) कन्निंघम, ए., *कॉइन्स ऑफ द इंडोसीथियन्स, शकाज एंड कुशानाज*, इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1971, पृ०53।

(141) ग्रोसट, आर, *पूर्वोक्त* , पृ० 45-46।

(142) चक्रबर्ती, के., *सोसाइटी, रिलिजन एंड आर्ट ऑफ कुषाण इंडिया*, के. पी, बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 1930, पृ०1819; कन्निंघम, ऐ., *पूर्वोक्त* , पृ०54।

(143) रैपसन, ई. जे., इंडियन कॉइन्स, बॉमबे एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बॉम्बे, 1898, पृ०1617; वाइटहेड, आर. बी., टू कॉइन्स ऑफ सोटेर मेगस, द नेमलेस किंग, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड, 1913, पृ०658-661।

(144) स्मिथ, वी. ए., *पूर्वोक्त* , पृ०64।

(145) कन्निंघम, ऐ., *पूर्वोक्त* , पृ०54।

(146) स्मिथ, वी. ऐ., *पूर्वोक्त*, पृ०63।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(147) फ्लीट, जे, एफ., *ए हिथेर्टो अनरेकोगनाईजड कुषाण किंग*, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड, 1903, पृ०334।

(148) रैपसन, ई. जे., *पूर्वोक्त* , पृ०17।

(149)स्मिथ, वी. ऐ., *पूर्वोक्त,* पृ०64।

(150)पांडेय, आर. बी., *इंडियन पलेओग्राफी, भाग1*, मोतीलाल बनारसीदास, 1952, पृ०194-195।

(152)मार्शल, जे., *तक्षशिला*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975, पृ०70।

(153)पूरी, बी, एन., *इंडिया अंडर कुशांस*, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1965, पृ०48।

(154) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०145।

(155) बाशम, ए, एल., *पेपर्स ऑन द डेट ऑफ कनिष्का*, ब्रिल, लंदन, 1960, पृ०10।

(156) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०142।

(157) सीताराम, आर., *रिवर ऑफ किंग्स (राजतरंगिणी)*, द इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1935, पृ०23।

(158) पराशर, पी., *कश्मीर द पैराडाइस ऑफ एशिया*, स्वरुप एंड संस, दिल्ली, 2004, पृ०260।

(159) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०141-142।

(160) विलियम्स, एन, एस., *ए न्यू बैक्ट्रियन इंस्क्रिप्शन ऑफ कनिष्क द ग्रेट*, सिल्क रोड आर्ट एंड आर्कियोलॉजी , भाग4, 1995, पृ०76-80।

(161) पूरी, बी, एन., *पूर्वोक्त* , पृ०50।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(162) स्टीफन, बी., *कैटलॉग एंड रिवाइज्ड टेक्स्ट्स एंड ट्रान्सलेशन्स ऑफ गान्धारन रेलिकरी इंस्क्रिप्शन्स*, गान्धारन बुद्धिस्ट रेलिकरिस सीएटल: अर्ली बुद्धिस्ट मेनूस्क्रिप्टस प्रोजेक्ट, 2012, पृ०240-242।

(163) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०142।

(164) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०168।

(165) घिरशमन, आर., *ईरान फ्रॉम द अरलीएस्ट टाइम्स टू द इस्लामिक कनक्वेस्ट*, पेंगुइन बुक्स, बाल्टिमोर, 1965, पृ०262।

(166) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त* , पृ०149-150।

(167) रोसेंफील्ड, जे. एम., *द डाईनेस्टीक आर्ट्स ऑफ द कुशांस*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 1967, पृ०57।

(168) कुरैशी, एम. एच., *कैटेलॉग ऑफ द म्यूजियम ऑफ आर्कियोलॉजी एट साँची*, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1922, पृ०29-32।

(169) वोगेल, जे. पी., *कैटेलॉग ऑफ द आर्कियोलॉजिकल म्यूजियम एट मथुरा*, सुपरिटेंडेंट गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, 1910, पृ०189।

(170) सीताराम, आर., *पूर्वोक्त*, पृ०23-24।

(171) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त*, पृ०150।

(172) सिन्हा, बी. पी., *पाटलिपुत्र एक्सकेवेशन 195-556*, डायरेक्टरेट ऑफ आर्कियोलॉजी एंड मुसुम्स, बिहार, 1970, पृ०52-53।

(173) सीताराम, आर., *पूर्वोक्त* , पृ०23-24।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(174) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०150।

(175) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०150।

(176) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०149।

(177) रायचैधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०255।

(178) पूरी, बी, एन., *पूर्वोक्त,* पृ०58।

(179) रायचैधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०255।

(180) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०150-153 ; सागर, के. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०175-177।

(181) मास एम, द कैंब्रिज कम्पैनियन टू द ऐज ऑफ अत्तिला, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2015, पृ०175-192 ; सागर, के. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०206।

(182) मिश्र, जे. पी., *रघुवंश (कालिदास)*, श्री वेंकेटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1907, पृ०134।

(183) दलाल, सी. डी., *काव्यमीमांसा (राजशेखर),* ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट, बड़ोदा, 1934, पृ०313।

(184) फ्लीट, जे, एफ, *कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम,* खंड3, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, सेंट्रल पब्लिकेशन्स ब्रांच,कलकत्ता, 1888, पृ०54-56।

(185) हुलत्ज, इ., *पूर्वोक्त* , खंड8, पृ०45-49।

(186) बर्गीज, जे., *एपिग्राफिया इंडिका, खंड1*, सुपरिटेंडेंट ऑफ गोवेर्मेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1892, पृ०238।

(187) फ्लीट, जे, एफ, *पूर्वोक्त* , पृ०158-161।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(188) फ्लीट, जे, एफ, *पूर्वोक्त,* पृ०158-161; बर्गीज, जे., *पूर्वोक्त,* पृ०238-241।

(189) फ्लीट, जे, एफ, *पूर्वोक्त,* पृ०155-156।

(190) मेहता, आर. एम., *एम. एस. यूनिवर्सिटी कॉपर प्लेट्स ऑफ द टाइम ऑफ तोरमाण,* महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी आर्किओलॉजी सीरीज14, 1978, पृ०210-211।

(191) महाजन, वी. डी., *एन्सिएंट इंडिया,* एस चाँद, दिल्ली, 2007, पृ०59।

(192) दरयाई(Daryaee) ,टी., *किंग ऑफ द सेवन क्लीमेंस: ए हिस्ट्री ऑफ द एन्सिएंट ईरानियन वर्ल्ड,* ब्रिल एकेडेमिक पब्लिकेशन, 2021, पृ०207-208; रॉन्गजी, ली., द ग्रेट टैंग डायनेस्टी रिकॉर्ड ऑफ द वेस्टर्न रीजंस, बीडीके अमेरिका, कैलिफोर्निया, 1996, पृ०97-100।

(193) मजूमदार, आर. सी., *एन्सिएंट इंडिया,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1977, पृ०242-244।

(194) फ्लीट, जे, एफ, *पूर्वोक्त,* पृ०158-161।

(195) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त,* पृ०216-217।

(196) केन, पी, वी., *हर्षचरित (बाणभट्ट),* विल्सन कॉलेज, बॉम्बे, 1918, पृ०31।

(197) बर्गीज, जे., *एपिग्राफिया इंडिका, भाग2,* मोतीलाल बनरसीदास, दिल्ली, पृ०161।

(198) सेठ, के. एन., द *ग्रोथ ऑफ द परमार पावर इन मालवा,* प्रोग्रेस पब्लिशर्स, भोपाल, 1978, पृ०79।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 3

सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए

उत्तरदायी परिस्थितियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 3

सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां

प्राचीन भारत में भारतीय एवं विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया थी, जो विभिन्न भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक कारकों से प्रेरित थी। भारत की समृद्धि, व्यापारिक अवसर और विविधतापूर्ण सांस्कृतिक धरोहर ने विदेशियों को आकर्षित किया। विभिन्न विदेशियों के भारत आगमन के अनेक उद्देश्य रहे हैं जैसे- साम्राज्य विस्तार, धार्मिक प्रसार, व्यापार तथा निवास हेतु अनुकूल स्थान की प्राप्ति इत्यादि। यहाँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि भारत आने वाले विभिन्न संस्कृतियों के लोगों ने अंततः भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को धीरे-धीरे आत्मसात कर लिया तथा भारतीयों को भी अपनी संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान से प्रभावित किया । भारतवर्ष में अनेक शताब्दियों तक उन्होंने शासन किया। भारतीय संस्कृति अपनी समावेशिता और सहिष्णुता के लिए प्रसिद्ध थी। यहाँ विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों और जातियों को स्वीकार करने और समाहित करने की प्रवृत्ति थी। इस कारण, विदेशी समूहों को भारतीय समाज से सामंजस्य स्थापित करना आसान था। विदेशी नागरिकों ने भारतीय रीति-रिवाजों, परंपराओं और धार्मिक विश्वासों को अपनाया, जिससे सांस्कृतिक एकीकरण संभव हुआ।

प्राचीन भारत में भारतीय और विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए अनेक परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं, जो एक समृद्ध और विविधतापूर्ण समाज की नींव बनीं। प्राचीन काल में भारत आए विदेशियों और भारतीय मूल के लोगों के मध्य सांस्कृतिक सम्मिलन के लिए उत्तरदायी परिस्थितियां निम्नलिखित थीं-

3.1 भौगोलिक परिस्थितियां

प्राचीन पश्चिमोत्तर भारत में भारतीय और विदेशी सांस्कृतिक सम्मिलन का सबसे प्रमुख कारण उस क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति थी। हिन्दुकुश, सुलेमान और किरथर पर्वत श्रृंखलाओं में स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतिक दर्रों ने मध्य एशिया, चीन और पश्चिम एशिया से आवागमन को सरल बना दिया।[1] ये दर्रे व्यापारियों, आक्रमणकारियों और यात्रियों के लिए महत्वपूर्ण मार्ग थे। सिंधु नदी और उसकी सहायक नदियाँ इस क्षेत्र को उपजाऊ बनाती थीं, जिससे कृषि और व्यापार को बढ़ावा मिला। उपजाऊ भूमि और जल संसाधनों ने सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पश्चिमी तट पर स्थित बंदरगाहों ने समुद्री व्यापार को बढ़ावा दिया, जिससे विदेशी व्यापारी और यात्री अरब सागर के माध्यम से भारतीय उपमहाद्वीप में प्रवेश कर सकते थे। इस क्षेत्र की जलवायु विविध थी, जिसमें मैदानी इलाकों की गर्मी, पहाड़ी क्षेत्रों की ठंड और मानसूनी वर्षा शामिल थी। इस विविधता ने विभिन्न फसलों और पशुधन के पालन को संभव बनाया। उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे प्राचीन व्यापारिक मार्गों ने इस क्षेत्र को भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य हिस्सों और बाहरी दुनिया से जोड़ा। इन मार्गों पर व्यापारिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की लम्बी प्रक्रिया ने इस क्षेत्र की संस्कृति को एक विशिष्ट स्वरुप दिया।

एशिया से स्थल मार्ग से भारत पर आक्रमण करने के लिए पश्चिमोत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति अनुकूल थी। इस कारण विभिन्न क्षेत्रों से राजनीतिक शक्तियों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण और शासन किया, जिससे यहाँ विभिन्न संस्कृतियों का संगम हुआ। विदेशी आक्रमणकारियों और शासकों के शासन ने यहाँ के समाज और संस्कृति को प्रभावित किया। अनुकूल भौगोलिक परिस्थिति ने प्राचीन पश्चिमोत्तर भारत को भारतीय और विदेशी संस्कृतियों के सम्मिलन का एक प्रमुख केंद्र बना दिया।

3.2 धार्मिक परिस्थितियां

भारतवर्ष में वैदिक काल से ही धर्म का विशेष महत्त्व रहा है। छठीं शताब्दी ईसा पूर्व से ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त बौद्ध तथा जैन धर्म भी भारत में उद्भूत और विकसित हुए।[2] विदेशियों के आगमन के समय भारतवर्ष में शासक वर्ग तथा आम जनमानस दोनों ही इन तीन मुख्य धर्मों (ब्राह्मण धर्म ,बौद्ध धर्म,जैन धर्म) का पालन करते थे। भारतवर्ष में आने के पश्चात विदेशियों ने भारतीय धर्मों में रूचि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता की नीति पर चलते हुए भारतीय धर्मों के प्रतीकों,परम्पराओं,देवी-देवताओं को अपने सिक्कों पर लेखों में स्थान दिया। उनकी इस सहिष्णुता ने भारतीय लोगों को प्रभावित किया तथा विदेशियों के साथ भारतीय सम्मिलन को सुगम किया। भारत में उनके द्वारा उदारवादी नीति अपनाना भारतीय समाज के निकट आने हेतु अत्यंत आवश्यक था। यद्यपि सांस्कृतिक सम्मिलन के अनेक कारण थे परन्तु भारत जैसे धर्म तथा संस्कृति प्रधान देश में विदेशियों का यहाँ के धर्मों के प्रति अनुराग विदेशी-भारतीय सम्मिलन को प्रगाढ़ करने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक था। मौर्य शासक अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक कार्य किए। उसका साम्राज्य अफगानिस्तान तक था। अतः उस क्षेत्र की प्रजा को बौद्ध धर्म से परिचित कराने का कार्य अशोक ने किया। बाद में इसे विदेशी राजवंशों हिन्द-यवन, शक ,पह्लव , कुषाण आदि ने आगे बढ़ाया। भारतीय और यूनानी संस्कृतियों का सम्मिश्रण हिन्द-यवन राजाओं के शासनकाल में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। हेलेनिस्टिक युग में यूनानी शासकों ने अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए यूनानी नगर बसाए और भाषा को संपर्क भाषा के रूप में विकसित किया, लेकिन भारत में वे स्थानीय संस्कृति में घुल-मिल गए।इस मिलन का उत्कृष्ट उदाहरण हिन्द-यवन शासक मिनांडर है, जिसे बौद्ध ग्रंथ "मिलिंदपन्हों " में राजा मिलिंद के रूप में वर्णित किया गया है, जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था।[3] मिनांडर के शासनकाल में भारतीय और यूनानी तत्वों का सामंजस्य एक नई, समृद्ध और बहुआयामी सांस्कृतिक धारा का निर्माण करता है, जो दोनों सभ्यताओं के स्थायी प्रभावों का प्रतीक है । अशोक के बाद के काल में यवन कला अत्यंत विकसित हुयी, और जब यवनों ने बौद्ध धर्म को अपनाया, तो उन्होंने बौद्ध दर्शन में मानवीय गुणों का समावेश कर उसे समृद्ध किया।[4] अनेक यवन शासकों ने बौद्ध और भागवत धर्म के प्रति उदारता दिखाते हुए उनके अनेक तत्वों को ग्रहण किया, जिसके प्रमाण हमें उनकी मुद्राओं के माध्यम से प्राप्त होते हैं।[5] उदाहरणतः अगाथोक्लीज के सिक्कों पर संकर्षण , वासुदेव कृष्ण का अंकन है तथा उसके सिक्कों पर स्तूप और वृक्ष का भी अंकन मिलता है। कांस्य धातु से निर्मित कुछ सिक्कों पर यूनानी वेशभूषा में देवी लक्ष्मी का अंकन है।[6] बेसनगर स्तम्भ अभिलेख के अनुसार तक्षशिला के यवन शासक अन्तियालकिडस के दूत हेलियोडोरस ने विदिशा में गरुड़ स्तम्भ की स्थापना की और स्वयं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमभागवत कहा। शक भी भारतीय धर्मों के अनेक तत्वों को अंगीकृत कर पूर्णरूपेण समाज में घुल मिल गए थे। उनके शासनकाल में हिंदू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों का सर्वांगीण विकास हुआ, जो निसंदेह शक क्षत्रपों की उदारता के फलस्वरूप ही संभव हो सका। धार्मिक विषयों में उनकी उदारता जैन संगीति के संयोजन में भी परिलक्षित होती है। मथुरा शक काल में एक प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित हुआ था, और वहाँ हिंदू, बौद्ध और जैन तीनों धर्मों से संबंधित मूर्तियों का निर्माण हुआ।[7] कई शक - पह्लव शासकों ने अपने सिक्कों पर हिंदू देवी-देवताओं की छवि बनवाई। कुषाण काल की धार्मिक सहिष्णुता के कारण ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन सभी धर्मों की उन्नति हुई। कुषाणों की मुद्राओं पर सभी भारतीय धर्मों के अंकन प्राप्त हुए हैं। कुषाण शासकों ने सभी को धार्मिक रूप से पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। कदफिसस, कनिष्क, वासुदेव आदि विभिन्न शासकों ने भी भिन्न धर्मों का पालन किया।[8] सम्राट अशोक की भांति, कनिष्क ने भी बौद्ध धर्म के उत्थान हेतु अनेक कार्य किए थे। कनिष्क द्वारा मुद्राओं पर बुद्ध का अंकन मनुष्य रूप में किया गया था। विदेशियों द्वारा भारतीय बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के बाद इस धर्म में परिवर्तन आया और बुद्ध को एक अवतार माना जाने लगा।[9] हूण भी भारतीय धर्मों से प्रभावित हुए और अपने प्राचीन धर्म का त्याग कर हिंदू धर्म को अपना लिया।[10] भारतीय धर्म पर विदेशी प्रभाव एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया रही है। विदेशी आक्रमणकारियों और व्यापारियों ने न केवल नए धर्मों और विश्वासों को भारत में प्रस्तुत किया, बल्कि मौजूदा धार्मिक प्रथाओं को भी प्रभावित किया। यह एक पारस्परिक प्रक्रिया थी, जिसमें केवल वे विश्वास ही जीवित रह पाए जो भारतीय समाज और परिस्थितियों के अनुरूप थे। इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि भारतीय धर्म और पूजा-अवधारणाओं का विदेशियों द्वारा व्यापक रूप से सम्मान किया जाता था। इंडो-ग्रीक आम तौर पर बुद्ध के धर्म का पालन करते थे। कुषाण शासक शिव, स्कंद और बुद्ध के भक्त थे, जबकि अधिकांश शक ब्राह्मणों और उनके विश्वास के संरक्षक थे। हूण भी शिव के अनुयायी थे। वास्तव में, भारत में धर्म के सम्मिश्रण को शक -पह्लव और कुषाण शासकों की समन्वयी प्रवृत्तियों से काफी प्रोत्साहन मिला, जो विभिन्न मतों के देवताओं को सम्मान देते थे। इन विदेशी शासकों की उदारता और समन्वयकारी दृष्टिकोण ने भारतीय धार्मिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को समृद्ध और विविधतापूर्ण बना दिया।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3.3 आर्थिक परिस्थितियां

भारत की समृद्धि और व्यापारिक अवसरों ने विदेशी व्यापारियों और आक्रमणकारियों को यहाँ बसने के लिए प्रेरित किया। व्यापारिक सम्बन्ध के साथ भारत से उनके सांस्कृतिक सम्बन्ध भी बने उन्होंने भारतीय समाज और संस्कृति को भी अपनाया। प्राचीन काल से ही भारत और ईरान के बीच घनिष्ठ व्यापारिक संबंध रहे हैं। व्यापारिक हितों के लिए दोनों देशों के लोग संपर्क में आये, जिसके परिणामस्वरूप सांस्कृतिक आदान-प्रदान और नीतिगत प्रभावों का आदान-प्रदान हुआ।[12] ईरानी व्यापारी, जो अपनी कुशलता और उद्यमिता के लिए जाने जाते थे, भारत में बसे और समृद्ध हुए। वे भारतीय समाज में रच-बस गए, अपनी संस्कृति का प्रभाव लाए और साथ ही भारतीय रीति-रिवाजों को अपनाया। मौर्य साम्राज्य के शासकों ने ईरानी कारीगरों और शिल्पियों की विशेषज्ञता का लाभ उठाया। इन कुशल कारीगरों को भव्य निर्माण कार्यों में लगाया गया, जो मौर्य साम्राज्य की भव्यता और समृद्धि का प्रतीक बन गए। पारसिक शासन भारत में अल्पकालीन था पर उसकी समाप्ति के बाद भी, मौर्य सम्राटों ने उनकी कई नीतियों को अपनाया। मौर्य सम्राटों की उदारता ने भारत-ईरानी सम्बन्ध को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[13]

सिकंदर के आगमन ने भारत और पश्चिमी दुनिया के बीच व्यापार मार्गों को खोल दिया, जिससे व्यापार और वाणिज्य में क्रांतिकारी बदलाव आया। भारतीय सिक्कों के इतिहास में हिन्द-यवन राजाओं द्वारा प्रारंभ की गई मुद्रा प्रणाली ने एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को जन्म दिया। ये प्राचीनतम सिक्के किसी भी राजवंश द्वारा जारी किए गए पहले सिक्के थे। इससे पहले, भारत में आहत मुद्राएं प्रचलित थीं, जिन्हें मुख्यतः व्यापारियों के निगम संगठनों द्वारा निर्गत किया जाता था। भारत और यूनान की संस्कृतियों का स्पष्ट मिलन इन सिक्कों की बनावट और उन पर अंकित चिन्हों और लेखों से देखा जा सकता है। हिन्द-यवन राजाओं द्वारा जारी किए गए सिक्के बाद के सभी राजाओं के लिए नमूने के रूप में कार्य करते रहे। इनकी कला के विभिन्न रूप और अवधारणा इतनी भारतीय थी कि इन राजाओं के सिक्कों को यूनानी और पश्चिम एशियाई सिक्कों से कहीं अधिक भारतीय सिक्कों के इतिहास का अंश माना जाता है।[14] प्राचीन काल में शक, पहलव और कुषाणों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आगमन से पश्चिमोत्तर भारत के व्यापार और वाणिज्य में क्रांतिकारी बदलाव आये। इन घुमंतू जातियों ने न केवल नए व्यापार मार्ग खोजे, बल्कि विभिन्न वस्तुओं और विचारों का आदान-प्रदान भी किया, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्र में अभूतपूर्व समृद्धि और सांस्कृतिक सम्मिश्रण हुआ। इनका प्रमुख योगदान व्यापारिक मार्गों का विस्तार था। उन्होंने रेशम मार्ग और समुद्री व्यापार मार्गों का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिसके परिणामस्वरूप भारत, चीन, मध्य एशिया, भूमध्यसागरीय क्षेत्र और रोमन साम्राज्य के बीच व्यापार में वृद्धि हुई। इन मार्गों से मसाले, रेशम, धातु, कांच, मिट्टी के बर्तन और अन्य वस्तुओं का आदान-प्रदान हुआ।[15] इस व्यापारिक विस्तार से पश्चिमोत्तर भारत बहुत समृद्ध हुआ। नए शहरों का विकास हुआ, व्यापारियों का उदय हुआ, और कला और संस्कृति ने नया स्वरुप ग्रहण किया। गांधार, मथुरा और तक्षशिला जैसे शहर प्रमुख व्यापारिक केंद्र , सांस्कृतिक केंद्र बन गए। व्यापार के साथ-साथ, शक, पहलव और कुषाण अपनी संस्कृतियों और विचारों को भी भारत में लाये। इनमें से कई विचारों ने भारतीय संस्कृति को गहराई से प्रभावित किया। उन्होंने बौद्ध धर्म को अपनाया और इसका प्रचार किया, जिसके परिणामस्वरूप भारत में बौद्ध धर्म को स्थायित्व मिला। उन्होंने कला और स्थापत्य शैली में भी योगदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप गांधार कला का विकास हुआ, जो भारतीय और यूनानी कला का एक अद्भुत मिश्रण है।

3.4 सांस्कृतिक परिस्थितियां

भारतीय संगीत, नृत्य, और साहित्य का विदेशी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय मूर्तिकला, चित्रकला, और वास्तुकला की विशिष्टता ने विदेशी आक्रमणकारियों और व्यापारियों को प्रभावित किया। उन्होंने इन कलात्मक परंपराओं को अपनाया और अपने साथ अपने देश में भी ले गए। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख, जो संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण है, उनकी भारतीय भाषा और संस्कृति के प्रति गहरी स्वीकार्यता का प्रमाण है। यह अभिलेख न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, अपितु यह उस युग में संस्कृत भाषा के उत्कर्ष को भी दर्शाता है। रुद्रदामन के शासनकाल में, शकों ने संस्कृत को अपनाकर उसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[16] इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल में अनेक नाटक रचे गए, जिन्होंने भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। ज्योतिष और खगोल विद्या भी शकों के शासनकाल में फल-फूली। भारतीय विद्वानों ने विदेशी ज्ञान को ग्रहण करते हुए, ज्योतिष और खगोलशास्त्र में महत्वपूर्ण प्रगति की। यह उल्लेखनीय है कि शक शासकों ने भारतीय संस्कृति और धर्म को अपनाकर, भारतीयों के साथ गहरा संबंध स्थापित किया। वे भारतीय समाज में अद्वितीय रूप से समाहित हो गए थे और उनके नाम भी भारतीय परंपराओं से प्रेरित थे।

उदारता के बिना मानव समाज में किसी भी प्रकार के सम्मिलन की कल्पना अत्यंत निष्प्रभावी प्रतीत होती है। यह उदारता सम्मिलन में शामिल होने वाली दोनों सभ्यताओं के मध्य होनी आवश्यक है। अनेक भारतीय दर्शनशास्त्री सिकंदर के समय भारत में निवास करते थे। सिकंदर इस भारतीय परंपरा से अत्यंत प्रभावित था और मकदूनिया लौटते समय वो भारतीय संत कालानोस को भी अपने साथ ले गया था।[17] विदेशी शासक धर्मार्थ दान और पुण्य कार्यों में व्यापक रूप से संलग्न थे। पश्चिमी भारत के शिलालेखों में यवन शासकों द्वारा गुफाओं, कुओं, मंदिरों और सभा भवनों[18] के कई दान हैं। सारनाथ का एक शिलालेख कनिष्क के शासनकाल में भिक्षु बाला, क्षत्रप खरपल्लान, और वनस्फर के साथ मिलकर बोधिसत्व की एक प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख करता है।[19] नासिक के एक शिलालेख में एक शक महिला, विष्णुदत्ता, द्वारा सभी प्राणियों के कल्याण और सुख के लिए, त्रिरश्मि के मठ में निवास करने वाले भिक्षुओं के संघ के बीमारों के इलाज के लिए दवा उपलब्ध कराने के लिए दो निवेशों का उल्लेख है।[20] तक्षशिला से प्राप्त एक ताम्रपत्र शिलालेख में एक शक क्षत्रप लियाका कुशुलक(Liaka Kusulaka) के पुत्र पतिक द्वारा एक संघाराम के निर्माण का वर्णन है।[21] हालांकि, नहपान का दामाद, शक उषावदत्त अपने धर्मार्थ कार्यों में सभी को पीछे छोड़ देता है। उनके शिलालेखों में केवल धर्मार्थ कार्यों का ही उल्लेख मिलता है। उन्होंने वर्नासा नदी पर धन और गायों का दान किया, देवताओं और ब्राह्मणों को सोलह गांव दिए, पूरे साल एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया, विश्रामगृह बनवाए और निःशुल्क घाट स्थापित किए। उन्होंने पोखर तालाब में स्नान भी किया और ब्राह्मणों को गायें दीं। उन्होंने बौद्धों को भी संरक्षण दिया।[22]इन धर्मार्थ कार्यों ने समाज में विदेशियों के आत्मसात होने में महत्वपूर्ण भूमिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निभाई होगी। उनके उदार दान और पुण्य कार्यों ने उन्हें स्थानीय समाज में सम्मान और स्वीकृति दिलाई, जिससे भारतीय संस्कृति में उनका स्थान पक्का हुआ।

वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध कृति *वृहत्संहिता* में यवनों के योगदान को स्वीकार किया है।[23] भारतीय ज्योतिषाचार्यों और खगोलशास्त्रियों द्वारा यवनों के ज्ञान को अपनाना भारतीय समाज में उनके सम्मिलन को प्रमुखता से स्पष्ट करता है। इस प्रकार, भारतीय और यवन संस्कृति के आपसी प्रभाव ने एक समृद्ध और विविधतापूर्ण ज्ञान प्रणाली का निर्माण किया, जो भारतीय समाज की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उत्तर-पश्चिमी भारत में कला और वास्तुकला में विदेशी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। गांधार कला शैली इसका प्रमुख उदाहरण है, जिसमें यूनानी और भारतीय तत्वों का मिश्रण है। यह शैली बुद्ध की मूर्तियों और अन्य धार्मिक चित्रणों में यूनानी शिल्पकला के तत्वों को सम्मिलित करती है। इसके अलावा , कुषाण काल के स्तूप और मठों में भी विदेशी वास्तुकला के प्रभाव देखे जा सकते हैं।

3.5 राजनीतिक परिस्थितियां

भारत की राजनीतिक अस्थिरता का विदेशी शक्तियों ने कुशलतापूर्वक लाभ उठाया और भारतीय प्रशासनिक प्रणाली को अपनाकर अपने शासन में शामिल किया, जिससे उन्हें भारत पर शासन करने में सुविधा हुई। मौर्य सम्राटों ने ईरानी प्रशासनिक तरीके और प्रणालियों को अपनाकर भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को और भी सुदृढ़ किया। उदाहरण के लिए, शासनादेशों को खरोष्ठी लिपि में लिखवाने की परंपरा भारतीय-ईरानी सांस्कृतिक सम्मिलन का एक प्रमुख उदाहरण है, जो द्विपक्षीय संबंधों की गहराई को दर्शाता है।[24] भारतीय प्रशासनिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में ईरानी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह सम्मिलन न केवल प्रशासनिक सुधारों में सहायक सिद्ध हुआ, बल्कि भारतीय उपमहाद्वीप में विदेशी शक्तियों के शासन को भी सुदृढ़ बनाया। इस प्रकार, विदेशी शक्तियों द्वारा भारतीय प्रशासनिक प्रणाली को अपनाने और उसमें सुधार करने से दोनों संस्कृतियों के बीच एक गहरा और स्थायी संबंध स्थापित हुआ, जिसने भारतीय इतिहास पर अपनी अमिट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाप छोड़ी। यद्यपि ईरानी शासन भारत में पूरी तरह से स्थापित नहीं हो पाया, फिर भी भारतीय समाज में ईरानी परंपराओं का प्रभाव देखा जा सकता है। सम्राट अशोक ने विदेशी तुषास्फ को गवर्नर नियुक्त कर अपनी सहिष्णुता और बहुलतावाद को दर्शाया। गिरनार में जल संग्रह की व्यवस्था और अन्य सुधारात्मक कार्यों ने दिखाया कि विदेशी गवर्नर भारतीय संस्कृति और समाज के विकास में सक्रिय भागीदार बने।[25]

सिकंदर ने भी भारत पर महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा। अपने संक्षिप्त समय के प्रवास के दौरान, पश्चिमोत्तर भारत पर विजय प्राप्त की और कई नगरों की स्थापना की। इन नगरों में मुख्य रूप से यवन नागरिकों का निवास था, जो अंततः भारत में बस गए। परिणामस्वरूप, एक बड़ा यवन समुदाय भारत में स्थापित हुआ और भारतीय संस्कृति के साथ गहरे सम्बन्ध स्थापित किए। सिकंदर ने भारतीय राजाओं के साथ सामंजस्य बनाए रखते हुए, उन्हें विभिन्न उपहार दिए और बदले में ईरान से लाई गई बहुमूल्य वस्तुएं प्राप्त कीं। इस प्रकार, सिकंदर का भारत आगमन, यद्यपि क्षणभंगुर था, फिर भी भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गया। उसने न केवल राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया, बल्कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी प्रोत्साहित किया, जिसका प्रभाव आज भी देखा जा सकता है। शक और कुषाण ने इस क्षेत्र में केंद्रीकृत शासन व्यवस्था की स्थापना की। उन्होंने एक मजबूत प्रशासनिक ढांचा बनाया और कानून व्यवस्था को सुदृढ़ किया। साम्राज्य को प्रभावी ढंग से चलाने के लिए, उन्होंने प्रांतों में अपने प्रतिनिधियों को नियुक्त किया।

3.6 सामाजिक परिस्थितियां

विदेशियों ने अपनी सामाजिक स्थिति को सुधारने और मजबूत करने के लिए अनेक प्रभावी उपाय अपनाए। उन्होंने कानून के संरक्षक, ब्राह्मणों की सद्भावना प्राप्त करने के लिए प्रचार और बल दोनों का बुद्धिमानी से उपयोग किया। इस प्रयास में उन्होंने भारतीय नाम अपनाए, मूल निवासियों के साथ विवाह किया, भारतीय देवी-देवताओं के प्रति सम्मान दिखाया, धर्म के लिए उदार दान दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा का प्रचार किया। इन उपायों के माध्यम से वे भारतीय समाज में स्वीकार्यता और प्रतिष्ठा हासिल करने में सफल रहे।

विदेशियों द्वारा स्वदेशी नामों को अपनाना उनकी प्रगतिशील आत्मसातीकरण की ओर संकेत करता है। पश्चिमी भारत के शक वंश की वंशावली इसे पूरी तरह से प्रमाणित करती है।[26] प्रारंभिक शक शासकों के नाम जैसे चष्टन और नहपान विदेशी प्रतीत होते हैं, लेकिन उनके उत्तराधिकारियों के नामों में जैसे रुद्रदामन और दमसेना भारतीयकरण की दिशा में प्रयास दिखता है । इसके बाद के शासकों के नाम पूरी तरह से स्वदेशी हो गए, जैसे रुद्रसिंह, रुद्रसेन और विजयसेन। यह प्रक्रिया नासिक गुफा अभिलेख में भी झलकती है, जहां विष्णुदत्त को शक अग्निवर्मन की पुत्री, गणपक रेभिला की पत्नी और गणपक विश्ववर्मन की माता के रूप में वर्णित किया गया है।[27] रेभिला को छोड़कर, अभिलेख में उल्लिखित सभी नाम पूरी तरह से भारतीय हैं। अन्य लोगों जैसे कुषाण, यवन और हूण ने भी भारतीय नामों को अपनाया। कुषाण राजा का नाम वासुदेव भी पूरी तरह से भारतीय है। विभिन्न जनों के बीच विवाह संबंध स्थापित करना उन्हें एकजुट करने का सबसे प्रभावी साधन है। भारतीय समाज में शासन करने के लिए उन्होंने स्थानीय कन्याओं से विवाह किया उदाहरणतः सिकंदर ने इस बात को भली-भांति समझा और इसका लाभ उठाया। उसने पराजित ईरानी प्रमुख की बेटी से विवाह किया और अपने सैनिकों को स्थानीय लोगों से विवाह करने के लिए प्रेरित किया। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से स्थानीय आबादी की शत्रुता को कम करना था। यूनानियों के बाद यवन भी संभवतः इस प्रथा का अनुसरण भारत में किये। कुछ भारतीय शासकों, जैसे चंद्रगुप्त मौर्य, ने भी सेल्यूकस की बहन हेलेना से विवाह किया।[28] शकों ने विवाह संबंधों की नीति को और भी जोर-शोर से अपनाया। प्रारंभिक शक राजा नहपान की संभवतः एक भारतीय पत्नी थी। महानतम शक शासक रुद्रदामन ने कई स्थानीय कन्याओं से विवाह किया। कभी-कभी, शक सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपनी बेटियों का विवाह कम राजनीतिक महत्व वाले स्वदेशी परिवारों से कर देते थे। बसारह(basarh) की एक मुहर में महाक्षत्रप स्वामी रुद्र सिंह की बेटी और महाक्षत्रप स्वामी रुद्र सेना की बहन प्रभुदामा का उल्लेख है।[29] यह महिला अपने पिता और भाई के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च पदवी वाले शीर्षकों का उल्लेख करते हुए अपने पति का नाम नहीं बताती है, जो स्पष्ट रूप से कम प्रसिद्ध था। इसी तरह, उज्जैन के शासक की बेटी और इक्ष्वाकु शासक वीरपुरुषदत्त की पत्नी रुद्रभट्टारिका अपने पैतृक वंश पर अधिक गर्व करती थीं।[30]

ऐसे विवाह शक सामान्य नागरिकों और स्वदेशी जनसंख्या के बीच होते थे। *भविष्यपुराण* में शक - द्वीप के निवासियों और यादवों के बीच विवाह का उल्लेख मिलता है।[31] अर्जुन को हस्तिनापुर ले जाते समय आभीरों ने यादव महिलाओं का अपहरण कर लिया था।[32] बाद में, हूणों ने भी स्थानीय लड़कियों से विवाह किया।[33]

प्राचीन भारत में, विदेशी आक्रमणकारी, व्यापारी और शरणार्थी समय के साथ भारतीय समाज में आत्मसात हो गए। यह प्रक्रिया प्रतिरोध और समन्वय दोनों के माध्यम से हुई, जिसमें अप्रवासियों की संख्यात्मक और राजनीतिक शक्ति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विदेशी समुदायों के एकीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न रणनीतियाँ शामिल थीं, जिनमें देशी धर्म और साहित्य का सम्मान, ब्राह्मण और बौद्ध संस्थानों को दान, और स्थानीय नामों को अपनाना शामिल था। ब्राह्मणों के प्रति सम्मान और दान ने उनके प्रतिरोध को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह आत्मसातीकरण स्वाभाविक रूप से हुआ, जिसमें ब्राह्मण व्यवस्था ने विदेशियों को उनके मूल समाज में उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार स्वीकार किया। पुजारी वर्ग, जैसे कि मग, ब्राह्मणों में शामिल हो गए, जबकि व्यापार और मजदूरी करने वाले लोग क्रमशः वैश्य और शूद्र बन गए। अधिकांश विदेशी, स्पष्ट कारणों से, क्षत्रिय वर्ग में शामिल हो गए। राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक कारकों ने इस प्रक्रिया को आकार दिया, जिसके परिणामस्वरूप भारत की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक विरासत का निर्माण हुआ। इन सभी कारकों ने मिलकर उत्तर-पश्चिमी भारत में एक समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परिदृश्य का निर्माण किया, जिसमें भारतीय और विदेशी संस्कृतियों का अनूठा संलयन हुआ। इन सभी कारणों ने विदेशियों को भारतीय संस्कृति में सम्मिलित होने और यहाँ की परंपराओं को अपनाने के लिए प्रेरित किया। इससे भारतीय समाज में एक समृद्ध और विविधतापूर्ण सांस्कृतिक समन्वय का निर्माण हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची :

(1) थपलियाल, यू. पी., *फॉरेन एलिमेंट्स इन एन्सिएंट इंडियन सोसाइटी* , मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1979, पृ. 4।

(2) स्मिथ, वी. ए., *एन्सिएंट एंड हिन्दू इंडिया* , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस , दिल्ली, 1920 , पृ. 48 -49।

(3) रैपसन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ० 551।

(4) कृष्णन, यु., द *बुद्धा इमेज: इट्स ओरिजिन एंड डेवलपमेंट*, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1996 , पृ. 9 -10।

(5) लाहिरी, ए. एन., *कार्पस ऑफ इंडो-ग्रीक कॉइन्स* , पोद्दार पब्लिकेशन , कलकत्ता, 1965 , पृ. 78।

(6) अरोड़ा ,यू. पी., *प्राचीन यूनान ; इतिहास और संस्कृति* , अनामिका पब्लिशर एंड डिस्टीब्यूटर लिमिटेड , दिल्ली , पृ 444।

(7) अग्रवाल, वी. एस., *मथुरा कला* , गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, 1964, पृ. 3-8।

(8) पूरी, बी. एन., *इंडिया अंडर द कुषानाज*, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे , 1965 , पृ. 136।

(9) स्मिथ, वी. ए., *पूर्वोक्त* , पृ. 134 -140।

(10) ठाकुर, यू., द *हुनाज इन इंडिया*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1967, पृ. 261-265।

(11) थपलियाल, यू. पी., *फॉरेन एलिमेंट्स इन एन्सिएंट इंडियन, पूर्वोक्त* , पृ. 131।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(12) सेन, एस. एन., *एन्सिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइज़ेशन*, न्यू एज इंटरनेशनल, दिल्ली, 1999, पृष्ठ-116 ।

(13) गोयल,एस. , *प्राचीन भारत* , कुसुमांजलि बुक वर्ल्ड, जोधपुर, 2007, पृ. 180 ।

(14) अरोड़ा ,यू. पी., *पूर्वोक्त* , पृ. 448 ।

(15) सागर, के. सी., *फॉरेन इन्फ्लुएंस ऑन एन्सिएंट इंडिया*, नॉदर्न बुक सेंटर , दिल्ली , 1992, पृ.31 ।

(16) *वही*, पृ.143 ।

(17) जैराजभोय, आर. ए., *फॉरेन इन्फ्लुएंस इन एन्सिएंट इंडिया* , एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1963 , पृ. 84-85 ।

(18) बर्गीस, जे. , *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ वेस्टर्न इंडिया* , भाग 4 , त्रुब्नेर एंड कंपनी , लंदन , पृ. 104 ।

(19) *एपिग्राफिया इंडिका* , भाग ८ , पृ. 176-177 ।

(20) *वही* , पृ. 89 ।

(21) मार्शल , जे , *तक्षशिला* , भारतीय पब्लिशिंग हाउस , वाराणसी , पृ. 58 ।

(22) गोयल,एस., *पूर्वोक्त* , पृ. 711-712 ।

(23) *वृहत्संहिता* ,(अनु.) पं अच्युतानंद झा ,चौखम्बा विद्याभवन ,वाराणसी , 2011 , पृ. 14 ।

(24) सागर , के. सी. , *फॉरेन इन्फ्लुएंस ऑन एन्सिएंट इंडिया* , नॉर्थेर्न बुक सेंटर , दिल्ली , 1992 , पृ. 26 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(25) सहाय ,एस., *भारतीय पुरालेखों का अध्यन्न* , मोतीलाल बनारसीदास , दिल्ली , 2008 , पृ. 213 ।

(26) रायचौधरी, एच. सी. ,*पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* , यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता , कलकत्ता, 1953 , पृ. 513 ।

(27) बर्गीस, *आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ वेस्टर्न इंडिया* , चतुर्थ खंड , त्रुब्नेर एंड कंपनी , लंदन, 1883, पृ. 104 ।

(28) *महाभारत* , (अनु.) रामनारायणदत्त शास्त्री पांडेय , स्त्री पर्व , गीताप्रेस ,गोरखपुर , 2010 ,पृ. 1488

"तमेताः पर्युपासन्ते रक्ष्यमाणं महाभुजम् ।

सिन्धुसौवीरभर्तारं काम्बोजयवनस्त्रियः ॥ ११ ॥"

(29) स्पूनर डी. बी. , आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया ,1913 -14 , पृ. 136।

(30) *एपिग्राफिया इंडिका* , भाग 10 , पृ. 4 ।

(31) *भविष्य महापुराण* ,(अनु.) पं बाबूराम उपाध्याय ,हिंदी साहित्य सम्मलेन , प्रयाग , 2012 , पृ. 559

(32) *महाभारत* , (अनु.) रामनारायणदत्त शास्त्री पांडेय,मौसल पर्व ,गीता प्रेस , गोरखपुर, पृ. 1189

"पश्यतो वृष्णिदाराश्च मम ब्रह्मन् सहस्त्रशः ॥ १६ ॥

आभीरैरनुसृत्याजौ हृताः पञ्चनदालयैः ।"

(33) ठाकुर, यू., *द हुनाज इन इंडिया* , चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1967, पृ. 224 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 4

पश्चिमोत्तर भारत में सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 4

पश्चिमोत्तर भारत में सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया

भारत में विदेशियों का आगमन विभिन्न काल खंडो में भिन्न -भिन्न क्षेत्रों से हुआ था। इन विदेशियों के भारत आगमन हेतु अनेक कारण थे, जिनमें प्रमुख कारण धार्मिक तथा व्यापारिक था। इन कारणों के अतिरिक्त साम्राज्य विस्तार की लालसा ने भी विदेशियों को भारत की ओर आकर्षित किया था। पश्चिमोत्तर भारत में एक सार्वभौम सत्ता के अभाव में अनेक बाह्य शक्तियों को आक्रमण हेतु प्रोत्साहन मिला तथा इसका दुष्परिणाम भारत को आक्रमणकारियों के रूप में अनेक शताब्दियों तक भुगतना पड़ा। इस क्रम में सर्वप्रथम फारस से पारसीकों (हखामनी) ने आक्रमण किया, तदुपरांत यवन शासक सिकंदर महान ने पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण किया। यवनों के उपरांत पहलवों, शकों, कुषाणों तथा हूणों ने भी भारत पर आक्रमण किये। भारत भूमि पर विदेश से अनेक शक्तियां शासन करने के उद्देश्य से आयी परन्तु अंत में वह भारतीय समाज का ही एक अंग बन कर रह गई तथा स्वयं को भारतीय व्यवस्था में ढाल लिया। उनके सभी धार्मिक तथा सामाजिक क्रियाकलापों का भारतीय सभ्यता द्वारा आत्मीकरण कर लिया गया। सांस्कृतिक सम्मिलन की इस प्रक्रिया के अंतर्गत विदेशियों तथा भारतीयों दोनों ने ही एक दुसरे को प्रभावित किया। पुरातात्विक अवशेषों, भाषा आदि के आधार पर सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया की समीक्षा इस अध्याय में की गयी है।

4.1 भारत पर पारसीक प्रभाव की समीक्षा

पश्चिमोत्तर भारत की दिशा से भारत पर आक्रमण करने वालों में प्रथम हखामनी फारस के थे। हखामनी साम्राज्य के महान सम्राट साइरस (कुरुष) ने छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में पश्चिमोत्तर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए भारत पर आक्रमण किया था। हखामनी वंश ने 2 शताब्दियों तक भारत भूमि पर अपना आधिपत्य स्थापित रखा। साइरस तथा दारा प्रथम ने मुख्य रूप से भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया जिसे क्षयार्ष ने सुरक्षित रखा परन्तु इसके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त अन्य हखामनी सम्राट उस कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने में सफल सिद्ध नहीं हुए तथा उनके साम्राज्य का शनैः शनैः अंत हो गया। स्वाभाविक है की भारतीय शासन व्यवस्था में तथा भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनके आगमन तथा क्रमशः 200 वर्षों के शासन ने प्रभाव अवश्य ही स्थापित किया होगा। इसके साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि इस क्रम में उन्होंने भारतीय जनमानस से क्या- क्या प्राप्त किया।

4.1.1 भारतीय शासन व्यवस्था पर पारसीक प्रभाव

अनेक पुरातात्विक अध्ययनों से ज्ञात होता है की ईरानी शासन ने भारतीय शासन व्यवस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया था। शक शासनकाल में क्षत्रप व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ था जो पारसीक शासन व्यवस्था से ही प्रभावित थी। मौर्य काल में साम्राज्य विस्तार द्वारा एकक्षत्र साम्राज्य स्थापित करने की प्रेरणा हखामनी साम्राज्य द्वारा ही मिली थी। साइरस महान ने अपने लिए *लार्ड ऑफ द फोर कवाटर्स अथवा ग्रेट किंग ऑफ किंग्स* जैसी उपाधियाँ प्रयुक्त की थी, उसी प्रकार सम्राट अशोक ने स्वयं हेतु रूलर *ऑफ आल थिंग्स ओवर द होल अर्थ* की उपाधि प्रयोग में लायी थी।[1]

प्राचीन भारतीय साहित्यों, पुराणों व महाकाव्यों में भी इसी प्रकार के सम्बोधन प्रयुक्त हुए हैं, अतः इसे पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता की भारतीय शासकों ने विश्व विजेता की उपमा ईरानी शासकों से प्रभावित होकर अपनायी हो। चक्रवर्ती सम्राट बनने की प्रक्रिया को भारत में एक धार्मिक कृत्य माना गया था तथा उसे पवित्र यज्ञ द्वारा आरम्भ किया जाता था। यह यज्ञ अश्वमेध यज्ञ के नाम में सुप्रसिद्ध है। *ऋग्वेद*[2] में वर्णित है कि भरत राजा सुदास द्वारा अश्वमेध यज्ञ सम्पादित करवाया गया था। इस यज्ञ में हिन्दू सम्राट प्रत्येक दिशा में जाकर वहां के शासकों को पराजित करते थे। *यजुर्वेद*[3] में भी अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख मिलता है। सर्वविदित है कि *महाभारत* में भूमण्डल का सम्राट बनने हेतु युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ संपन्न किया तथा आदिपर्व में भरत के चक्रवर्ती सम्राट होने का वर्णन है जो निश्चित रूप से विश्व के शासक के समरूप ही था जो की ईरानी उपाधियों का भावार्थ है।[4] अतः इसे पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता की भारतीय शासकों ने विश्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजेता की उपमा ईरानी शासकों से प्रभावित होकर अपनायी थी या नहीं। संभव है दोनों ही स्थानों पर ये उपाधियाँ स्वतंत्र रूप से उपयोग में लायी गयी हो।

मैगस्थनीज़, हेरोडोटस आदि विद्वानों के अनुसार मौर्य साम्राज्य पारसीक सभ्यता से अत्यधिक प्रभावित था। चन्द्रगुप्त मौर्य की दरबारी गतिविधियों के अध्ययन से भी इसी प्रकार के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य प्रजा के सम्मुख केवल धार्मिक तथा अत्यंत महत्वपूर्ण आयोजनों में ही उपस्थित होते थे। भारतीय महाकाव्यों में शासकों को प्रजा के पिता की भांति दर्शाया गया है तथा वो प्रजा के साथ प्रायः अनेक गतिविधियों में सम्मिलित होते थे। इसके विपरीत ईरानी शासक प्रजा के सम्मुख सीमित आयोजनों में ही दृष्टिगत होते थे, जिसे मौर्य सम्राट ने अपनाया था। हेरोडोटस के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने ईरानी शासकों की परंपरा त्यक्ता को अंगीकृत किया था जो मूलतः केश प्रक्षालन की प्रक्रिया थी।[5]

केश प्रक्षालन की इस क्रिया को विद्वान वैदिककाल में वर्णित राज्याभिषेक से जोड़कर भी देखते हैं, जिसमें पवित्र जल द्वारा राजा का अभिषेक किया जाता था जो भारतीय महाकाव्यों में वर्णित है।[6] अतः ऐसा भी संभव है कि ये प्रक्रिया पारसीक सम्राटों द्वारा भारतीय संस्कारों से ही अंगीकृत की गई हो तथा चन्द्रगुप्त मौर्य ने भी इसे भारतीय परंपरा से ही सीखा हो। विभिन्न साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मौर्य शासन व्यवस्था तथा ईरानी शासन व्यवस्था में समरूपता का पुट उच्च कोटि का है।

साइरस विश्व इतिहास में एक महान विजेता के रूप में प्रसिद्ध है तथा दारा प्रथम ने भी साइरस द्वारा स्थापित साम्राज्य तथा ख्याति में वृद्धि ही की। यूनान से सिंधु घाटी तक विस्तृत विशाल साम्राज्य पर साइरस महान तथा दारा प्रथम द्वारा शासन किया गया था जो उस काल में सर्वाधिक विस्तृत शासित भूभाग था। क्रमशः उन्होंने अन्य प्रांतो को भी विजित कर पंजाब तक अपना साम्राज्य विस्तार किया। भारतीय शासक बिम्बिसार द्वारा काशी तथा कौशल को विजित करना व अजातशत्रु द्वारा लिच्छवि गणराज्य पर अपना शासन स्थापित करना[7] इस तथ्य को इंगित करते हैं कि अन्य राज्यों को अपने साम्राज्य में समाहित करने की प्रेरणा भारतीय शासकों को पारसीक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राटों से प्राप्त हुई। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है कि शक्तिशाली राज्यों द्वारा साम्राज्य विस्तार की लालसा एक सामान्य मानव स्वभाव है जिसे किसी भी प्रकार की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं है। अतः इस विषय में भी किसी भी प्रकार का पारसीक सम्बन्ध स्थापित करने का कोई ठोस आधार नहीं हैं।

मौर्य काल में शासन द्वारा बड़ी संख्या में सड़क मार्ग का निर्माण हुआ था जो की राज्य की पश्चिमी सीमा से प्रारम्भ होकर राज्य की राजधानी तक विस्तृत थी। पारसीक सम्राट भी इस प्रकार की महत्वपूर्ण सड़कों के निर्माण हेतु प्रसिद्ध थे। अतः यह संभव है कि मौर्यो को सड़को के निर्माण हेतु प्रेरणा पारसीक शासन से मिली थी।[8] एक समृद्ध राज्य को सड़क की आवश्यकता होती है तथा इसके निर्माण हेतु राज्य की आतंरिक आवश्यकताएं स्वयं में प्रेरणा देती है। इसके अतिरिक्त तकनीकी ज्ञान का आदान प्रदान इस विषय से भिन्न विषय है। अतः भारतीय सड़कें, पारसीक सड़कों से प्रभावित थी या नहीं यह नहीं कहा जा सकता। संभव हो सकता हैं कि मौर्य काल की सड़कों के निर्माण पर पारसीक प्रभाव अत्यंत सूक्ष्म हो तथा ये सड़कें स्वतंत्र रूप में राज्य की आवश्यकता हेतु स्वतः ही निर्मित की गई हो।[9]

4.1.2 भारतीय न्याय व्यवस्था पर पारसीक प्रभाव

हखामनी साम्राज्य में राजा को देवता का प्रतिनिधि माना जाता था तथा राजा की इच्छा ही राज्य का कानून था। उनका कानून अत्यंत कठोर था तथा राजाज्ञा का उल्लंघन देवता का उल्लंघन ही माना जाता था। प्राचीनकाल में बिंबसार से लेकर चन्द्रगुप्त तक के शासनकाल तक इसी प्रकार की व्यवस्था थी। लिच्छवि गणतंत्र तथा पारसीक शासन की न्याय व्यवस्था की प्रणाली में महत्वपूर्ण समानतायें दृष्टिगोचर होती है। पारसीक व्यवस्था में राजा की अध्यक्षता में एक उच्च न्यायपालिका का गठन होता था जिसमें सात सदस्य होते थे तथा इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राज्य में लघु स्तर पर न्यायपालिका की व्यवस्था थी। लिच्छवि गणतंत्र में भी सात राजा तथा उनके अधीन उपराजा होते थे न्याय प्रक्रिया में समानता के आधार पर, उन पर राज्य की न्याय व्यवस्था का सम्पूर्ण दायित्व होता था तथा इसके अतिरिक्त सात न्यायाधिकरण की भी व्यवस्था थी।[10] इतिहासकार विन्सेंट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मिथ ने यह कहा था कि लिच्छवि मूल रूप से भारतीय नहीं थे तथा उन्होंने यहाँ बाहर से आकर अपने साम्राज्य की नींव डाली थी।[11] एस. सी. विद्याभूषण के अनुसार भी लिच्छवि शब्द की उत्पत्ति भी ईरानी मूल की है।[12] ईरानी न्याय व्यवस्था में दंड की कठोरता तथा भारतीय न्याय व्यवस्था में दंड में उदारता एक विभेद था, परंतु इसके अतिरिक्त अनेक समानतायें थी जो इस बात का द्योतक है कि यह व्यवस्थाएं एक-दुसरे से प्रभावित थी।

4.1.3 भारतीय धर्म पर पारसीक प्रभाव

भारत पर पारसीक शासन दो शताब्दियों तक रहा था अतः निसंदेह ही भारत की धार्मिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था पारसीक सभ्यता से प्रभावित हुई होगी तथा पारसीक सभ्यता स्वयं भी भारत की धार्मिक व सांस्कृतिक व्यवस्था से प्रभावित हुई होगी। जब आर्यों के विशाल समूह ने मध्य एशिया से प्रस्थान किया था, उसके उपरान्त वह समूह दो शाखाओं में विभक्त हो गया था। प्रथम समूह उत्तरी ईरान की दिशा में आगे बढ़ा तथा द्वितीय समूह अफगानिस्तान के मार्ग से होते हुए भारत देश में गंगा घाटी तथा विंध्य के पहाड़ी क्षेत्रों तक पंहुचा।[13] जर्मन विद्वान् ह्यूज विंकलर ने वैदिक तथा ईरानी देवताओं के मध्य समानता की खोज की थी। उन्होंने 1907 में पूर्वोत्तर एशिया माइनर के बोगज़कोइ शिलालेख में मितानी तथा हित्ती के राजाओं के मध्य हुई संधि का उल्लेख करते हुए कहा कि ईसापूर्व 1400 के लगभग ये संधि हुई जिनमें देवताओं को साक्षी बनाया गया था।[14] वहां अंकित देवता निम्न प्रकार थे-

संधि में अंकित ईरानी नाम	वैदिक समतुल्य
मि – ईत -रा	मित्रा
इन – दा -रा	इन्द्र
न-सा अत ती- इया	नासत्य
यू-रु-व-न	वरुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार तत्कालीन ईरानी तथा वैदिक समाज में समान देवताओं की स्तुति होती थी। विद्वान यह भी मानते हैं की सूर्य पूजा हेतु भारतीय समाज में सूर्य का चित्रण ईरानी प्रभाव ही है। वैदिक परंपरा में सूर्य की पूजा की जाती थी व ऋग्वेद में सूर्य को समर्पित अनेक श्लोक इस कथन की पुष्टि करते हैं।[15] इसके अतिरिक्त अन्य भारतीय पौराणिक ग्रंथों में भी सूर्य पूजा का उल्लेख है तथा यह भी सर्वमान्य है की ईसा पूर्व छठीं शताब्दी में भी भारत में सूर्य की पूजा की जाती थी परन्तु सूर्य के चित्र की पूजा तथा सूर्य मंदिर का निर्माण भारत में हखामनी आक्रमण के उपरांत ही प्रारम्भ हुआ।[16]इस प्रकार के चित्रण तथा मंदिर निर्माण से भारत में सूर्य पूजा एक नए आयाम के रूप में स्थापित हो गयी थी। भविष्य पुराण के अनुसार भारत में देवताओं को चित्र रूप में मगसों ने प्रारम्भ किया था तथा ये मगस प्राचीन ईरान में सूर्य तथा अग्नि की पूजा करने वाले मगिस ही थे।[17] भगवान श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने मूलस्थान (मुल्तान) में सूर्य मंदिर की स्थापना, ईरानी सभ्यता से प्रभावित होकर की थी।[18]

ईरानी धर्म तथा बौद्ध धर्म के तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय समाज की समावेशी प्रवृत्ति का ज्ञान होता है। भारत भूमि पर हखामनी आक्रमण के उपरांत ज़रथुस्ट्र पंथ व बौद्ध धर्म एक दुसरे के निकट आये तथा उन्होंने एक दूसरे पर व्यापक प्रभाव डाला था। भारत में बौद्ध धर्म के अनुयायियों द्वारा इस कथन की स्वीकृति कि बुद्ध पृथ्वी पर जन्म से पूर्व स्वर्ग में निवास करते थे, ज़रथुस्ट्र पंथ के प्रभाव का ही परिणाम है।[19] ज़रथुस्ट्र में प्रचलित शैतान तथा बौद्ध धर्म में प्रचलित मारा में अत्यधिक समानतायें दृष्टिगत है। पशु बलि जो उस काल की एक प्रमुख विशेषता थी, इसके विपरीत धार्मिक कार्यों में पशुओं की बलि का विरोध ज़रथुस्ट्र तथा बौद्ध दोनों ही धर्मों में समानता को प्रदर्शित करता है।[20]

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त यदि वैदिक धर्म पर अवेस्ता के प्रभाव का अध्ययन करे तो अनेक शब्द प्रभावित होते हुए ज्ञात होते हैं –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवेस्ता में प्रयुक्त शब्द	वेदों में प्रयुक्त शब्द
रोमा	सोम
ज़ाओटेर	होता
अर्थ्रावण	अथरवन
मंथर	मन्त्र
यजाता	यजता
यसना	यग्न

विद्वानों का अभिन्न मत है कि वेद तथा अवेस्ता दोनों का स्रोत एक ही है। उदाहरणतः दोनों में उपनयन संस्कार की विधि अत्यधिक समरूप है तथा दोनों ही ग्रंथों में पारस्परिक रूप से 33 देवताओं का उल्लेख है। वेद तथा अवेस्ता दोनों में ही देवताओं के चित्रण में भी समानता देखने को मिलती है, उदाहरणार्थ उनका रथों पर सवार होना इत्यादि। शब्दों के अतिरिक्त लिखित विचारों में भी वेद तथा अवेस्ता में अनेक समानतायें हैं, अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि कतिपय स्थानों पर दोनों ही ग्रंथों में शब्द व्यंजना भी समान है।[22] इस कारण से भारतीय विद्वानों का एक वर्ग यह भी निष्कर्ष निकालता है कि अवेस्ता, अहुर मज्दा से नहीं बल्कि भारतीय वेदों से प्रभावित है। पारसीक शासन में सम्राटों द्वारा धार्मिक सहिष्णुता का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने यहूदी धर्म के निवासियों को बेबीलोन में स्थान प्रदान किया था तथा उनके धार्मिक स्थानों व अनुयायियों की रक्षा की थी। प्रजा द्वारा अनुसरित प्रत्येक धर्म को राज्य द्वारा सुरक्षा प्रदान की गयी थी, चाहे वो शासक वर्ग अथवा राज्य का धर्म हो या न हो। इस प्रकार की उत्कृष्ट धार्मिक उदारता मौर्य शासन काल में भी दृष्टिगत होती है। मौर्यों द्वारा यह उदारता पारसीक शासन के प्रभाव का ही परिणाम प्रतीत होती है।[23]

पारसीक शासन व मौर्य शासन ने निसंदेह ही एक दूसरे की धार्मिक मान्यताओं तथा संस्कारों को प्रभावित किया था। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि कतिपय इतिहासकार इस मत को प्रस्तुत करते हैं कि हिन्दू समाज तथा ईरानी समाज का परस्पर सम्बन्ध अपेक्षाकृत कम ही रहा था तथा इस सीमित काल में ज़रथुस्ट्र पन्थियों द्वारा हिन्दुओं पर किसी प्रकार के महत्वपूर्ण प्रभाव का अवलोकन नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है वरन ज़रथुस्ट्र धर्म स्वयं ही भारतीय धर्म से प्रभावित दृष्टिगत होता है। परन्तु बौद्ध धर्म पर पड़े ज़रथुस्ट्र धर्म के प्रभाव को, हिन्दू धर्म की भांति पूर्णतः नकारा नहीं जा सकता है। अपितु यह अवश्य कहा जा सकता है की सूर्य देव का चित्रण तथा मौर्य शासन की धार्मिक सहिष्णुता की नीति ईरानी संस्कृति से ही प्रभावित है।

4.1.4 भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर पारसीक प्रभाव

ज़रथुस्ट्र धर्म के अनुसार ईरानी समाज मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित था-पुजारी, योद्धा व कृषक समाज।[24] शिल्पकार वर्ग भी उपस्थित था परन्तु उन्हें एक भिन्न श्रेणी में नहीं रखा गया था। कालान्तर में ईमा द्वारा उन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया गया था।[25] पुजारी वर्ग मनुष्य के सिर, योद्धा वर्ग हाथ, कृषक समाज पेट तथा शिल्पकार पैरों से सम्बंधित दर्शाये गए थे। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का इसी रूप में उल्लेख है।[26] हिन्दू परंपरा में जाति प्रथा का स्रोत यही वर्ण आधारित सामाजिक व्यवस्था है। इसमें भी ब्राह्मण को भगवान ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न, क्षत्रिय को हाथों से उत्पन्न, वैश्य को जांघों तथा शूद्र को पैरों से उत्पन्न बताया गया है। भारत का बौद्धिक समाज वर्ण-जाति व्यवस्था पर आधारित था। ऋग्वेद का रचनाकाल अवेस्ता से पूर्व का है तो संभव है की ईरान की श्रेणी व्यवस्था भारत से प्रभावित हो। मनुस्मृति में वर्णित भारतीय वर्णाश्रम धर्म की जाति व्यवस्था तथा ईरान की श्रेणी व्यवस्था के मध्य अधिक समानतायें देखने को मिलती हैं।[27]

हखामनी शासन की स्थापना के उपरांत ईरान में मगिस समाज के लोग भारत में स्थायी निवासी बन गए थे। मगिस समाज के कारण भारतीय समाज में दो मुख्य परिवर्तन हुए। प्रथम परिवर्तन यह हुआ कि सूर्य देव का चित्रण या मूर्ति पूजा भारत में भी प्रारम्भ हो गयी तथा द्वितीय मुख्य परिवर्तन यह हुआ की चचेरे भाई बहनों में परस्पर विवाह होने लगे।[28] परन्तु यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि चचेरे भाई बहनों में परस्पर विवाह भारत में पारसीक आगमन के पूर्व भी होता था जिसका प्रसिद्ध उदाहरण अर्जुन तथा सुभद्रा का विवाह है।[29] अतः ये कहना उचित नहीं प्रतीत होता है कि यह प्रथा ईरान से आई है परन्तु मगिस समाज के आगमन व सामाजिक सम्मिलन के उपरांत इस परंपरा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यधिक बल मिला। देवताओं को सोमरस चढ़ाने की प्रथा भी ईरानी समाज से प्रभावित प्रतीत होती है जहाँ हाओमा नामक तरल पदार्थ देवताओं को भेंट किया जाता था।[30]

भारतीय तथा ईरानी दोनों ही सभ्यताओं में वस्त्रों के सन्दर्भ में विविधता व्यापक रूप में दृष्टिगत होती है। ईरानी समाज में मुँह के अतिरिक्त शरीर के यदि अन्य अंग अनावृत है तो यह सभ्यता की श्रेणी में नहीं आता था। वहां के समाज में पुरुषों का सिर से प्रारम्भ कर पाँव तक सम्पूर्ण शरीर पूर्ण रूप से वस्त्रों द्वारा आवृत रहता था। महिलाओं के वस्त्र भी पुरुषों की भांति ही थे केवल वक्षस्थल के वस्त्रों में भिन्नता थी। पुरुषों में दाढ़ी व बाल घने तथा लंबे रखने की परंपरा थी।[31] वर्तमान में पंजाब क्षेत्र में भी इसी प्रकार की परंपरा का अनुपालन पुरुषों तथा महिलाओं के वस्त्रों से आभासित होता है। एक अन्य उदाहरण सौराष्ट्र के काठी समाज के वस्त्रों में भी दृष्टिगोचर है जहाँ वस्त्रों में इसी प्रकार की समानता मिलती है।[32] यद्यपि ये स्पष्ट नहीं हो पाता है कि वस्त्रों की ये समानता ईरान से भारत किस प्रकार पहुंची थी? क्योंकि प्रायः सामान्य जन के वस्त्र मौसम, जलवायु तथा वस्त्र निर्माण में प्रयुक्त अवयवों की उपलब्धता के अनुसार ही निर्धारित होते हैं। परन्तु उपरोक्त उदाहरणों में प्राप्त हुई समानता इस क्षेत्र में आदान-प्रदान की ओर संकेत करती है।

ईरानी समाज में शिक्षा को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया था तथा प्रजा मुख्यतः अशिक्षित थी फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में ईरानी समाज अत्यधिक पिछडा था। शिक्षा हेतु सामान्य प्रजा में किसी प्रकार का विशेष अनुराग नहीं था तथा उनका अधिकतर समय जीविकोपार्जन हेतु साधन एकत्र करने में ही व्यतीत होता था। परन्तु कुलीन तथा उच्च्च वर्ग जिन्हें जीविकोपार्जन हेतु चिंतित होने की आवश्यकता नहीं थी उनका शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण था।[33] हेरोडोटस के अनुसार उच्च्च वर्ग में भी पुस्तकीय शिक्षा को आवश्यक नहीं माना गया था तथा उनके पुत्र केवल तीन प्रकार की विद्या ग्रहण करते थे -घुड़सवारी, तीरंदाजी तथा व्याख्यान देना।[34] उच्च्च शिक्षा कुलीन वर्ग तक सीमित थी जो 24 वर्ष की आयु पूर्ण होने तक प्रदान की जाती थी। कतिपय व्यक्तियों को कार्यालयी तथा शासन के कार्यों हेतु मुख्य रूप से प्रशिक्षित किया जाता था। प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करने में भी इसी प्रकार की समानता मिलती है जिसमें ब्राह्मण के पुत्रों हेतु 25 वर्ष तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था थी। क्षत्रिय वर्ग के लोग युद्धकला सीखते थे तथा ब्राह्मण धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करते थे। एक अंतर दोनों समाजों की शिक्षा पद्यति में यह था कि भारत में निम्न वर्ग के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था परन्तु ईरान में इस प्रकार का कोई वर्ग नहीं था।[35]

4.1.5 भाषा शैली पर पारसीक प्रभाव

भारत तथा ईरान दोनों ही स्थानों में आर्यों की ही भिन्न शाखाओं ने निवास किया था अतः उनकी भाषा-शैली में समानता अवश्यसंभावी है। ईरान में दारा प्रथम के समयकाल में राजदरबार की भाषा प्राचीन पारसी थी तथा यह भाषा भारतीय संस्कृत के निकट थी।[36] दोनों भाषाओं की निकटता की तुलना निम्नलिखित शब्दों के द्वारा की जा सकती है-

पारसीक शब्द	भारतीय शब्द
पितर	पितृ
नमा	नामा
नपत	नपत
मातर	मातृ
ब्रतर	भ्रातृ

प्राचीन पारसीक भाषा के अवयवों को कालान्तर में पह्लवों द्वारा अपनाया गया, जिसे सामान्य भाषा में पहलवी के रूप में जाना जाता है।[37] दोनों ही भाषाओं में समानता का एक मुख्य कारण दोनों ही क्षेत्रों की भौगोलिक निकटता भी हो सकती है तथा यह भी सम्भावना हो सकती है कि ईरानी शासन के उपरांत भाषायी सम्मिलन स्थापित हुआ होगा। भारतीय साहित्य पर पारसीक आक्रमण के प्रभाव का कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

एक अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन जो कि भारत पर पारसीक प्रभाव के रूप में देखा जाता है वह भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रचलन है। यह लिपि भारत देश में उस समय प्रसिद्ध हुई जब पश्चिमोत्तर भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के क्षेत्रों पर पारसीक शासन था तथा इसका श्रेय विद्वजन पारसीक सम्राट साइरस प्रथम को देते हैं। खरोष्ठी लिपि निश्चित रूप में ईरान की अरमेइक लिपि से प्रभावित थी, जो कि पारसीक साम्राज्य में प्रचलित थी। शिलालेखों पर खरोष्ठी का प्रथम प्रयोग पश्चिमोत्तर भारत में ही पाया जाता है। उस काल में खरोष्ठी लिपि पश्चिम एशिया में अन्य कही भी प्रयुक्त नहीं होती थी, जबकि पश्चिमोत्तर भारत के अतिरिक्त भी पारसीक शासकों ने पश्चिमी एशिया में अपना साम्राज्य स्थापित किया था।[38] मौर्य सम्राट अशोक के शिलालेखों में खरोष्ठी लिपि का सर्वाधिक प्राचीन उपयोग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्राप्त हुआ है तथा तुलनात्मक रूप से सर्वाधिक नवीन उपयोग कुषाण शासन में तीसरी व छठीं शताब्दी के मध्य से प्राप्त हुआ है। खरोष्ठी युक्त शिलालेख बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, मध्य एशिया इत्यादि में पाए गए हैं जो भारतीयों द्वारा ही निर्मित किये गए थे। खरोष्ठी लिपि के अक्षर भारतीय भाषाओं को लिखने में भी प्रयुक्त हुए हैं।[39] मौर्य शासकों द्वारा भी खरोष्ठी लिपि को महत्वपूर्ण स्थानों पर उपयोग किया गया था। बख्त्री, पहलव, शक तथा कुषाणों ने भी इस लिपि का प्रयोग भारतीय भाषाओं के लेखन में किया था। कुषाणों के शासनकाल में जब बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार चरम पर था उस समय खरोष्ठी लिपि पश्चिम व उत्तर के क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रचलित हुई। अनेक विद्वान गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्ण काल मानते हैं तथा यही वह काल था जब भारतीय समाज में व्यापक रूप से भारतीयकरण की भावना विकसित हुई। भारतीयकरण की इस प्रक्रिया में विदेशी अवयवों का बहिष्कार तथा उसके स्थान पर मूल रूप से अपने देशवासियों द्वारा विकसित व्यवस्था को अंगीकार करना गौरवपूर्ण माना गया। इस भावना ने खरोष्ठी के प्रचलन को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा उसके स्थान पर स्वयं भारत में पोषित ब्राह्मी लिपि के उपयोग को प्रोत्साहित किया गया, जो की वर्तमान में भी हमारे देश की लिपि है, तथा भारत की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा हिंदी भी इसी लिपि से निकली है। तत्कालीन लेखों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जब पांचवीं शताब्दी में हूण भारत आये थे उस समय तक खरोष्ठी लिपि पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी थी। उस काल में खरोष्ठी लिपि से सम्बंधित किसी प्रकार का साक्ष्य नहीं मिलता है। अतः जब गुप्तकाल में देश के एक बड़े भाग को एकता के सूत्र में पिरोया गया उस समय खरोष्ठी को एक विदेशी लिपि मानते हुए इसके स्थान पर ब्राह्मी को वरीयता दी गयी। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वदेशी या राष्ट्रवाद की भावना से प्रेरित था। परन्तु इस सम्बन्ध में राजबली पांडेय जी का मत भिन्न है उनके अनुसार खरोष्ठी लिपि पूर्ण रूप से स्वदेशी थी यद्यपि उसका मूल विदेशी था। परन्तु उस समय की मान्यता में खरोष्ठी को विदेशी लिपि के रूप में ही देखा गया था। पश्चिमोत्तर भारत में विदेशी शासन के समय खरोष्ठी लिपि का प्रचलन बहुतयात में था, यहाँ तक की मुद्राओं पर भी खरोष्ठी लिपि प्रयुक्त हुई थी। शक, पहलव व कुषाणों के काल में इस लिपि का उपयोग हुआ था तथा खरोष्ठी लिपि द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी से विशेष रूप से गुप्तों के समय से उपेक्षित स्थिति में पहुंच गयी।[40]

किसी भी राजा द्वारा राजाज्ञा का उपयोग एक अत्यंत सामान्य प्रक्रिया है तथा भारत में मौर्य शासक अशोक द्वारा स्तम्भों, शिलाओं आदि पर इन्हें लिखवाया गया। नीलकंठ शास्त्री का मत है कि सम्राट अशोक द्वारा शिलाओं पर राजाज्ञा तथा अन्य निर्देश गड़वाने की प्रक्रिया हखामनी शासन से प्रभावित है।[41] दोनों ही शासकों के शिलालेखों में लेखन कला तथा शब्द व्यंजना में अत्यधिक समानता है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि सम्राट अशोक के शिलालेखों में देवनाम प्रिय, प्रियदर्शी, आदि उत्कीर्ण है। अशोक के अभिलेख का प्रारम्भ "Thus saith his Sacred and Gracious majesty" से हुआ है जो दारा द्वारा भी प्रयुक्त हुआ था। इस प्रकार दोनों ही राजाओं में समानता देखी जा सकती है।[42]

सम्राट अशोक के साम्राज्य के पश्चिम में एक गवर्नर को नियुक्त किया गया था जिसका नाम तुषास्फ था। यह नाम निसंदेह ही भारतीय नहीं है। यदि रुद्रदामन के अभिलेखों [43] से निष्कर्ष निकालें तो यह ज्ञात होता है कि तुषास्फ एक यवन राजा था तथा डी.सी.सरकार [44] के अनुसार तुषास्प एक यवन राजा था जिसका नाम पर्सियन था इस प्रकार मौर्यकाल में भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में पर्सियन प्रभाव की उपलब्धता सरलता से दृष्टिगोचर हो जाती है। दारा प्रथम के समय ग्रीक लोगों के लिए योन शब्द प्रयुक्त हुआ था जिसका मूलस्रोत भारतीय महाकाव्य महाभारत ही है। यवन शब्द का प्रारंभिक उपयोग पाणिनि की अष्टाध्यायी में मिलता है जिसे योन के संस्कृत रूपांतरण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में माना जा सकता है, तथा यह भी महत्वपूर्ण है की प्राकृत भाषा में योन शब्द का उपयोग सम्राट अशोक के शिलालेखों में मिलता है।[45]

4.1.6 मौर्य वास्तुकला पर पारसीक प्रभाव

पाटलिपुत्र तथा पर्सीपोलिस में हुए उत्खनन द्वारा इस तथ्य की पुष्टि होती है कि भारतीय वास्तुकला पर पारसीक प्रभाव अवश्य ही देखा जा सकता है। पारसीक आक्रमण के पूर्व भारत में वास्तुकला भिन्न प्रकार की थी परन्तु पश्चिमोत्तर भारत पर पारसीक आक्रमण के पश्चात मौर्य सम्राटों द्वारा पाटलिपुत्र का जिस प्रकार निर्माण कराया गया था उसके अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि नवनिर्मित पाटलिपुत्र की वास्तुकला पारसीक कला से प्रभावित थी। पटना में उत्खनन से एक कक्ष का अवशेष मिलता है जो पत्थरों के स्तम्भ पर आधारित है जो हखामनी साम्राज्य में निर्मित पर्सीपोलिस में प्राप्त हुई संरचना के समान है।[46] पर्सी ब्राउन के अनुसार मौर्य काल में निर्मित स्तम्भों व शिखरों की उत्कृष्टता यूनानी कला से भी अधिक उत्कृष्ट थी। मौर्य काल की वास्तुकला में पत्थरों का उपयोग भी प्रमुखता के साथ हुआ था जो कि यूनानी-पारसीक कला से प्रभावित था।[47] भारतीय पुरातत्व विभाग द्वारा अनावृत स्थानों के अध्ययन से निष्कर्ष निकलता है कि हॉल में निर्मित स्तम्भों के मध्य की दूरी पारसीक कला में प्रयुक्त हुई दूरी से तुलनात्मक रूप से समान है। उत्खनन के आधार पर डॉ स्पूनर ने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया कि पाटलिपुत्र व पेरिपोलिस दोनों ही स्थानों की वास्तुकला में अत्यधिक समानता है तथा ये समानता अत्यंत लघु स्तर पर भी समुचित रूप से देखी जा सकती है।[48]

पारसीक वास्तुकला में निर्माण कार्यों में स्तम्भों का भरपूर उपयोग किया गया था। उसी प्रकार मौर्य काल में भी निर्माण कार्यों में स्तम्भों का उपयोग किया गया अतः यह सम्भावना है की स्तम्भों का निर्माण पारसीक वास्तुकला से प्रभावित हो। नीलकंठ शास्त्री ने इस काल की वास्तुकला का विधिवत अध्ययन किया तथा उनके अनुसार मौर्य शासनकाल में भवनों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी स्तम्भों का निर्माण किया गया था जो पूर्ण रूप से भारतीय विचार प्रतीत होता है।[49] विद्वान् पर्सी ब्राउन ने सम्राट अशोक के समय की वास्तुकला के सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था कि मौर्य साम्राज्य में निर्मित वास्तुकला हेतु राजमिस्त्री का आगमन भी ईरान से ही हुआ था (चित्र-8)।[50] मोरलैंड तथा अन्य महत्वपूर्ण विशेषज्ञों का मत भी इसी प्रकार का है कि सम्राट अशोक के समय स्तम्भों पर उत्कीर्ण कारीगरी व कलाकृति अत्यंत उत्कृष्ट थी तथा यह कलाकृति पारसीक व हेलनिक दोनों प्रकार की कलाओं के समन्वय का परिणाम थी। अतः यह सम्भावना है कि जब भारतभूमि पर यवन शासन विद्यमान था उस समय बैक्ट्रिया से कारीगर भारत आये थे। अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भों व शिखरों में पारसीक प्रभाव देखा जा सकता है। भारत देश के अन्य स्थानों उदाहणार्थ भरहूत, साँची, गांधार तथा मध्य भारत में निर्मित शिखरों पर पशुओं के चित्रण को भी पारसीक प्रभाव से जोड़ा जा सकता है। इन स्थानों पर शिखर में पायी गई कलाकृति पारसीक कलाकृति की तुलना में उत्तम थी। परन्तु विद्वान पर्सी ब्राउन के अनुसार प्रत्येक स्थान पर मूल प्रभाव ईरानी ही है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हुए परिवर्तित हो गई थी। मौर्यकाल में पत्थरों को शोभायमान रूप में परिष्कृत करना भी हखामनी शासन से प्रभावित था। ये कला परंपरा मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरांत भी भारत में नियमित रूप से चलती रही। एक मत यह भी है कि यह कला ईरान में यवनों द्वारा पहुंचाई गयी थी। पर्सी ब्राउन के अनुसार पत्थरों को शोभायमान रूप में परिष्करण स्तम्भों व बलुआ पत्थर पर भी हुआ है तथा इस कला पर ईरानी प्रभाव के साथ साथ मिस्र तथा यूनानी प्रभाव भी देखा जा सकता है।[51] यह कला मौर्य काल में अपने उत्कृष्ट रूप में पहुंची थी जिसका प्रमाण इस रूप में प्रस्तुत किया जाता हैं कि 2000 वर्षों से अधिक समय व्यतीत होने के उपरान्त भी उन स्मारकों, पत्थरों में चमक व्याप्त है। सम्राट अशोक निर्मित सारनाथ में शिखर पर घंटे की आकृति में उल्टा कमल पाया गया है जो की हखामनी काल की विशेषता है। कमल पर उत्कीर्ण पंखुडिया तथा पत्तियां भी ईरानी कला से प्रभावित है। स्मिथ के अनुसार मौर्यो द्वारा ये कला ईरान से ली गई थी परन्तु उसका सर्वोत्तम रूप मौर्य काल में ही निर्मित हुआ। भारतीय कला में शिखर व घंटे की आकृति पूर्व में भी निर्मित हुई थी, परन्तु यदि मौर्य काल में निर्मित कलाकृतियों का अध्ययन करें तो उसमें ईरानी प्रभाव प्रमुखता से दृष्टिगत होता है।[52] बिहार के भोजपुर जिले से प्राप्त हुई मूर्ति में ईरानी प्रभाव देखा जा सकता है (चित्र -9)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेरोडोटस के अनुसार भारतीय क्षत्रपों से दारा को प्रतिवर्ष 4680 टैलेंट स्वर्ण चूर्ण कर के रूप में मिलता था।[53] ऐसा प्रतीत होता है कि यह मात्रा अत्यंत ही बढ़ा-चढ़ा कर बताई गयी थी। क्योंकि यदि इतनी विशाल मात्रा भारतीय क्षत्रपों द्वारा ईरान पहुंचाई जाती थी तो निसंदेह ही भारतवर्ष की अर्थव्यवस्था का नाश हो जाता। परन्तु यह अवश्य ही था कि भारतीय क्षत्रपों को अन्य क्षत्रपों की तुलना में अधिक कर देना पड़ता था। दारा को अपनी सेना की व्यवस्था तथा प्रबंधन हेतु स्वर्ण की आवश्यकता होने पर उसने सरदिस व बैक्ट्रिया से स्वर्ण मंगवाया गया था, अब प्रश्न यह है कि यदि भारतीय क्षत्रपों द्वारा इतनी विशाल मात्रा में कर दिया जाता था तो इन स्थानों से स्वर्ण मंगवाने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी? एक प्रश्न यह भी है की भारत में इतना विशाल स्वर्ण भण्डार होने पर भी यवनों द्वारा भारतीय विजय के उपरांत उन्होंने अपने लेखपत्रों में स्वर्ण सम्बंधित किसी प्रकार का उल्लेख क्यों नहीं किया था? दारा प्रथम के सूसा अभिलेख के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत द्वारा फारस को कर के रूप में हाथी दांत तथा गांधार की याक की लकड़ियां दी गयी थी (चित्र -10)।[54] सैकड़ों विद्रोहों तथा युद्धों के उपरान्त भी जब दारा तृतीय यवनों के विरुद्ध युद्ध से भाग गया था तब उसके पास 7000 टैलेंट की धनराशि थी तथा सिकंदर की विजय के उपरांत पारसीक राजकोष से 180000 टैलेंट स्वर्ण प्राप्त हुआ था। यह एक विशाल मात्रा थी जिसका स्रोत भारत भी अवश्य ही रहा होगा।[55]

4.1. 7 अर्थव्यवस्था पर पारसीक प्रभाव

फ़ारसी संपर्क के पश्चात भारतीयों को फ़ारस में व्यापार के अवसर उपलब्ध हुए जहाँ भुगतान के रूप में मुद्रा के स्थान पर वस्तुओं का आदान-प्रदान होता था जिसमें पशु व अनाज का विनिमय मुख्य रूप से होता था। पशु व अनाज के भण्डार भारत में सिंध व पंजाब के क्षेत्र में थे, साइरस के सिंध पर आक्रमण तथा दारा के पंजाब पर आक्रमण हेतु ये मुख्य कारण बने थे। पशु व अनाज की लूट के कारण भारत की अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से कमजोर हुई थी।[56]

स्वर्ण की मुद्रायें विश्व में सर्वप्रथम दारा प्रथम के शासनकाल में ही उपयोग में लायी गयी थी (चित्र - 11)।[57] इतिहासकारों का मत है की भारत में रजत मुद्राओं का प्रचलन, पारसीक मुद्राओं से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित है।[58] डी.सी.सरकार के अनुसार पारसीक राजाओं ने भारत में स्वर्ण व रजत मुद्राओं का प्रचलन आरम्भ करवाया।[59] मौर्य शासन ने अपनी स्वयं की मुद्रायें भी चलवाई थी, परन्तु भारतवर्ष में इसके साथ पारसीक तथा यवन मुद्रायें भी प्रचलन में थी। जो देशी सिक्के पूर्ण रूप से स्वदेशी थे वो आकृति में चौकोर थे तथा उनका भार रत्ती में मापा जाता था।[60]

हखामनी विजय के उपरान्त भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में वस्त्र सम्बन्धी व्यापार में वृद्धि हुई थी जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हुयी थी।[61] बारबणा एक प्रकार का कोट था जो ईरान में प्रचलित था, इसी के समरूप वस्त्र कुषाण शासकों द्वारा भी अंगीकार किया गया था तथा गुप्त शासकों समुद्रगुप्त, चंद्रगुत इत्यादि ने भी इस प्रकार के वस्त्र उपयोग में लाये थे।[62] भारत में कम्बल निर्माण कला भी ईरान से प्रभावित हुई थी परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि हखामनी आक्रमण से पूर्व भी भारत में कंबल निर्माण होता था। महाभारत में कम्बोज क्षेत्र में कम्बल का वर्णन मिलता है, जिसके अनुसार कम्बोज नरेश ने युधिष्ठिर को उत्कृष्ट प्रकार के कम्बल भेंट किये थे।[63] भारतीय मापन पद्यति में भी ईरानी प्रभाव दृष्टिगोचर है जैसे सड़कों तथा अन्य स्थान पर रेखीय मापन ईरानी पद्यति के समरूप है। रेखीय मापन के साथ ही भार मापन में भी ईरानी प्रभाव देखा जा सकता है।[64]

भारतवर्ष पर हखामनी विजय ने भारत तथा ईरान के मध्य सांस्कृतिक व आर्थिक सम्मिलन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। पारसीक अभियान से पूर्व भारत के विश्व से सम्बन्ध मुख्यतः समुद्री मार्ग द्वारा स्थापित थे तथा व्यापार भी मुख्यतः इन्हीं मार्गों से होता था। इसका मुख्य कारण यह था की हिन्दुकुश से भूमध्य सागर के मध्य का मार्ग पहाड़ों, रेगिस्तानों तथा जनजातिय स्थलों से भरा था जिनको पार कर पाना अत्यधिक कठिन था। पारसीक साम्राज्य द्वारा अपनी राजधानी को सरदिस से सड़क मार्ग द्वारा जोड़ने के उपरान्त व्यापार व संचार के माध्यमों में तीव्र गति से विकास प्रारम्भ हो गया था। दैनिक उपयोग की अनेक वस्तुओं का व्यापारिक आदान प्रदान प्रारम्भ होने से दोनों ही राष्ट्रों की आर्थिक दशा में महत्वपूर्ण सुधार हुआ। ईरानी साम्राज्य में खेती का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण था तथा सिंचाई हेतु व्यापक प्रबंध किये गए थे, जिसमें भूमिगत माध्यमों द्वारा पहाड़ी क्षेत्रों से सिंचाई हेतु जल की व्यवस्था की गई थी। अशोक काल में तुषास्प द्वारा नहरों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माध्यम से जलाशय का निर्माण किया गया जिसका नाम सुदर्शन झील रखा गया था। इसमें भी नहरों द्वारा जल का स्थानांतरण ईरान में प्रयुक्त हुई विधि द्वारा ही किया गया था।[65]

स्ट्रेबो [66] के अनुसार राजपर्व के समय चंद्रगुप्त के सेवक अनेक बहुमूल्य वस्तुयें साथ लेकर चलते थे, इन वस्तुओं की पर्सियन वस्तुओं से समरूपता देखी जा सकती है, जिन्हें सिकंदर ने विजित करके तक्षशिला के राजा आम्भी को भेंट की थी।[67] भारत-पारसीक सम्मिलन एक सकारात्मक रूप में भारतीय समाज के अनेक अवयवों में दृष्टिगोचर होता है। महिलाओं के आभूषणों में भी इसकी छवि दिखाई पड़ती है। इसका उदाहरण तक्षशिला में संपन्न हुए उत्तखनन से प्राप्त हुई स्वर्ण चूड़ियों के रूप में मिलता है जिसमें सिंह की आकृति अंकित है।[68]

4.2 सिकंदर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव

हखामनी आक्रमण के पश्चात भारत पर विश्व विजेता ग्रीक सम्राट सिकंदर द्वारा आक्रमण किया गया था। सिकंदर के आक्रमण ने भारत पर क्या प्रभाव स्थापित किया अथवा यह आक्रमण भारतीय समाज में प्रभावहीन रहा, इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के अनेक मत हैं। भारतीय साहित्य में सिकंदर के आक्रमण का भारत पर प्रत्यक्ष रूप से स्थापित प्रभाव प्रायः गौड़ माना गया है परन्तु अप्रत्यक्ष प्रभाव स्पष्ट रूप से भारतीय समाज के अनेक अंगों पर अग्रगामी दो शताब्दियों तक स्थापित रहा जिसनें भारत के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों क्षेत्रों पर अमिट प्रभाव डाला था। यदि नकारात्मक पक्ष के विषय में विचार किया जाए तो इस आक्रमण ने पश्चिमोत्तर दिशा से भविष्य में आने वाले आक्रमणकारियों हेतु भारत के मार्ग को सार्वजानिक कर दिया था, जिनसे होकर अनेक वर्षों तक विदेशी आक्रांता भारत भूमि पर शासन स्थापित करते रहे तथा भारतीय समाज के प्रत्येक आयाम को प्रभावित करते रहे। रायचौधरी के अनुसार सिकन्दर के भारत पर आक्रमण ने केवल एक स्थाई प्रभाव डाला था वह यह था कि इसके पश्चात यवन प्रचुर मात्रा में भारत में निवास करने लगे थे, जिन्होंने भारतीय जीवन शैली पर व्यापक प्रभाव स्थापित किया था।[69] दूसरी ओर राधाकुमुद मुखर्जी के अनुसार इस आक्रमण का स्थाई प्रभाव केवल यह था कि भारत तथा यूनान के मध्य एक सम्बन्ध स्थापित हो गया था जिसने आगामी वर्षों में भारत निर्माण में महती योगदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था।[70] विद्वान रॉलिंसन भी इसी कथन का समर्थन करते हैं तथा अपने विचार रखते हैं कि सिकंदर के आक्रमण का भारत देश पर प्रत्यक्ष प्रभाव न के बराबर है।[71] यह भी विचारणीय तथ्य है कि सिकंदर को जितना स्थान व महत्त्व ईरानी साहित्य में दिया गया है उसकी तुलना में भारतीय साहित्य ने सिकंदर का महिमामंडन न्यून मात्रा में किया है जो वस्तुतः इसका द्योतक है की सिकंदर के आक्रमण ने भारत पर महत्वपूर्ण प्रभाव स्थापित नहीं किया। यद्यपि सिकंदर का प्रभाव भारतीय राजनीति में अधिक नहीं रहा परन्तु वैचारिक रूप से भारतीय कला, वास्तुकला, धर्म, दर्शन, साहित्य तथा विज्ञान पर किसी न किसी रूप में यह प्रभाव देखा जा सकता है।

सिकंदर द्वारा भारतीय सीमा पर यूनानी नगरों की स्थापना की गयी थी तथा सिकंदर के यूनान की ओर प्रस्थान करने के उपरांत भी यह नगर ज्यों के त्यों स्थापित रहे, जो कालान्तर में मौर्य शासन के अधीन हो गए थे। इन नगरों के विषय में महत्वपूर्ण यह है कि यह नगर भारत में यवन परम्पराओं के भारतीय समाज में सम्मिलन हेतु केंद्र के रूप में कार्यरत रहे। कला के क्षेत्र में यूनानी योगदान सरलतापूर्वक दृष्टिगोचर है जो केवल भारतीय सीमाओं तक सीमित नहीं रहा वरन चीन तक भी प्रसारित हुआ था। अतः सिकंदर के आक्रमण के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यवन बस्तियों का निर्माण ही रहा था जिन्होंने वर्तमान काल में भी यवन सभ्यता को जीवंत बनायें रखा था। रायचौधरी सिकन्दर द्वारा स्थापित यवन बस्तियों को भारतीय सभ्यता में सांस्कृतिक सम्मिलन हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे। इन्होंने यवन नगरों के विषय में अधिक जानकारी प्रदान की जो मुख्यतः उत्तरापथ में स्थित थे। इस नगरों में निम्नलिखित नगर मुख्य थे

1- काबुल के निकट सिकन्दरिया
2- झेलम के निकट बडकेफला
3- झेलम के निकट निकैया
4- चेनाब व सिंधु नदी के संगम स्थल पर सिकन्दरिया
5- पंजाब में सोग्डियाना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राट अशोक द्वारा इन नगरों में अधिकारी नियुक्त करने का वर्णन मिलता है, जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध यवन राजा तुषास्फ था। कंधार के निकट प्राप्त सम्राट अशोक के शिलालेख में भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र में योना प्रान्त का विवरण मिलता है।[72]

4.2.1 सिकंदर के आक्रमण का भारतीय राजनीति पर प्रभाव

मौर्य सम्राटों में साम्राज्य विस्तार की भावना प्रबल थी संभवतः यह भावना उन्हें सिकंदर की साम्राज्य विस्तार की लालसा से प्राप्त हुई। कतिपय इतिहासकारों के अनुसार मौर्यों को इसकी प्रेरणा हखामनी शासन से प्राप्त हुई है। परन्तु इन दोनों ही सिद्धांतों के विषय में एक द्वितीय यह पक्ष भी रखा जाता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास में चक्रवर्ती सम्राट की अवधारणा थी। चन्द्रगुप्त मौर्य जो लिखित प्रमाणों के अनुसार भारत का प्रथम बड़ा सम्राट था, उन्होंने भारतीय इतिहास से ही प्रेरणा ली थी। चन्द्रगुप्त मौर्य से पूर्व किसी ने भी चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि को ग्रहण नहीं किया था क्योंकि उनके राज्य, मौर्य राज्य की तुलना में अत्यंत सीमित थे। अतः सिकंदर का आक्रमण को प्रमुख कारण माना जा सकता था जिसने भारत में राजनीतिक एकता की चेतना का जागरण आरम्भ करने में प्रमुख योगदान दिया था। पश्चिमोत्तर भारत के छोटे छोटे राज्यों ने सिकंदर के आक्रमण के विरुद्ध संगठित होने का प्रयास किया परन्तु उनकी कमजोर सैन्य व्यवस्था ने पहले सिकंदर फिर चन्द्रगुप्त को अपना अधिपत्य स्थापित करने हेतु अवसर प्रदान किया। अनेक छोटी छोटी शक्तियों में विभाजित पश्चिमोत्तर भारत के राज्य सिकंदर के विरुद्ध संगठित हुए थे, डिओडोरोस के अनुसार ये एकता वैवाहिक बंधनों द्वारा स्थापित की गई थी जिसमें एक राज्य ने दुसरे राज्य को 10000 युवतियाँ विवाह हेतु भेजी थी। परन्तु इन सभी प्रयासों के उपरांत भी भारत में एक संगठित राजनीतिक शक्ति उदित नहीं हो पाई थी।[73]

सिकंदर के आगमन के पश्चात मौर्य साम्राज्य मध्य भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य बना तथा यवन साम्राज्य ने उसने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये, जो राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे।[74] मौर्यों के शासनकाल में यवनों का सम्मानजनक स्थान था। उनके क्रियाकलापों तथा परम्पराओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज एवं राज्य में स्वीकृति प्राप्त होने लगी थी। यवन अधिकारी भी मौर्य दरबार में उपस्थित रहते थे।[75]

4.2.2 भारत में खेलकूद की परंपरा का विकास

यवन सभ्यता में खेलकूद की गतिविधियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। सर्वविदित है कि ओलम्पिक खेल ईसापूर्व 776 में ओलम्पिया में प्रारम्भ हुए थे, इनकी प्रसिद्धि ने खेल सम्बंधित गतिविधियों को यूनानी शासन का एक अंग बना दिया था। सिकंदर अपने मुख्य समारोहों में विभिन्न प्रकार के खेलों का आयोजन भी करवाता था तथा जब भारतीय समाज में हिन्द-यवन सम्बन्ध प्रगाढ़ हुए तब भारतीय जनमानस को विभिन्न प्रकार के खेलों का परिचय मिला। सिकंदर अपनी विशाल सेना में सैनिकों को स्वस्थ तथा तीक्ष्ण रखने में विश्वास रखता था तथा उनके उत्साहवर्धन हेतु वह सैनिकों के मध्य खेलों की प्रतियोगिता करवाता रहता था।[76] यवन सेना में विशाल संख्या में भारतीय सैनिक भी थे जो इस खेलकूद की परंपरा से जुड़ गए।

4.2.3 भारतीय शब्दावली में यवन शब्दों का सम्मिलन

सिकंदर के भारत अभियान ने भारतीय साहित्य तथा राजनीति पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डाला था। अनेक ऐसे प्रभाव हैं जिनको यद्यपि रेखांकित नहीं किया गया है परन्तु वे भारतीय जनजीवन का महत्वपूर्ण अंग बन गए थे। स्थानीय भाषा पर भी यवन प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है तथा गणित व खगोलीय विज्ञान से सम्बंधित अनेक शब्द यवन भाषा से लिए गए थे। सिकंदर के आगमन के उपरांत संस्कृत शब्दकोष में गणित तथा विज्ञान से सम्बंधित यवन शब्द जोड़े गए, उदाहरणतः होरा, केंद्र, कोना इत्यादि।[77]

4.2.4 भारत तथा यूनान के मध्य दार्शनिक विचारों का आदान-प्रदान

सिकंदर के आक्रमण के समय यवन व भारत दोनों ही देशों में दर्शन शास्त्र उत्कृष्ट दशा में था अतः यह कहना सरल नहीं होगा कि किस सभ्यता ने किसको प्रभावित किया था। ऐसा माना जाता है कि दार्शनिकों का यूनान से भारत तथा भारत से यूनान स्थानांतरण होता रहा था तथा उन्होंने एक दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दर्शन शास्त्र पर विचार विमर्श एवं विधिवत अध्ययन किया। इतिहासकार उसबियस के अनुसार एक भारतीय दार्शनिक ने सुकरात का साक्षात्कार किया था।[78] सिकंदर भारतीय संत परंपरा तथा उनके दर्शन से अत्यधिक प्रभावित था। सिकंदर ने अपने दार्शनिकों को भारतीय संतों से वार्तालाप हेतु भेजा था जिनमें कालानोस तथा दण्डामिस प्रमुख थे। सिकंदर के दार्शनिकों ने तक्षशिला के जंगलों में विचरण करते संतों से विचार-विमर्श किया था। सिकंदर ने भारतीय संतों का श्रवण किया था तथा उनसे प्रसन्न व संतुष्ट हुआ यहाँ तक कि सिकंदर वापस जाते वक्त कालानोस को अपने साथ ले कर गया परन्तु सुसा पहुंचने पर कालानोस ने अप्रिय स्वास्थ्य के कारण स्वयं को अग्नि में समाहित कर मृत्यु का वरन कर लिया था। इस प्रकार का एक उदाहरण वाल्मीकि कृत रामायण में सरभंगा ऋषि का भी प्राप्त होता है।[79] अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि भारतीय विचारकों ने यवन तर्कशास्त्र से ज्ञान प्राप्त किया था। भारतीय पुस्तक न्यायशास्त्र में अनेक युक्तिवाक्य अरस्तु की प्रायर एनालिटिक्स से प्रभावित है। यद्यपि भारतीय ग्रन्थ में युक्तिवाक्य 5 भागों से बना था, जबकि यवन युक्तिवाक्य 3 भागों से। अतः भारतीयों ने 2 भागों को स्वयं जोड़ा था। दर्शन में न्यायव्यवस्था का परिचय भारतीय लेखक अक्सापदा(Aksapada) ने कराया था, उन्होंने अरस्तु के तर्कशास्त्र का व्यापक अध्ययन किया था।[80]

पुनर्जन्म का सिद्धांत आधुनिक काल तक भारत का मूलभूत विचार है। यह भारतीय ज्योतिष परम्परा में भी प्रमुख स्थान रखता है। भारत में *छान्दोग्य उपनिषद* में तथा यूनान के *ओर्फिक* दोनों में ही पुनर्जन्म के सिद्धांत की विवेचना की गयी है। प्राचीन काल से ही दोनों देशों में पुनर्जन्म में विश्वास किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि दोनों ही स्थानों पर पुनर्जन्म का सिद्धांत, उन स्थानों पर निवासरत रही प्राचीन जनजातियों द्वारा प्राप्त हुआ था। प्लेटो की रचनाओं में भी कर्म का सिद्धांत मिलता है जो भारतीय कर्म के सिद्धांत के ही समरूप पाया जाता है। इस कथन कि समीक्षा से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय पुनर्जन्म तथा कार्मिक सिद्धांतों ने यवन ज्ञान को प्रभावित किया था।[81]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.2.5 सामाजिक प्रभाव

सिकंदर के आक्रमण के पश्चात यवन नागरिकों का एक समूह भारत में ही निवास करने लगा था। सिकंदर के साथ भारत आयी विशाल सेना भी पश्चिमोत्तर भारत में निवास करने लगी थी जिसके कारण वहाँ के नागरिकों को यह क्षेत्र छोड़कर जाना पड़ा था। जिनमें आभीर तथा मालव जातियां मुख्य रूप से विस्थापित हुई थी। अतः सिकंदर के आक्रमण का एक प्रभाव भारत पर यह भी हुआ था की भारतीय लोगों का विशाल संख्या में स्थानांतरण हुआ। पेरिप्लस *ऑफ़ द एरिथ्रियन सी*[82] तथा मैक्रिंडल[83] के अनुसार आभीर गुजरात के सोमनाथ से सम्बन्ध रखते थे। जबकि *महाभारत*[84] के अनुसार वो सरस्वती नदी के निकट निवास करते थे। परन्तु यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि आभीर जाति सोमनाथ से सिंधु के पूर्व क्यों गयी? इसी प्रकार मालवा जाति के लोग भी उज्जैन से पश्चिमोत्तर भारत क्यों गए थे? अतः इसकी सम्भावना ही अधिक जान पड़ती है कि इन दोनों जातियों ने पश्चिमोत्तर भारत से ही विस्थापन किया था जिसका कारण विशाल संख्या में यवनों का उस क्षेत्र में बसना था।

सिकंदर की नीति ने एक समाज से दूसरे समाज में विवाह सम्बन्धों को प्रोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभाई थी। इसी प्रथा का अनुसरण करते हुए संभवतः सेल्यूकस ने भी अपनी पुत्री का विवाह मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से कराया था। सिकंदर द्वारा स्थापित नगरों में भी यह प्रथा उत्साह के साथ अपनायी गई थी। इसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि यवन जनता अपने देश से दूर स्थित थी तथा विवाह हेतु स्थानीय महिलायें ही उनका सरल विकल्प थी। सिकंदर ने राजकीय महत्त्व के उत्सवों पर फारसी परंपरा की भांति ही वस्त्र धारण करने में रुचि दिखाई थी तथा फारसी दरबार में प्रयोग की जाने वाली शिष्टाचार की परंपरा को भी आत्मसात किया।[85] सिकंदर ने अनेक दरबारी शिष्टाचारों को लागू करवाया था। जिसमें एक प्रमुख परंपरा यह थी कि राजा के सम्मुख भी उसी प्रकार से अभिवादन किया जाएगा जिस प्रकार से भगवान की प्रतिमा अथवा चित्र के सम्मुख किया जाता हैं। उसने राजा के सामने झुककर प्रणाम करने की परम्परा को प्रारम्भ करवाया।[86] भारतीय महाकाव्य *रामायण* में साष्टांग प्रणाम का उल्लेख प्राप्त होता है कि राम जब सीता को ढूंढते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए किष्किंधा पहुंचे थे तब हनुमान ने राम को ऐसे ही प्रणाम किया था।[87] अतः ऐसी परंपरा भारत का एक अभिन्न अंग रही है। भारतीय तथा यवन परंपरा में साष्टांग प्रणाम में एक प्रमुख अंतर यह भी था कि यवन परंपरा में प्रणाम केवल शाही दरबार तक ही सीमित था जबकि भारत में साष्टांग प्रणाम भारतीय जनमानस में सभी प्रकार की पूजा-उपासना की पद्यति में सम्मिलित था। पारसीक तथा भारतीय सम्राटों में एक समानता यह भी थी दोनों को ही दैवीय मूल का माना जाता था अतः उनके सामने दंडवत होने का विशेष महत्त्व था अतः यह परंपरा दोनों ही स्थानों पर प्रचलित थी तथा यह कहना अत्यधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है कि दोनों ही स्थानों पर यह विदेशी प्रभावों से मुक्त थी।

यवन आगमन के समय पश्चिमोत्तर भारत तथा पंजाब का क्षेत्र अपने उच्च गुण वाले बैलों हेतु प्रसिद्ध था तथा टॉल्मी के अनुसार सिकंदर ने अपनी विजय के उपरांत 2 लाख से भी अधिक बैलों को खेती के कार्य हेतु भारत से मकदूनिया स्थानांतरित किया था। इसके उपरांत इन भारतीय क्षेत्रों में इनकी संख्या अत्यंत कम होने के कारण कृषक समाज हेतु कठिनाई उत्पन्न हो गयी। तक्षशिला के राजा आम्भी ने सिकंदर से मित्रता होने के पश्चात उसे 300 बैल तथा 10000 भेड़ उपहारस्वरूप भेंट में प्रदान किये थे।[88]

4.2.6 भारतीय इतिहास का लिपिबद्धकरण

गुप्त सम्राटों ने 5 सदीं पूर्व पूर्वज रहे मौर्यों के विषय में जानने हेतु यवनों द्वारा लिखित इतिहास का प्रयोग किया था। रैप्सन के अनुसार यवन इतिहास लेखकों ने विशाल मौर्य साम्राज्य के विषय में अनेक सूचनाएं दी हैं। जो मौर्य काल के शासन व समाज के विषय में ज्ञान प्राप्त करने हेतु अति महत्वपूर्ण हैं। सिकंदर अपनी विश्वविजय की यात्राओं में अपने साथ अनेक विद्वानों व लेखकों को भी रखता था, जिन्होंने सिकंदर की विजय सम्बन्धी विवरण के अतिरिक्त विजित देशों के तत्कालीन समाज तथा शासन के विषय को भी लिखा जो गुप्त काल में तथा वर्तमान में भी भारतीय इतिहास को जानने का मुख्य स्रोत है।[89] गुप्त काल के अनेक लेख आज भी उपलब्ध हैं। सिकंदर के समकालीन मगध शासक नन्द थे, तथा यवन लेखकों ने नन्द वंश के विषय में कुछ जानकारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखबद्ध की थी, इसी प्रकार सेल्यूकस का समकालीन मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य था जिनको यवन इतिहास में सांद्रोकोत्तस के रूप में जाना जाता है। मगध के विषय में अनेक ऐतिहासिक जानकारियां यवन विद्वानों द्वारा लिखित इतिहास से मिलती है। सम्राट अशोक के विषय में भी जानकारी का एक स्रोत यवन काल में लिखित इतिहास ही है। अतः नंदवंश तथा मौर्य वंश के भारतीय राजाओं की वंशावली तथा सामाजिक इतिहास को जानने में यवन लेखकों की भूमिका अत्यंत महत्पूर्ण रही है। उनके द्वारा इस कार्य के भाव में इतिहास के अनेक पक्ष इतिहासकारों को ज्ञात होने में कठिनाई होती। सिकंदर की सेना में केवल सैनिक और सैनिक अधिकारी ही नहीं, अपितु इतिहासकार,भूगोलवेत्ता,तकनीशियन और साहित्यकार भी सम्मिलित थे। इनमें से अनेक ने भारत के विषय में लिखा किन्तु उनकी मूल कृतियां उपलब्ध नहीं हैं तथा केवल परवर्ती लेखकों द्वारा उद्धृत कुछ अंशों के माध्यम से मूल कृति के विषय में ज्ञात होता है।[९०] यह भी सत्य है की यवन लेखकों ने भारतीय इतिहास का वर्णन करके पूरे विश्व को भारत के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी दी तथा भारतीय तथा विश्व के व्यापारियों के लिए नवीन द्वार खोल दिए। यवन आगमन का पश्चिमोत्तर भारत पर विस्तृत प्रभाव पड़ा परन्तु भारतीय विद्वानों द्वारा लिखित इतिहास की अनुपलब्धता होने के कारण शेष भारत पर पड़े प्रभावों की व्याख्या संभव नहीं हो पाती है।

4.2.7 सैन्य कुशलता को प्रोत्साहन

सिकंदर के भारत आगमन से पूर्व भारतीय शासक सैन्य कुशलता के विषय में अधिक चिंतित नहीं रहते थे तथा संख्या बल पर उनकी निर्भरता अधिक थी। परन्तु सिकंदर के सैन्य अभियानों की अपार सफलता ने उन्हें इस दिशा में विचार हेतु प्रोत्साहित किया तथा सैन्य अनुशासन के विषय में भी उन्हें पर्याप्त जानकारी मिली फलस्वरूप भारतीय शासक भी सैन्य कुशलता तथा अनुशासन को विधिवत महत्त्व देने लगे। वो विश्वास करने लगे कि एक अनुशासित तथा दक्ष सेना स्वयं से विशाल सेना को भी पराजित करने की क्षमता रखती है जिस प्रकार सिकंदर की छोटी सेना ने दारा तृतीय की बड़ी सेना को पराजित किया था।[९१] सिकंदर की सैन्य कुशलता उसके द्वारा विजित ग्रामीण क्षेत्रों में भी दृष्टिगत है, उसने विजित ग्रामों के चारों ओर खाई बनवाई तथा सुरक्षा हेतु चौकियों को भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुदृढ़ किया, जिसके प्रमाण आज भी पश्चिमोत्तर भारत में देखे जा सकते हैं।[92] भारत में अपने विजय अभियान को बढ़ाते हुए सिकंदर की सेना को नदी पार करनी पड़ी थी। इन क्षेत्रों में उसकी सेना द्वारा नदियों पर पुल का निर्माण करवाया गया था फलस्वरूप भारत में भी नदियों पर पुल बनाने की कला के विकास का क्रम आरम्भ हो गया। छोटे आकार की नौकाएं सिकंदर के अभियान में बहुतायत में प्रयुक्त हुई थी जिनकी सहायता से उसकी सेना ने नदियों पर पुल बनाया था।[93] परन्तु भारतीय इतिहास में भारतीय राजाओं द्वारा किसी भी प्रकार के पुल का अपने युद्ध अभियानों में प्रयोग करने का प्रसंग नहीं मिलता है। *रामायण* में सैन्य प्रयोजन से समुद्र पर सेतु बनाने का वर्णन अवश्य ही मिलता है परन्तु इसके अतिरिक्त किसी भी नदी पर पुल बनाने के प्रमाण नहीं मिलते हैं।[94]

सिकंदर की सैन्य व्यवस्था में नौसेना भी एक महत्वपूर्ण अंग थी। यद्यपि मौर्य सम्राज्य की अपनी नौसेना थी। यद्यपि कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में नौसेना का वर्णन नहीं किया गया है। मेगस्थनीज़ ने मौर्य साम्राज्य की सेना का वर्णन किया है तथा साथ ही नौसेना के अधिकारी के विषय में भी जानकारी उपलब्ध करवाई है। नन्द वंश के राजाओं के पास किसी भी प्रकार की नौसेना थी इसके साक्ष्य नहीं मिलते हैं, अतः यह प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय नौसेना का संगठन हुआ था जो संभवतः सिकंदर की नौसेना से प्रभावित होकर किया गया था।[95] मौर्य नौसेना ने किसी भी युद्ध में भाग नहीं लिया था। इसको केवल निगरानी रखने हेतु ही प्रयुक्त किया गया था।

4.2.8 सांस्कृतिक प्रभाव

सिकंदर का भारत पर आक्रमण, यद्यपि अल्पकालिक रहा, उसके दीर्घकालीन प्रभाव अत्यंत गहन रहे। सिकंदर के साम्राज्य के विघटन के बाद भी, ग्रीको-भारतीय संपर्क सेल्यूसिड और बैक्ट्रियन शासकों के माध्यम से दो शताब्दियों तक बना रहा। हालांकि, इतिहासकारों का मानना है कि सिकंदर के आक्रमण का सीधा प्रभाव भारतीय साहित्य में नगण्य था।[96] इसके बावजूद, अप्रत्यक्ष रूप से इसने भारत के राजनीतिक, कलात्मक और धार्मिक विकास पर गहरा प्रभाव डाला। यह उत्तरी भारत में आक्रमणों की एक श्रृंखला का प्रारंभ बिंदु बना, जिसने एक मिश्रित संस्कृति को जन्म दिया जिसमें हेलेनिक, फारसी और अन्य तत्व शामिल थे।भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शताब्दियों तक राजनीतिक अस्थिरता रही, और कई छोटी-छोटी रियासतें उभरीं और गिरीं। इतिहासकारों के अनुसार, सिकंदर के आक्रमण का स्थायी प्रभाव यवनों की बस्तियों की स्थापना और भारत तथा ग्रीस के बीच संचार का आरंभ होना था।[97]

भारत में सिकंदर के अभियान का अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया गया है। भारतीय समाज के अनेक अंग यवन आगमन से प्रभावित हुए थे। भारतीय जनमानस ने उनकी व्यवस्था से सकारात्मक पक्षों को लेकर अपनी सामाजिक व्यवस्था को लोकहित में शक्ति प्रदान की। परन्तु यह एक पक्षीय नहीं रहा है। यवनों ने भी भारतीय परंपरा तथा वस्तुओं को आत्मसात किया है। इस प्रकार एक साम्राज्य विस्तार की भावना में भी सामाजिक सम्मिलन की प्रवृति देखी जा सकती है। इसका सर्वाधिक उत्कृष्ट उदाहरण सूती वस्त्रों के रूप में दिया जा सकता है। भारत विश्व पटल पर सदैव ही सूती वस्त्रों का महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। इतिहासकार हेरोडोटस भी भारतीय सूती वस्त्रों से अत्यंत प्रभावित था तथा इस विषय में उनके लेख भी प्राप्त होते हैं।[98] सिकंदर की विजय के उपरांत मालवा के शासक तथा अन्य सहयोगियों ने भी सिकंदर को प्रचुर मात्रा में सूती वस्त्र भेटस्वरुप प्रदान किये थे।[99] इसके अतिरिक्त खेती के विषय में भी उन्नत ज्ञान यवन समाज को भारत देश से ही प्राप्त हुआ था। भारतीय ऋषि पाणिनि ने खेती, भूमि सर्वेक्षण आदि सामान्य जनमानस हेतु महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में विस्तृत जानकारी प्रदान की थी जो यवन जनमानस हेतु भी उपयोगी सिद्ध हुई थी।[100]

4.3 भारत पर बख्त्री यवन शासन का प्रभाव

ईरान तथा मकदूनिया के आक्रमण ने भारतदेश की राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया था तथा स्वयं भी भारतीय संस्कृति तथा परंपरा से प्रभावित हुए थे। इन दोनों आक्रमणों के पश्चात भारतीय तथा विदेशी समाज में वृहद् स्तर पर एक सांस्कृतिक सम्मिलन संपन्न हुआ। इस सम्मिलन के प्रभाव प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय जनजीवन में दृष्टिगत होता है। इन प्रभावों के अध्ययन हेतु कभी कभी साक्ष्य सम्पूर्ण निश्चितता के साथ प्राप्त नहीं होते हैं। ईरान तथा मकदूनिया के आक्रमण के पश्चात हुए हिन्द-यवन अथवा बख्त्री-यवनों ने भारत पर आक्रमण किया था। उनके आक्रमण द्वारा भारतीय समाज पर हुए विभिन्न प्रभावों तथा उसके फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आये परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से वर्णित किया जा सकता है। जी एन बनर्जी जी के अनुसार भारत में द्वितीय यवन विजय, सिकंदर की विजय से अधिक महत्वपूर्ण रही जिसने दोनों संस्कृतियों के मध्य सांस्कृतिक आदान प्रदान को आगामी दो शताब्दियों तक निर्बाध रूप से चलायमान रखा तथा भारतीय एवं यवन दोनों ही समाजों पर इसकी एक स्पष्ट छाप सरलतापूर्वक देखी जा सकती है।[101]

4. 3.1 उपराजा बनाने की परंपरा का प्रारम्भ

सेल्यूकस के शासन में उपराजा बनने की परंपरा दृष्टिगत नहीं है। अनुकूल समय आने पर राजा के साथ एक संयुक्त राजा बनाया जाता था। इसके प्रमाण सिक्कों से मिलते हैं जिनके अध्ययन के उपरांत टार्न ने बताया कि सिक्कों में बेबीलोन राज्य में संयुक्त राजा जिनकी संख्या 2 थी, होने के प्रमाण मिले हैं जिनमें उत्तराधिकारी पूर्व में गवर्नर के पद पर नियुक्त किया जाता था। यूथीडेमस ने एक पृथक व्यवस्था स्थापित की थी जिसके अनुसार युवा पुत्र राज्य के एक भाग पर उपराजा की भांति राज्य कर सकता है और उसे अपने सिक्के चलाने की भी अनुमति होगी। भविष्य में भारत पर शासन स्थापित करने में सफल होने वाले विदेशी पर्थियन शासकों ने उपराजा की इस प्रक्रिया को अपनाया था।[102]

4.3.2 धार्मिक सम्मिलन

सांस्कृतिक रूप से विश्व में सदैव ही अग्रणी रहे भारतीय समाज में धर्म का विशेष महत्त्व रहा है जो अनेक विदेशी आक्रमणों के पश्चात भी भली भांति पोषित होता रहा है। धार्मिक महत्त्व के विषय में यवन काल उदारवादी काल था। इसमें सामाजिक समरसता को महत्व दिया गया। यवन शासकों का भारतीय धर्म से प्रभावित होना सम्मिलन की विशाल श्रृंखला की एक कड़ी है, जो आगामी शताब्दियों में अन्य विदेशी शासकों के भारतीय धर्म एवं समाज से सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया के रूप में चलती रही। भारतीय परंपरा में बौद्ध धर्म इस सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसे सम्राट अशोक द्वारा अपनाया गया तथा विश्व में प्रसारित करने में उनकी भूमिका किसी प्रकार की लेखनी से परे है। बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में हिन्द-यवन राजाओं का योगदान भी अमूल्य रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा मुख्य रूप से पश्चिमोत्तर में मीनेण्डर की भूमिका बौद्ध धर्म के प्रसार के सम्बन्ध में अग्रणी रही है। मिलिंदपञ्ह में बौद्ध प्रचारक नागसेन तथा यवन शासक मीनेण्डर के मध्य हुए वार्तालाप का विवरण है। धार्मिक उद्देश्यों के अतिरिक्त मिलिंदपञ्ह उस काल के इतिहास एवं संस्कृति को भी बताता है, जो इसकी महत्ता में सांस्कृतिक दृष्टिकोण से वृद्धि करता है। मीनेण्डर ने साकल में अपनी राजधानी स्थापित की थी तथा सम्राट अशोक के उदारतापूर्ण कार्यों से प्रेरित होकर धर्म के कार्य भी किये थे।[103] प्राप्त अभिलेखों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मीनेण्डर ने जन सरोकार के कार्यों के साथ साथ न्याय व्यवस्था में भी अपनी अभूतपूर्व श्रद्धा प्रकट की थी।[104] बुटकरा स्तूप का निर्माण मौर्य काल में प्रारम्भ हुआ था। कालान्तर में मीनेण्डर ने भी बुटकरा स्तूप के निर्माण में योगदान दिया था जो वहां से प्राप्त मुद्राओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है।[105] मीनेण्डर को बौद्ध धर्म में विशेष सम्मान दिया गया था तथा उसे *"बौद्ध धर्म का रक्षक"* की उपाधि से भी सम्बोधित किया गया है।[106]

मिलिंदपञ्ह से मीनेण्डर द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने की सूचना प्राप्त होती है। प्राप्त विवरण के अनुसार वो न केवल बौद्ध भिक्षु बने थे वरन बौद्ध धर्म में सम्मानित अरहत भी बने थे। यद्यपि इस पर बहुत विवाद हैं परन्तु मीनेण्डर द्वारा बौद्ध धर्म में राजनीति से परे व्यक्तिगत रूप से निष्ठा व्यक्त की यह अवश्य ही सत्य प्रतीत होता है। बौद्ध धर्म में अपार श्रद्धा को दर्शाते हुए मीनेण्डर ने राज्य को भी त्याग दिया तथा अपने पुत्र को राज्य का भार समर्पित कर दिया था।[107] प्लूटार्क के अनुसार मीनेण्डर की मृत्यु के उपरांत अनेक नगरों द्वारा उसके शव की राख को उदारतापूर्वक मांगकर उसके अवशेषों पर स्मारक बनवाये गए थे।[108] अधिकांश बख्त्री-यवन शासकों को भारतीय समाज तथा धार्मिक विचारों में रुचि थी। बौद्ध ग्रंथों में मीनेण्डर को प्रमुख स्थान दिया गया तथा अन्य बख्त्री-यवन शासकों के विषय में प्रमुखता से नहीं लिखा गया था। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धार्मिक विषयों में विदेशी राजाओं ने भारतीय समाज में एक सकारात्मक प्रभाव स्थापित किया है तथा भारतीय धर्म की मौलिकता को भी यथावत रखते हुए पूर्ण सम्मान प्रदान किया गया था।[109] *यवन-जातक* भी इसी कथन को प्रस्तुत करता है कि धार्मिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य में यवन योगदान सकारात्मक तथा महत्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त हिन्दू धर्म ने भी यवन शासकों को प्रभावित किया था। प्रो के डी बाजपेई ने साक्ष्यों के माध्यम से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि अगाथोक्लीज हिन्दू देवी -देवताओं का अत्यधिक सम्मान करता था। उसके शासनकाल में ही श्रीकृष्ण को चक्र के साथ तथा उनके अग्रज बलराम को हल व मुसल के साथ प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया गया था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अगाथोक्लीज की कृष्ण भक्ति, पारम्परिक हिन्दू शासकों से भी अधिक थी। यह भारतीय धर्म की उत्कृष्टता को सफलतापूर्वक प्रदर्शित करता है। बौद्ध धर्म तथा हिन्दू धर्म की उत्कृष्टता केवल इसमें प्रदर्शित नहीं होती कि कुलीन तथा शासक वर्ग द्वारा इसे ग्रहण किया गया था, वरन इस तथ्य से भी होती है कि भारत में निवास करने वाले सामान्य यवनों ने भी विशाल संख्या में भारतीय धर्मों को आदरपूर्वक धारण किया।[110]

4.3.3 वर्ण व्यवस्था पर प्रभाव

विभिन्न यवन शासकों ने भारत भूमि पर दो शताब्दियों तक शासन किया था तथा इस क्रम में दोनों संस्कृतियाँ एक दुसरे के संपर्क में आयी तथा परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करता रहीं। यद्यपि इस सम्मिलन में धार्मिक आदान-प्रदान अत्यंत प्रमुख था परन्तु यह प्रभाव केवल धार्मिक ही नहीं वरन समाज के अन्य क्षेत्रों में भी हुआ था। सम्राट अशोक के शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि यवन भारत में हिन्द-यवन आक्रमणों से पूर्व भी निवास करते थे। बौद्ध ग्रन्थ *मज्झिम-निकाय* भी इसी कथन की पुष्टि करता है, ग्रन्थ के अनुसार पश्चिमोत्तर भारत की भूमि में यवन व कम्बोज एक साथ दो वर्ण निवास करते थे जैसे आर्य व दास, जबकि शेष भारत में चार वर्णी व्यवस्था मान्य थी।[111] पतंजलि कृत *महाभाष्य*[112] में यवनों व शकों को शूद्र के रूप में दर्शाया गया था, जबकि *मनुस्मृति*[113] ने उनका वर्णन पतित क्षत्रिय के रूप में किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भिन्न प्राचीन ग्रंथों में यवनों का वर्णन प्राप्त होता है। यवन शब्द प्रारम्भ में यूनानियों एवं बाद में सभी विदेशी जातियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अनेक बार यवनों के प्रभाव को नकारात्मक रूप दर्शाया गया है। *महाभाष्य* तथा *मनुसंहिता* में जिन यवनों का वर्णन हुआ है वो बैक्ट्रिया तथा अफगानिस्तान के क्षेत्रों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवास करते थे जो द्वितीय शताब्दी में भारत आये थे। यवनों ने धीरे धीरे अपने नाम, धर्म, परंपरा सभी कुछ भारतीयों के सामान ही धारण कर लिया था तथा भारतीय हृदय की विशालता में समाहित होकर स्वयं भी भारतीय जैसे हो गए थे परन्तु साथ ही अपने देश की कतिपय परम्पराओं को भी उन्होंने भारत में स्थापित कर दिया था।

4.3.4 भारतीय मुद्राओं पर हिन्द -यवन सम्मिलन का प्रभाव

यदि भारतीय किसी क्षेत्र में यवनों से सर्वाधिक प्रभावित हुए थे तो वह यवनों द्वारा प्रचलित मुद्रायें ही थी। यवनों की मुद्रायें विश्व इतिहास में सम्मानजक स्थान रखती है तथा इतिहास की अनेक जानकारियों का प्राथमिक स्रोत है। मुद्राओं के क्षेत्र में भारतीय मुद्रायें, मुख्यतः बख्त्री यवन शासकों द्वारा प्रचलित मुद्राओं से अधिक प्रभावित है। भारतीय मुद्राओं का अध्ययन इस कथन की पुष्टि करता है। प्रारम्भ में भारतीय मुद्रा निर्माण उच्च कोटि का नहीं था। वह बेडौल मुद्रायें निर्मित करते थे। परन्तु हिन्द-यवन शासकों के संपर्क में आने के उपरांत भारतीयों की मुद्रा निर्माण तकनीकी का विकास हुआ तथा मुद्राओं की गुणवत्ता में वृद्धि हुई (चित्र-12)। भारतीय मुद्राओं पर उत्कीर्ण लेख में, यूनानी के साथ साथ खरोष्ठी लिपि का भी व्यापक प्रयोग हुआ था जो इस तथ्य का द्योतक है कि गांधार क्षेत्र के सामान्य जनमानस में प्रचलित महत्वपूर्ण भाषा खरोष्ठी थी न कि यूनानी।[114] डिमिट्रियस प्रथम शासक था जो बैक्ट्रिया तथा भारत (गांधार) दोनों ही देशों का सम्राट बना था तथा उसके द्वारा प्रचलित करवायी गयी मुद्राओं में वर्गाकार ताम्र मुद्रायें प्रथम थी जिनमें यूनानी व खरोष्टी दोनों प्रकार की लिपियों में लेख अंकित थे। मुद्राओं पर यूनानी के अतिरिक्त प्राकृत भाषा खरोष्ठी लिपि में लेखबद्ध पायी जाती है जो डिमिट्रियस के शासनकाल की थी। डिमिट्रियस द्वितीय ने भी उसी प्रकार की मुद्राओं के निर्माण में अपना योगदान दिया था।[115] डिमिट्रियस द्वारा प्रचलित मुद्रायें ईरान में निर्मित हुई थी, वहां से भारत लायी गयी थी तथा भारत में उनका प्रचलन सिंधु के पश्चिम तक ही सीमित था। कालान्तर में अनेक हिन्द यवन शासकों ने अत्यधिक आकर्षक मुद्रायें प्रचिलत करवाई थी जो समय समय पर उत्खनन के माध्यम से प्राप्त होती है। यवन राजाओं द्वारा मुख्य रूप से रजत व ताम्र मुद्राओं का प्रचलन करवाया गया था परन्तु स्वर्ण मुद्रायें अपेक्षाकृत कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रा में ही चलवाई गई। डी. सी. सरकार के अनुसार हिन्द-यवन शासक यूक्रेटाइड्स ने अपनी मुद्राओं पर *''महान राजा''* की उपाधि उत्कीर्ण करवाई थी जिसे विद्वान् ईरानी प्रथा में मुद्राओं पर प्रचलित उपाधि से प्रभावित बताते हैं। अपने शासन के उत्तरकाल में यूक्रेटाइड्स द्वारा प्रचलित मुद्राओं पर भारतीय शब्द *''महाराजा ''* का अंकन कराया गया था जो मूलतः भारतीय शासकों द्वारा प्रयुक्त किया जाता था। यूक्रेटाइड्स द्वारा प्रचलित मुद्राओं में यूनानी पद्धति की मुद्रायें तथा साथ ही द्विभाषीय भारतीय मुद्रायें भी थी जो मुख्यतः रजत व ताम्र धातुओं द्वारा निर्मित थे।[116] यवन काल की मुद्राओं का विशेष महत्त्व है तथा उनकी उत्कृष्टता ने उनके शासन के समाप्त होने के उपरांत भी शताब्दियों तक भारतीय मुद्रा निर्माण की विधि को प्रभावित किया था इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण गुप्त काल की मुद्राओं के माध्यम से मिलता है। कुमारगुप्त की मुद्राओं पर एक तरफ यवन अक्षर अंकित है जो यवन-भारत सम्मिलन को बताता है।[117]

अगाथोक्लीज की मुद्राओं में सम्मिलन का प्रभाव दिखाई देता है। उसकी मुद्राओं में एक महिला की आकृति का अंकन हैं जिसके दाये हाथ में फूल है। यह आकृति यक्षिणी अश्वमुखी की है। इस मुद्राओं पर राजन अगाथोक्लीज अंकित है। अगाथोक्लीज की अन्य मुद्रा में बौद्ध स्तूप का अंकन भी हुआ है।[118] मुद्राओं के व्यापक अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ईसापूर्व 250 से ईसापूर्व 25 तक 38 यवन राजाओं तथा 2 यवन रानियों ने भारत तथा बैक्ट्रिया पर शासन किया था जिनके नाम यूनानी थे, यद्यपि अनेक शासकों के नाम व अन्य जानकारियां इतिहासकारों को उपलब्ध नहीं हो पायी है।[119] यवन काल की मुद्रायें ही एकमात्र माध्यम हैं जो वर्तमान काल में भी संरक्षित रूप में प्राप्त होती रही है। बैक्ट्रिया में निकेल धातु द्वारा निर्मित मुद्रायें उत्खनन से प्राप्त हुई जो ईसापूर्व 200 में निर्मित हुई थी, जबकि यह धातु यूरोप में 18 वीं शताब्दी में खोजी गयी थी, इससे यवन शासनकाल में उत्पन्न तकनीकी ज्ञान की महत्ता का पता चलता है।[120]

सिकंदर की ही भांति हिन्द-यवन राजाओं ने भी भारतीय क्षेत्र में नगरों की स्थापना की थी। डिमिट्रियस द्वारा एक भारतीय नगर की स्थापना का उल्लेख मिलता है जिसे उसने अपनी राजधानी के रूप में भी विकसित किया था। मेनाण्डर ने भी अपनी पूर्व की राजधानी को परिवर्तित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय नगर सागल को अपनी राजधानी बनाया। हिन्द यवन काल की वास्तुकला तथा मूर्ति कला, पूर्व व पश्चिम में प्रचलित कलाओं का संगम थी तथा दोनों का ही श्रेष्ठ उसे इसी काल में प्राप्त हुआ था तथा कालान्तर में यही गांधार कला हेतु प्रेरणा स्रोत बनी थी।

4. 4 भारत पर पह्लव प्रभाव की समीक्षा

योद्धा जाति पह्लव ने फारस तथा भारत दोनों ही स्थानों पर अपना सुदृढ साम्राज्य स्थापित किया था। दोनों ही स्थानों पर उनका समुचित प्रभाव दिखाई देता है।

4. 4.1 धर्म पर पह्लव प्रभाव

भारत सदैव से ही धर्म प्रधान देश रहा है। धार्मिक विश्वासों व रीति -रिवाज की उत्पत्ति प्रत्यक्ष रूप में वैदिक काल से प्रारम्भ होती है। परन्तु भारतीय धर्मों तथा परम्पराओं का विधिवत अध्ययन करने पर यह स्पष्ट -होता है कि भारतीय संस्कृति पर वैदिक प्रभाव के अतिरिक्त विदेशी संस्कृतियों का भी प्रभाव है। उदाहरणतः विद्वानों का मत है कि मसीह एवं मैत्रेय की पदवी भारत में ईरानी संपर्क का परिणाम है।[121]

इसके अतिरिक्त मिहिर जो एक सौर देवता थे उनकी उत्पत्ति भी ईरानी मूल की मानी जाती है। संस्कृत में मिहिर को मित्र/मिथ्र के नाम से सम्बोधित किया गया जिसका अर्थ सूर्य से था। यद्यपि वेदों में भी सूर्य देव का उल्लेख मिलता है परन्तु भारत में पहलवों के आगमन के पश्चात यह देवता मिथ्र के रूप में प्रमुखता के साथ दृष्टिगत हुए थे।[122]

4. 4.2 भारतीय शासन व्यवस्था पर पहलव प्रभाव

पह्लव सम्राटों द्वारा ग्रहण की गई उपाधियों में भारतीय शासकों द्वारा प्रयुक्त हुई उपाधियों का अत्यंत गहन प्रभाव दृष्टिगत है। इस कथन की पुष्टि उनके द्वारा प्रयुक्त मुद्राओं से भी होती है। वैदिक भारतीय राजाओं द्वारा उपयोग किये जाने वाली उपाधियाँ उदाहरणतः *राजन, एकराट, विराट, सम्राट, चक्रवर्ती* आदि पहलव सम्राटों द्वारा भी उपयोग में लायी गयी थी। इसी प्रकार प्राकृत भाषा में प्रयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई राजा तथा महाराजा आदि उपाधियों को भी पहलवों द्वारा प्रयोग में लाया गया था। वोनोनीज तथा उसके वंशजों द्वारा *राजाधिराज, राजराज* आदि उपाधियों के प्रयुक्त किये जाने के साक्ष्य मिलते हैं।[123] इसके अतिरिक्त अन्य उपाधियाँ भी पह्लव शासकों द्वारा प्रयुक्त की गयी थी जिसके साक्ष्य उनकी रजत मुद्राओं से प्राप्त होते हैं, उदाहरणतः - स्पेलिरिसेसे हेतु *महाराज भ्राता* इत्यादि जो की भारतीय शासकों द्वारा प्रयोग में लायी गयी थी।[124]

4. 4. 3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

व्यापारिक दृष्टिकोण से भारतीय व पहलवों के मध्य सम्बन्ध घनिष्ठ थे। पेरिप्लस से प्राप्त साक्ष्यों के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है कि प्रथम शताब्दी में सिंधु नदी के डेल्टा पर पहलवों का शासन था तथा भारतीय व मेसापोटामिया के पहलवों से प्रगाढ़ व्यापारिक सम्बन्ध थे। तांबा, चन्दन, सांगवान, ब्लैकवुड तथा आबनूस का आदान प्रदान बेरीगाज़ा से अपोलॉगस तक होता था।[125]

पहलव तथा शक दोनों ही सभ्यतायें भारतीय सभ्यता की अपेक्षा कम विकसित थी तथा दोनों ही जातियों के शासकों ने भारतवर्ष की सभ्यता तथा संस्कृति से कई तत्व अपनाये थे। तत्कालीन भारतीय समाज के अध्ययन से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि पहलवों के भारतवर्ष में सम्मिलन के क्रम में उनका भारतीय समाज पर पड़ा प्रभाव अत्यंत ही कम रहा था तथा पहलव स्वयं भारतीय सभ्यता से अधिक प्रभावित हुए थे।

4. 5 शकों का भारत पर प्रभाव

शकों की मुख्य शाखा का भारतवर्ष पर शासन एक शताब्दी तक था परन्तु उसकी गौण शाखाओं द्वारा तीन शताब्दियों तक भारत में शासन किया गया। इस काल में शकों ने भारतीय सभ्यता को प्रभावित किया तथा स्वयं भी उससे प्रभावित हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 5.1 भारतीय शासन व्यवस्था और शक

भारतीय शासन में शकों द्वारा मुख्य प्रभाव उनके शासनकाल का स्थायित्व रहा था, जिसका प्रभाव उनके पश्चात् भारत में राज्य स्थापित करने वाले गुप्त शासन में भी दृष्टिगोचर होता है।[126] शकों ने समकालीन महत्वपूर्ण राजवंशो जैसे सातवाहनों, यौधेयों आदि को पराजित कर भारतवर्ष के विशाल क्षेत्र पर अपना शासन स्थापित किया तथा भारतभूमि पर एक सशक्त स्थाई साम्राज्य की नींव रखी।[127] शक शासकों ने आभीरों को भी अपनी सेना में स्थान दिया था। गुंड अभिलेख से ज्ञात होता है कि शक क्षत्रप रूद्रसिम्हा प्रथम ने आभीर रुद्रभूति को सेनापति बनाया था।[128]सातवाहनों को शकों ने दो अवसरों पर पराजित किया परन्तु शक शासक रुद्रदामन द्वारा उन्हें कुछ क्षेत्रों में शासन के अधिकार की स्वीकृति देकर अपनी राजनीतिक बुद्धिमत्ता को प्रदर्शित किया गया।[129] समुद्रगुप्त ने भी इसी उदारता का अनुसरण किया जिसके साक्ष्य उसकी दिग्विजय की यात्राओं में प्रदर्शित होते हैं, जब उसने अपना अभियान दक्षिण भारत की ओर प्रारम्भ किया।[130]

शासन व्यवस्था में व्यापक सुधार हेतु शक शासकों ने ईरान से अनुभवी अधिकारियों को अपने गवर्नर के रूप में नियुक्त किया। सुविशाख इसका प्रमुख उदाहरण है जिसका उल्लेख जूनागढ़ अभिलेख से प्राप्त होता है।[131] शकों के पश्चिमोत्तर भारत पर आक्रमण के समय भारत में क्षत्रप व्यवस्था थी जो कि हखामनी शासकों द्वारा भारत की शासन व्यवस्था में प्रचलित की गयी थी।[132] क्षत्रप व्यवस्था में क्षत्रप महाक्षत्रप के अधीन शासक होते थे जिन्हें शासन करने की शक्ति महाक्षत्रप द्वारा प्रदान की जाती थी। क्षत्रपों को प्राप्त शासन की शक्तियों की सीमा भिन्न भिन्न क्षत्रपों हेतु भिन्न भिन्न थी। यहाँ तक की कुछ क्षत्रपों को इतनी अधिक स्वायत्ता प्रदान की गयी थी कि इन्होनें अपने नाम की मुद्रायें भी ढलवायी थी। तक्षशिला के निकट चुकसा क्षेत्र के क्षत्रप जिओनिसेस का उदाहरण भी इसी प्रकार का है।[133] क्षत्रप व्यवस्था के अध्ययन से यह भी प्रतीत होता है कि महाक्षत्रप चष्टन से प्रारम्भ कर महाक्षत्रप दमयसद तक सिंहासन अग्रज भ्राताओं से अनुज को स्थानांतरित होता था तथा ऐसे प्रमाण भी प्राप्त होते हैं कि अनुज भ्राता के उपरांत राज्य का कार्यभार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्रज भ्राता के ज्येष्ठ पुत्र को प्रदान किया जाता था। क्षत्रपों को राज्यभार का दायित्व महाक्षत्रप के जीवन के अंतिम वर्षों में दिया जाता था।[134]

गिरनार अभिलेख से ज्ञात होता है कि शक शासन में राजकोष में मुख्य रूप से तीन प्रकार से धन अर्जित होता था- राजस्व, शुल्क तथा राजा का एक निश्चित हिस्सा जो सोने, चाँदी तथा अन्य कीमती जवाहरातों के रूप में प्राप्त होता था।[135] शक शासन में राजकोष के धन को किस प्रकार व्यय किया गया था, इसका उल्लेख उनके द्वारा निर्मित शिलालेखों से प्राप्त होता है। जिनमें एक महत्वपूर्ण व्यय पीने योग्य जल के विषय में भी प्राप्त होता है। जूनागढ़ शिलालेख में वर्णित है कि किस प्रकार शक राजाओं तथा उनके अमात्यों द्वारा राजकोष के एक विशाल भाग का व्यय सुदर्शन झील के पुनरुद्धार हेतु किया गया था।[136] नासिक अभिलेख में यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार शक शासकों ने जनता की भलाई हेतु अनेक कार्य किये थे, जिनमें से एक नदियों को पार करने को कर मुक्त करना था।[137] शासकों द्वारा शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने हेतु अनेक मंत्रियों को नियुक्त किया गया था। उदारवादी नीति का पालन करते हुए यह मंत्री शक मूल के अतिरिक्त भारतीय तथा विदेशी समुदाय से भी लिए गए थे।[138] शक अभिलेखों में मतिसचिव तथा कर्मसचिव आदि मंत्रिपदों का उल्लेख भी शासन व्यवस्था के सन्दर्भ में प्राप्त होता है।[139]

4. 5.2 शक काल में संस्कृत भाषा का उत्कर्ष

पश्चिमी क्षत्रपों ने सर्वप्रथम संस्कृत भाषा को अपने लेखों की भाषा के रूप में अपनाया। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख इसका सुंदर उदाहरण है। यह मूलतः गद्य में लिखा गया है, परन्तु सरल महाकाव्य शैली से लेकर उच्च गद्य की अलंकृत कविता तक के विकास को दर्शाता है।[140] यह अभिलेख शक शासन काल में संस्कृत के विस्तार एवं विस्तृत संस्कृत साहित्य के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। रुद्रदामन के पश्चात् भी शक शासकों के शिलालेखों में संस्कृत का प्रयोग चलता रहा। उदाहरण के रूप में गुजरात के देवनी मोरी में पाए गये धातु पेटी के शिलालेख को उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें उत्कीर्ण भाषा संस्कृत है तथा साथ ही इसमें प्राकृत का पुट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पाया गया है।[141] रुद्रदामन के पुत्र दमयसद/दमघसद प्रथम द्वारा जो सिक्के चलाये गये उनमें प्राप्त लेख भी संस्कृत में है जो कालान्तर में शक क्षत्रप सत्यदामन द्वारा भी प्रयोग में लाये गए।[142]

4. 5.3 भारतीय नाट्यकला पर शक प्रभाव

सिल्वां लेवी के अनुसार संस्कृत नाटक के उदय का श्रेय उज्जैन के शकों को दिया जाता है। नाटक में प्रयुक्त शब्द जैसे *स्वामिन, भद्रमुख, राष्ट्रीय* क्षत्रपों की राज्यसभा में सम्मानसूचक रूप में प्रयुक्त होते थे।[143] यद्यपि यह शब्द प्राचीनकाल से ही भारतीय शब्दकोष में थे परन्तु शकों के काल में नाटक में इनका उपयोग होने लगा जिसका उदाहरण हमें कालिदास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता में भी मिलता है। विद्वान कोनो भी लेवी के इस विचार से सहमत है कि संस्कृत नाटक का चरमोत्कर्ष शकों के काल में हुआ परन्तु उनके अनुसार इसका उदय उज्जैन में नहीं अपितु मथुरा था। नाट्यशास्त्र में सम्बोधन हेतु किसी व्यक्ति को उसके जन्म या उसके द्वारा अपनाये गए व्यवसाय, कला या शिक्षा के लिए उपयुक्त शब्द से सम्बोधित किया गया है जो कालान्तर में नाटकों हेतु एक परंपरा के रूप में विकसित हुई।*स्वप्नवासवदत्ता* में उदयन को *स्वामिन* कहकर सम्बोधित किया गया है।[144] अभिलेखों के अनुसार *स्वामिन्* शब्द को नाट्यशास्त्र से लिया गया है, जहाँ युवराज के लिए स्वामिन तथा अन्य राजकुमारों को *भद्रमुख* कहकर सम्बोधित किया है। अधीनस्थों द्वारा राजा को सामान्यतः *देव* या *भट्ट* कह कर सम्बोधित किया जाता था।[145]

4. 5.4 जैन साहित्य का संकलन

शक काल में तीसरी शताब्दी में जैन संगीति मथुरा में आयोजित हुई। इस संगीति के सभापति आचार्य स्कन्दिल थे तथा संकलित कार्य माथुरी वचन अथवा स्कन्दिली वचन के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ।[146] मथुरा में संपन्न हुई संगीति के समय आचार्य नागार्जुन ने वल्लभी में एक दूसरी जैन सभा आयोजित की थी जिसमें आगम साहित्य को लिखने का निश्चय किया गया था, इस प्रकार वल्लभी वचन अथवा नागार्जुन वचन निर्मित हुए थे।[147] इन दोनों सभाओं के लगभग 150 वर्षों के उपरांत दोनों ही विचार केंद्रों का सम्मिलन देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा किया गया।[148] इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त सभा में श्वेताम्बर जैन के एक प्रामाणिक ग्रन्थ में मथुरा में संकलित साहित्य को प्रमुख साहित्य माना गया तथा साथ ही वल्लभी में संकलित साहित्य को भी सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया। जिन तथ्यों पर भी दोनों शाखाओं में विवाद था उन्हें ग्रन्थ से हटा दिया गया।[149] इस ग्रन्थ पर मूलभूत कार्य शक काल में ही सम्पादित हुआ है। *अंगविद्या* एक महत्वपूर्ण जैन साहित्य है जो इस काल में लिखा गया था। इस साहित्य में एक स्थान पर खत्पक शब्द का उपयोग हुआ है जिसका अर्थ क्षत्रप है तथा अन्य स्थानों पर क्षत्रप मुद्राओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु इसमें किसी भी स्थान पर गुप्त काल में प्रयुक्त हुई रजत मुद्राओं का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रन्थ की रचना शक क्षत्रपों के समय में गुजरात क्षेत्र में हुई थी।[150] इस ग्रन्थ के संकलन में शकों का कोई भी प्रत्यक्ष योगदान नहीं है परन्तु यह कहना उचित होगा कि शक शासनकाल में एक शांति व सौहार्दपूर्ण वातावरण था जिस कारण ही इस प्रकार के महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना संभव हो सकी थी। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि शक शासनकाल में जैन धर्म को पर्याप्त आश्रय व प्रोत्साहन मिला था।

4. 5.5 शक काल में शिक्षा

शक काल में शिक्षा व्यवस्था को जूनागढ़ शिलालेख[151] के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। इस शिलालेख में शिक्षा को निम्नलिखित चार चरणों में प्रस्तुत किया गया है-

1- पारण- शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करना

2- धारण- याद रखना

3- विज्ञान- विशेष ज्ञान

4- प्रयोगवास- प्राप्त शिक्षा का अभ्यास

जूनागढ़ शिलालेख के अनुसार इस काल में व्याकरण, राजनीति, अर्थविद्या, गन्धर्वविद्या. संगीत, तार्किक न्याय विद्या आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[152] समाज के कतिपय वर्गों मुख्यतः उच्च वर्ग द्वारा संस्कृत भाषा (शुद्ध अथवा प्राकृत मिश्रित) सामान्य वार्तालाप हेतु प्रयुक्त होती थी। शक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजदरबार की भाषा प्राकृत मिश्र संस्कृत थी परन्तु सामान्य जन की भाषा संस्कृत नहीं थी। शक शासनकाल में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी दोनों ही लिपियों के उपयोग की जानकारी मिलती है, परन्तु शक शासनकाल के उत्तरार्ध में केवल ब्राह्मी लिपि के उपयोग के ही प्रमाण मिलते हैं। शक काल में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि अशोक काल में प्रयुक्त हुई लिपि से भिन्न थी अतः शक काल में प्रयुक्त लिपि को क्षत्रप कालीन लिपि के नाम से सम्बोधित किया जाता है।[153]

4. 5.6 भारतीय खगोलशास्त्र तथा ज्योतिष पर प्रभाव

भारत देश प्राचीनकाल से ही खगोलशास्त्र के विषय में अग्रणी रहा है।[154] खगोलशास्त्र तथा ज्योतिष की सर्वाधिक उन्नति उज्जैन में शक शासनकाल के समय में हुई थी। पश्चिमी क्षत्रप शासकों की राजधानी उज्जैन में खगोलशास्त्र का उदय यूनानी खगोलशास्त्र से प्रभावित होकर ही प्रारम्भ हुआ था। शक क्षत्रप रुद्रदामन के समय यवन विद्वान ने *यवनजातक* का अनुवाद यवन भाषा से संस्कृत में किया था, जिससे निसंदेह ही इस ग्रन्थ की पहुंच अधिक लोगों तक हो गयी।[155] इसी काल में उज्जैन से निकलने वाली देशांतर रेखा को प्रामाणिक रेखा के रूप में भी अपनाया गया था जो भारतीय समय की गणना में तथा खगोलशास्त्र के अध्ययन हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण थी।[156] शक क्षत्रपों द्वारा प्रयुक्त शक सम्वत खगोशास्त्रीय तथा ज्योतिषीय गणना हेतु आधार के रूप में लिया गया। कुछ विद्वान भारतीय ज्योतिष में विदेशी प्रभाव को स्वीकार करते हैं, मुख्यतः उनके अनुसार *सिद्धांत-पंचक* विदेशी प्रभाव से आच्छादित है। वाराहमिहिर कृत *पंच सिद्धांतिका* के रोमक तथा पौलिश सिद्धांत में विदेशी प्रभाव देखने को मिलता है।[157] पितामह सिद्धांत की गणितीय प्रणाली के अध्ययन से यह प्रतीत होता है की वाराहमिहिर ने इस ग्रन्थ की रचना शक शासन काल में ही की थी। एक अन्य सिद्धांत अहर्गण को भी शक सम्वत 427 से आरम्भ किया गया था।[158] ब्रह्मगुप्त के समय में वशिष्ठ तथा रोमक सिद्धांत अस्तित्व में थे जिनका काल शक सम्वत 550 माना जाता है। रोमक सिद्धांत के दो प्रकार थे- मूल रोमक तथा श्रीसेनाकृत परन्तु *पंच सिद्धान्तिका* काल में केवल मूल रोमक ही प्रचलित था।[159] *रोमक सिद्धान्तिका* में एक वर्ष यूनानी ज्योतिष में हिपार्कस द्वारा बताये गए एक वर्ष के ही समान था जो कि 365 दिन, 14 घड़ी तथा 48 पल था। हिपार्कस की मूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचना यद्यपि उपलब्ध नहीं है परन्तु पश्चिम के ज्योतिषियों के अनुसार जिस प्रकार हिपार्कस ने सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार अपनी गणना संपन्न की थी उसी प्रकार रोमक सिद्धांत में भी वाराहमिहिर ने अपनी गणनाओं हेतु सूर्य तथा चन्द्रमा की स्थिति का उपयोग किया था।[160] पश्चिमी प्रभाव की सर्वाधिक स्पष्ट व्याख्या सिद्धांतों के नाम से भी होती है उदाहरणतः रोमक नाम भारतीय न होकर पश्चिम से प्रभावित है। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मूल रोमक सिद्धांत का समयकाल हिपार्कस के बाद (ईसापूर्व 150) तथा टॉल्मी के पूर्व का (ईस्वी सन 150) था।[161] इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं की शक शासनकालीन भारत में यूनान एवं रोम का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। भारतीय ज्योतिष परंपरा में शक काल अत्यंत महत्वपूर्ण है। शक क्षत्रपों द्वारा निसंदेह ही इस विद्या हेतु एक अनुकूल वातावरण तत्कालीन विद्वानों को प्रदान किया गया था जिसने उनकी सफलता को सुनिश्चित किया था।

4. 5.7 शक काल में मूर्तिकला तथा चित्रकला

भारत में शक शासनकाल के समय की मूर्ति कला में भारतीय प्रभाव के अतिरिक्त शक प्रभाव भी विस्तृत रूप से मिलता है। यूनानी प्रभाव युक्त गांधार कला जो कुषाण शासन में अपनी श्रेष्ठता को पहुंची थी, उसमें शक शासनकाल में हुए कार्यों का योगदान रहा है।[162] गांधार कला में पहलव कला का प्रभाव भी दिखता है जो शकों का पहलवों के संपर्क में आने का परिणाम है। इस प्रकार यवन तथा पहलवों के योगदान के पश्चात गांधार कला को उन्नत करने में शकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।[163] मथुरा के माटा से ईस्वी सन 1912 में प्राप्त हुई चष्टन की मूर्ति, जो सिरविहीन है परन्तु उसकी शारीरिक बनावट उच्च्च कोटि की है।(चित्र-13) उसके वस्त्र राजा के वस्त्रों से समानता रखते हैं तथा अत्यंत उच्च्च गुणवत्ता के है जो शक शासनकाल में भारतीय मूर्तिकला के उत्कृष्ट स्तर को दर्शाता है।[164] शकों ने भारतभूमि के उत्तरी क्षेत्र पर अपना शासन स्थापित किया था तथा सैकड़ों वर्षों तक अपने शासन को सुदृढ़ता से स्थापित रखा। अनेक वर्षों के सम्मिलन के उपरांत यह अवश्यसंभावी हो जाता है की शक भारतवर्ष में लोकप्रिय देवी- देवताओं से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे। इस कथन की पुष्टि शकों द्वारा प्रचलित मुद्राओं से हो जाती है, भारतीय शक शासकों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासनकाल की रजत तथा ताम्र मुद्राओं के पृष्ठ भाग में देवियों का अंकन मिलता है।[165] क्षत्रप काल के समय देवी- देवताओं के चित्रण में महती वृद्धि हुई थी। राजकोट के ढांक ग्राम से इस प्रकार की अनेक मूर्तियां प्राप्त हुयी है जो निसंदेह ही देवी- देवताओं से सम्बंधित है। राजकोट से प्राप्त हुयी मूर्तियों में जैन तीर्थंकर आदिनाथ, ऋषभनाथ, शांतिनाथ, परशुनाथ तथा महावीर की मूर्तियां मुख्य रूप से है।[166] परन्तु जूनागढ़ के उपरकोट किले से सामान्य मनुष्यों के अंकन वाली मूर्तियां ही प्राप्त हुयी है।[167] उत्कृष्ट गुणवत्ता की चिकनी मिट्टी द्वारा निर्मित बुद्ध की मूर्ति देवनी मोरी से प्राप्त हुई है जो शक शासनकाल में मूर्तिकला की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।[168] इस काल की मूर्तिकला में हिन्दू धर्म से सम्बंधित भाव दृष्टिगत होता है। कच्छ के दौलतपुर से एक मानव की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। यद्यपि कुछ विद्वान् इस मूर्ति को सूर्य देव की मूर्ति मानते हैं तथा उनके अनुसार इस मूर्ति का निर्माण संभवतः द्वितीय शताब्दी में हुआ था।[169]

4. 5.8 स्थापत्य कला का विकास

भारतीय जनमानस के मस्तिष्क में धर्म की जो परिकल्पना थी वो प्रतिमा के रूप में मूर्त रूप में प्रकट हुई। शक काल में गुफाओं पर देव प्रतिमा की कला का विकास हुआ। नासिक[170] व कार्ले[171] इत्यादि स्थानों के अवलोकन से स्पष्ट रूप में ज्ञात होता है कि शकों ने इस कला के विकास में समुचित योगदान दिया था। शक काल के अनेक अभिलेख इन गुफाओं में उत्कीर्ण हुए है जो इस तथ्य का द्योतक है की शकों की इस कला में अत्यंत रुचि थी। शक क्षत्रप काल की गुहा कलाकृतियां भारत में अनेक स्थानों से प्राप्त हुयी हैं।[172] इनमें नहपान के समय की नासिक तथा कार्ले की गुफाएं प्रसिद्ध हैं। गुजरात में भी अनेक प्रसिद्ध गुफाएं पायी गई है जो निम्न हैं -

1- जूनागढ़ की बावा प्यारा गुफा जो बौद्ध तथा जैन धर्म से सम्बंधित है [173]

2- बेल तथा पत्तियों की कलाकृतियों से युक्त उपरकोट की गुफाएं[174]

3- तलाजा की गुफाएं [175]

4- पक्की ईंटों से निर्मित जूनागढ की साना गुफा[176]

5- राजकोट की ढांक की गुफाएं [177]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6- राजकोट की झिंझुरिझार बौद्ध गुफाएं[178]

इस गुफाओं के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि क्षत्रप काल तक भारत में पत्थरों की कटाई की तकनीक ने अत्यंत उच्च कोटि को प्राप्त कर लिया था। विद्वानों का मत है कि शक काल की इस कला का प्रभाव गुप्त काल में भी दृष्टिगोचर है। भाजा, बेडसे, कार्ला, जूनार, कोंडने, महाकाली, कन्हेरी, नासिक, पीतलखोरा, अजंता, सोपारा इत्यादि अनेक स्थानों पर शक शासकों द्वारा गुहा निर्माण किया गया। इससे शक शासकों का बौद्ध धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण के विषय में ज्ञात होता है तथा यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि शक काल में यह कला अपनी उन्नति के शिखर को प्राप्त हुयी थी।[179]

4. 5.9 शकों द्वारा भारतीय धर्म का आत्मसातीकरण

शक शासनकाल में धर्म की स्थिति तथा धार्मिक मान्यताओं के विषय में जानकारी उनके शिलालेखों, मुद्राओं, शासकों के नामों, स्तूपों, विहारों, गुफाओं तथा धार्मिक ग्रंथों इत्यादि अनेक माध्यमों से प्राप्त होती है। भारत आने से पूर्व शकों के धर्म का वास्तविक स्वरुप क्या था? उनकी मान्यताऐं सहिष्णु थी या नहीं? अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उस समय शक किसी भी प्रकार के धर्म में विश्वास रखते थे तो भी उन्होंने भारत में अपने निवास के समय भारतीय धर्मों के विविध तत्वों के प्रति उदारता का व्यवहार किया और उन्हें अपनाया।[180] शक क्षत्रपों द्वारा प्रचलित मुद्राओं पर तीर तथा चक्र का अंकन हुआ है[181] जिसमें चक्र बौद्ध धर्म, जैन धर्म तथा वैष्णव धर्म से सम्बंधित प्रतीक हैं। उषावदात के नासिक शिलालेख में यह वर्णित है की बौद्ध संघ को उनके शासनकाल में दान प्रदान किया गया था। जो इसका द्योतक भी हो सकता है की उषावदात बौद्ध धर्म का सम्मान करता था।[182] ब्राह्मण समुदाय को अर्पित दान उनके ब्राह्मण धर्म के प्रति आदर को स्पष्ट करता है। उषावदात के नासिक शिलालेख से यह ज्ञात होता है की नहपान की रुचि ब्राह्मण धर्म के प्रति थी। उसने ब्राह्मणों को गाय, सोलह गांव आय हेतु दान किये थे इसके अतिरिक्त शासन द्वारा लाखों ब्राह्मणों को भोजन तथा अन्य उपहार भी प्रदान किये गए थे। इसके अतिरिक्त उसने बारामासा नदी के तट पर घाटों का निर्माण भी करवाया था तथा दासपुरा, गोवर्धन, भरुच, सुर्पारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के किनारे विश्राम गृह का निर्माण भी उन्हीं के शासनकाल में हुआ था।[183] इबा, पारदा, दमन, तापी, धानुका इत्यादि नदियों में यात्रा हेतु शुल्कहीन नौका की व्यवस्था भी शासन द्वारा की गयी थी।[184] इस प्रकार यह स्पष्ट होता है की शक साम्राज्य में वैष्णव धर्म को अपार प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। उषावदात ने इसके अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं को गुफाएं भी प्रदान की थी अतः यह कहना अधिक उचित होगा कि उषावदात बौद्ध तथा वैष्णव दोनों ही धर्मों से प्रभावित था तथा उसने उन्हें संरक्षण प्रदान किया था।[185] रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख भी उसकी ब्राह्मण धर्म में निष्ठा को प्रदर्शित करता है।[186] इस प्रकार हम यह आकलन कर सकते हैं कि शक शासकों ने सभी भारतीय धर्मों को अपने शासनकाल में महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया था तथा उनकी उन्नति हेतु भी सहायता प्रदान की थी।

पुरालेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है की मथुरा तथा तक्षशिला के क्षत्रप बौद्ध धर्म के प्रति निष्ठावान थे।[187] रायचौधरी जी का मत यद्यपि इससे भिन्न है तथा उनके अनुसार उत्तर भारत के शक शासक सामान्यतः वासुदेव धर्म के विरोधी थे जो इन विदेशी राजाओं का वैष्णव धर्म को मानने वाले गुप्त साम्राज्य से युद्ध का कारण भी था।[188] परन्तु यह युद्ध शक शासनकाल के उत्तरार्ध के वर्षों में हुए थे अतः इस असहिष्णुता को प्रारंभिक शक शासकों से जोड़ना कदापि उचित न होगा। पुरालेखों तथा पुराणों के अवलोकन से यह ज्ञात होता है की शक शासकों ने वैष्णव धर्म के प्रति सहिष्णुता प्रदर्शित की थी तथा उनको पर्याप्त संरक्षण भी प्रदान किया। उत्तर भारत के शक शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे जबकि दक्षिण भारत में बौद्ध तथा ब्राह्मण दोनों ही धर्मों को उचित संरक्षण प्राप्त हुआ था।[189] नासिक अभिलेख तथा शक शासक श्रीधर वर्मन का कांकेर पाषाण अभिलेख इस धार्मिक सहिष्णुता की पुष्टि करता है। श्रीधर वर्मन ने ब्राह्मण धर्म को ग्रहण कर लिया था।[190] प्रारम्भ में भारतीय समाज में ब्राह्मण वही कर्म करते थे जो उन्हें धार्मिक ग्रंथों द्वारा सम्पादित करने को आदेशित किया गया था। परन्तु कालान्तर में मग ब्राह्मण इसके इतर जीविकोपार्जन हेतु अन्य कार्यों में भी स्वयं को स्थापित करने लगे थे। ब्राह्मणों द्वारा ब्राह्मणेत्तर कर्म करने की प्रक्रिया वस्तुतः हखामनी काल से ही आरम्भ हो गयी थी।[191] शक सम्वत 159 में निर्मित गोविंदपुर शिलालेख के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार मग ब्राह्मण शकद्वीपी थे।[192] मनु संहिता के अनुसार शक क्षत्रिय थे संभवतः इसमें शासन करने वाले शकों का उल्लेख है।[193] गिरनार अभिलेख में रुद्रदामन के विषय में उत्कीर्ण वाक्य से उसके क्षत्रिय होने का प्रमाण प्राप्त होता है।[194] शकों ने अनेक भारतीय राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। उनके वैवाहिक सम्बन्ध ब्राह्मण राजवंश सातवाहनों से भी संपन्न हुए थे जिससे शकों के ब्राह्मण होने का भी आभास होता है। कन्हेरी शिलालेख से ज्ञात होता है की गौतमीपुत्र शतकर्णी रुद्रदामन का जमाता था।[195] उत्खननकर्ताओं को शक शासकों द्वारा प्रचलित कराई गयी मुद्राओं तथा मुहरों की प्राप्ति हुई है जिन पर हिन्दू देवी- देवताओं का अंकन है। मुख्य रूप से बैल का अंकन शकों की भगवान शिव के प्रति निष्ठा को दर्शाता है।[196] महाभारत में शक द्वीप उस स्थान के रूप में वर्णित है जहाँ भगवान शंकर की पूजा स्तुति आदि संपन्न की जाती थी।[197] गुजरात के देवनी मोरी के उत्खनन से प्राप्त शिव मंदिर भी इस कथन की पुष्टि करता है की क्षत्रप काल में भगवान शिव की पूजा की जाती थी।[198] शक शासकों जैसे रुद्रदामन, रुद्रसेन, रुद्रसिंह इत्यादि नाम शिव के प्रमुख नाम रूद्र से ही प्रभावित हैं। इसके भी साक्ष्य प्राप्त होते हैं की सोम सरमन तथा सोम सिद्धांत को भी क्षत्रप काल में ही प्रोत्साहन मिला तथा प्रभास पट्टन में सोमनाथ मंदिर का निर्माण हुआ। पश्चिमी भारत में पशुपति संप्रदाय भी इसी काल में विकसित हुआ था।[199] इस प्रकार अनेक तथ्यों के अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शक भगवान शिव की आराधना करते थे तथा उनके समय में शैव सम्प्रदाय का समुचित विकास भी हुआ था।

शक काल में मथुरा, जैन धर्म का प्रसिद्ध स्थान माना गया था जहाँ पर उस काल के अनेक जैन अभिलेख प्राप्त हुए हैं।[200] जैन लेखकों ने उज्जैन को एक महत्वपूर्ण जैन स्थल के रूप में दर्शाया है जहाँ पर जैन धर्म का प्रादुर्भाव मौर्य काल से ही था, परन्तु मथुरा तथा उज्जैन के शकों द्वारा उत्कीर्ण अभिलेखों में जैन धर्म के विषय में किसी प्रकार की प्रत्यक्ष जानकारी नहीं मिलती है। जैन साहित्य में जैन आचार्य कालकाचार्य का वर्णन मिलता है जिनकी भगिनी सरस्वती को उज्जैन के राजा गर्दभिल के हरम में बलपूर्वक रखा गया था। अपनी भगिनी को राजा से मुक्त कराने हेतु उन्होंने ईरान जाकर शकों से सहायता मांगी थी। शकों ने गर्दभिल्ला को पराजित कर उज्जैन पर अपना अधिकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित किया इस प्रकार उनका पश्चिमी भारत में प्रवेश आरम्भ हुआ।[201] शक शासनकाल में जैन धर्म भली-भांति पोषित हुआ तथा वल्लभी जैन धर्म का एक महत्वपूर्ण केंद्र बन गया था।[202] गिरनार की कन्दरायें तथा जैन तीर्थकरों की मूर्तियां सभी इसी दिशा में इंगित करते हैं कि शक क्षत्रप काल में पश्चिम भारत जैन धर्म हेतु एक महत्वपूर्ण केंद्र था।[203]

शक काल में बौद्ध धर्म की महत्ता की पुष्टि उस काल के बौद्ध भिक्षुओं स्थिरमति तथा गुणमति की रचनाओं के द्वारा भी होती है। यद्यपि मूल रचना का अभाव है परन्तु चीनी अनुवाद से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध दर्शन के ज्ञान हेतु ये रचनायें अत्यंत उच्च कोटि की है।[204] देवनी मोरी के अवशेषों में एक स्थान पर *प्रतीत्य समुत्पाद सिद्धांत* अंकित है जो वहां बौद्ध धर्म की मान्यता को प्रदर्शित करता है।[205] जूनागढ़ के निकट विहार के उत्खनन से मिट्टी की एक लघु आकार की मुहर प्राप्त होती है जिस पर ब्राह्मी में *महाराज रुद्रसेन विहारे भिक्षु संघस्यष्* अंकित है। जो स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि ये बौद्ध संघ रुद्रसेन द्वारा निर्मित कराया गया था।[206] कम्भादि, तलाजा, भावनगर साना आदि बौद्ध कन्दरायें भी शक शासन में ही निर्मित हुई थी।[207] सभी प्रकार के साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि शकों ने बौद्ध धर्म के प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शित किया था तथा कालान्तर में ब्राह्मण धर्म तथा शैव संप्रदाय में भी रुचि प्रदर्शित की थी। अतः यह स्पष्ट होता है कि शक सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु थे तथा विभिन्न प्रकार के धर्मों का पालन करने में उदारवादी दृष्टिकोण रखते थे।

4. 5.10 शक मुद्राओं का भारतीयकरण

सभी शक क्षत्रपों ने अपने शासन में रजत एवं ताम्र मुद्राओं का भी प्रचलन करवाया था। शक मुद्रायें भारतीय तथा यूनानी दोनों ही संस्कृतियों से प्रभावित है उनकी आकृति, भार, अंकन इत्यादि यूनानी मुद्राओं से प्रभावित था जबकि संस्कृत, प्राकृत भाषा, ब्राह्मी लिपि, पर्वत, नदी, सूर्य, चन्द्रमा आदि की उपस्थिति भारतीय प्रभाव को व्यक्त करती है।[208] इन मुद्राओं पर धनुष, वज्र, चक्र, त्रिशूल, बैल, घोड़े, हाथी आदि का अंकन मिलता है (चित्र-14)। इनमें त्रिशूल तथा बैल शैव धर्म का, परशु भागवत धर्म का प्रतीक है तथा हाथी इंद्र का वाहन है।[209] उस काल की मुद्राओं को सामान्यतः कार्षापण के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। उषावदात के नासिक के कंदरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिलालेख में कहापणा शब्द उत्कीर्ण है।[210] कार्षापण शब्द का उल्लेख भारतीय साहित्य में पूर्व में भी हुआ था, उदाहरणतः *अष्टाध्यायी* में रजत मुद्राओं को कार्षापण नाम से सम्बोधित किया गया था[211], मनु ने ताम्र मुद्राओं को कार्षापण से व्यक्त किया था[212], इसके अतिरिक्त कौटिल्य कृत *अर्थशास्त्र*[213] में तथा *अंगविज्जा*[214] में भी कार्षापण शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः क्षत्रप काल में प्रयुक्त कार्षापण भारतीय प्राकृत भाषा के कहापणा: से प्रभावित है। शक मुद्राओं का भारतीय शासकों की मुद्राओं पर प्रभाव देखा जा सकता है। गुप्त शासकों तथा सातवाहनों द्वारा प्रचलित कुछ मुद्रायें शक मुद्राओं के अनुकरण पर आधारित थी। सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पांचवी शताब्दी में शकों को पराजित किया था तथा इसके उपलक्ष्य में शक मुद्राओं के समरूप ही एक रजत मुद्रा प्रचलित करवाई थी परन्तु उस पर शक सम्वत के स्थान पर गुप्त सम्वत का प्रयोग किया था।[215] गुप्त काल की मुद्रायें अंकन में, भार में, आकार में शक मुद्राओं की भांति ही थी, मुख्य अंतर यह था की गुप्त मुद्राओं में त्रिकूट पर्वत के स्थान पर गरुड़ था तथा पिता का नाम अंकित नहीं था। कुमार गुप्त ने भी इसी प्रकार की मुद्राओं का निर्माण कराया था।[216] गौतमीपुत्र शातकर्णी ने भी अपने समकालीन पश्चिमी भारत के शक शासक नहपान की मुद्राओं से समानता रखती हुयी रजत मुद्रायें प्रचलित करवाई थी।[217] बोधि वंश द्वारा प्रचलित मुद्रायें भी क्षत्रपों द्वारा प्रचलित मुद्राओं से अनेक दृष्टियों में समानता रखती थी।[218]

4. 5.11 शक काल में अर्थव्यवस्था

शक शासन काल में भारतीय अर्थव्यवस्था में अत्यधिक उन्नति हुई थी। भारत से पश्चिमी जगत में जाने हेतु समुद्री मार्ग के विषय में जानकारी में वृद्धि हुई। मध्य एशिया तथा चीन से व्यापार हेतु नए व्यापारिक मार्ग भी ढूंढे गए।[219] रुद्रदामन ने सिंधु सौवीर को विजित कर सिंधु नदी के समानान्तर व्यापारिक मार्ग को अपने नियंत्रण में कर लिया था। चीन के निया(Niya) तथा लेओ लान(Leou-lan) में प्राकृत भाषा में शिलालेख प्राप्त हुए हैं तथा इसके अतिरिक्त अन्य भारतीय लेख भी प्राप्त हुए हैं। ये स्थान भारत तथा चीन के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध को दर्शाते हैं।[220] *अंगविज्जा* के अनुसार इस काल में 5 प्रकार के व्यवसाय सामान्यतः आमजन द्वारा अपनाये गए थे लोक सेवा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापार, पशु धन, बुनाई तथा मजदूरी। इनके अतिरिक्त अन्य व्यवसाय भी समाज में व्याप्त थे परन्तु इनको ग्रहण करने वालों की संख्या नगण्य थी।[221] नासिक अभिलेख में उषावदात ने नदी यात्रा को कर मुक्त किया था इससे यह ज्ञात होता है कि अंतःस्थलीय जल मार्ग व्यापरिक क्रियाओं हेतु प्रयुक्त होता था।[222] पेरिप्लस से ज्ञात होता था की इस काल में तटीय मार्ग से भी व्यापार किया गया था। शक शासनकाल में अनेक बंदरगाह बनाये गए थे जिनसे पर्याप्त मात्रा में शुल्क लिया जाता था।[223]

एम ए बच के अनुसार चाणक्य कृत *अर्थशास्त्र* में कृत्रिम बहुमूल्य जवाहरात वस्तुतः कांच ही है, अतः भारत में कांच का प्रचलन अत्यंत प्राचीन है।[224] तक्षशिला में शक शासनकाल में कांच से निर्मित अनेक सामग्रियां उत्खनन से प्राप्त हुई है। इसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कांच की पारदर्शी पट्टिकाएं हैं जिनका उपयोग भवनों में किया जाता था। यह पट्टिकाएं विभिन्न रंगो तथा आकारों में प्राप्त हुयी है तथा इनके निर्माण में उत्तम तकनीक का प्रयोग किया गया था। कांच की तकनीक में असीरियन प्रभाव तृतीय शताब्दी में दृष्टिगत होता है परन्तु शक काल की तकनीक इससे भिन्न थी। अतः यह कहा जा सकता है की भारत में कांच निर्माण की तकनीक यवनों तथा शकों द्वारा ही आयी थी। डॉ लाल स्पष्ट करते हैं की जिस समय शक तक्षशिला में शासन कर रहे थे उसी समय शक व्यापारियों द्वारा कांच निर्माण की तकनीक भारत लायी गयी थी। इस तथ्य का प्रमाण चीन के वेइ राजवंश (ईस्वी सन 300 से ईस्वी सन 557) के राजपत्रों से भी उपलब्ध होता है।[225]

4. 5.12 विक्रम सम्वत

विक्रम सम्वत के आरम्भ के विषय में अनेक विचार दृष्टिगत होते हैं। राजा विक्रमादित्य ने शकों को हराने के पश्चात इसका प्रारम्भ किया था इसके साक्ष्य प्राप्त नहीं होते हैं। वर्तमान में विद्वान् इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि विक्रम सम्वत का प्रारम्भ शक शासन एजेस प्रथम द्वारा किया गया था। सभी प्रकार के अभिलेखीय तथा मुद्राओं के साक्ष्य भी इसी दिशा में इंगित करते हैं।[226]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4.6 भारत तथा कुषाण सम्मिलन की प्रक्रिया

कुषाण वंश का इतिहास गौरवशाली है जिसका ज्ञान विभिन्न प्राथमिक स्रोतों, प्राचीन साहित्य तथा ज्योतिष ग्रंथों से प्राप्त होता है।[227] सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया के अध्ययन में कुषाण काल का अत्यधिक महत्व है। इस वंश के शासकों विशेष रूप से कनिष्क ने भारतीय संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया है। कनिष्क द्वारा ही शक सम्वत को आरम्भ किया गया था।[228] कुषाण साम्राज्य का विस्तार भारत तथा मध्य एशिया तक था तथा इस भूभाग के इतिहास को प्रभावित करने में कुषाण शासकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। कुषाण वंश की प्रारंभिक जानकारी मूलतः चीनी साहित्य में मिलती है। फान-ए द्वारा लिखित होउ-होन-शु में प्रथम शताब्दी के कुषाणों के विषय में ज्ञात होता है। जिसके अनुसार कुजुल कडफिसेस यू-ची कबीलों में सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था तथा उसने अन्य कबीलों को विजित कर एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया।[229] कुजुल कडफिसेस ने हिन्दुकुश के पार तक अपने राज्य को विस्तृत किया था तथा संपूर्ण अफगानिस्तान व गांधार को अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था साथ ही पश्चिम में भी आगे बढ़ गया।[230]

4. 6.1 शिक्षा तथा साहित्य

भारतीय साहित्य कुषाणों के समय में अत्यंत फला- फूला तथा उसकी महत्ता स्थापित करने में कुषाणों का योगदान सराहनीय है। अपने शासनकाल में कुषाणों ने साहित्य को संरक्षण प्रदान किया था। अश्वघोष[231]रचित *बुद्धचरित*, *सौन्दरनंद*, *सारिपुत्रप्रकरण* व *वज्रसूची*, *नागार्जुनकृत*[232] *प्रज्ञापारमिता*, *वसुमित्र*[233] द्वारा रचित *महाविभाषा* इत्यादि अनेक ग्रंथों की रचना इसी काल में हुई थी।

रायचौधरी के अनुसार कनिष्क के दरबार में पार्श्व, वसुमित्र, अश्वघोष, चरक, नागार्जुन तथा यूनानी विद्वानों ने स्थान प्राप्त किया था[234] जो स्वयं में इसका द्योतक है की कुषाणों के समय विद्वानों का उचित आदर होता था। कनिष्क के दरबार की ही भांति गुप्त काल में भी विद्वजनों की मंडली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजदरबार को सुशोभित करती थी। चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार के नवरत्न इतिहास में प्रसिद्ध है।[235] गुप्त सम्राट द्वारा यह परंपरा कनिष्क के शासन से ही प्रभावित प्रतीत होती है। कुषाण काल में विद्वानों की संख्या में अपार वृद्धि हुयी थी। बौद्ध विहार तथा अन्य बौद्ध संस्थानों ने समाज में शिक्षा के प्रति सामान्य जनों में जाग्रति हेतु प्रमुख भूमिका निभाई थी।[236] इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता है कि गुप्त काल के स्वर्ण युग के उत्थान में कुषाण काल की उपलब्धियों का बहुत योगदान रहा है। कुषाण काल में संस्कृत भाषा को प्रोत्साहन दिया गया। यह कार्य गुप्त काल में संस्कृत की उन्नति हेतु अति महत्वपूर्ण रहा। इसी काल में संस्कृत का प्रयोग बौद्ध धर्म के विद्वानों ने भी आरम्भ कर दिया था।[237] संस्कृत व्याकरण का भी इस काल में व्यापक उत्थान हुआ था।[238] सामान्य जनता हेतु संस्कृत में प्रथम शासकीय घोषणा उज्जैन के शक शासनकाल में हुई थी, परन्तु इतिहास में शासकीय घोषणाओं हेतु संस्कृत का उपयोग कुषाण काल के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है।[239] रायचौधरी तथा अन्य विद्वानों के अनुसार कनिष्क सभी धर्मों का आदर करता था जिसका ज्ञान उसकी मुद्राओं से प्राप्त होता है। उसके विशाल साम्राज्य में यूनानी, सुमेरियन, पारसी तथा ब्राह्मण देवी-देवताओं के पूजन के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[240] कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी अवश्य था परन्तु उसने अपने पूर्वजों द्वारा प्रारम्भ की गयी शिव पूजा को भी निरंतर प्रोत्साहन प्रदान किया था तथा इस तथ्य की पुष्टि उसकी मुद्राओं से होती है।[241] कुषाण शासक कनिष्क की इस धार्मिक उदारता ने पांच शताब्दी के उपरांत भी भारतीय शासक हर्षवर्धन को प्रभावित किया था। उन्होंने भी बौद्ध तथा हिन्दू देवताओं को अपने धार्मिक विश्वास में सम्मिलित किया था।[242] कनिष्क कुछ विषयों में सम्राट अशोक से भी प्रभावित प्रतीत होते हैं।[243] कनिष्क के समय बौद्ध धर्म की अनेक शाखाओं का उदय हुआ था तथा इन शाखाओं ने बौद्ध ग्रंथों की भिन्न-भिन्न व्याख्या की। इस कारण से इन शाखाओं में परस्पर विवाद होता था। अशोक की ही भांति कनिष्क ने भी इन विवादों के निस्तारण के लिए एक संगीति आयोजित की थी जिसमें बौद्ध विद्वानों द्वारा मिलकर विवादित विषयों के समाधान हेतु प्रयास किया गया। यह संगीति कश्मीर के कुण्डलवन में आयोजित हुई थी जिसमें भारत से लगभग 500 बौद्ध भिक्षुओं ने प्रतिभाग किया। इस संगीति की अध्यक्षता विद्वान पार्श्वनाथ ने की थी तथा अश्वघोष, विश्वामित्र व नागार्जुन जैसे विद्वानों ने इसमें प्रतिभाग किया था। ह्वेनसांग, तारानाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा परमार्थ ने भी इसका उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है।[244] इस संगीति में विद्वानों के परस्पर सानिध्य के उपरान्त एक बौद्ध विश्वकोश - *महाविभाषा* की रचना हुई। तारानाथ जी के अनुसार इस संगीति में हुए निर्णयों से 100 वर्षों से अनवरत चले आ रहे विवाद को समाप्त किया गया तथा बौद्ध धर्म में शांति स्थापित हुई तथा इसका लाभ न केवल बौद्ध धर्म को प्राप्त हुआ वरन सम्पूर्ण भारतवर्ष इससे प्रभावित हुआ।[245]

4. 6. 2 धर्म

सम्पूर्ण कुषाण काल में एक धार्मिक सहिष्णुता की परम्परा दृष्टिगत होती है जिसके कारण ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन सभी धर्मो की उन्नति हुई।[246] कुषाणों की मुद्राओं पर हिन्दू, बौद्ध तथा जैन धर्म के अतिरिक्त यूनानी, सुमेरियन, पारसी तथा अन्य धर्मों के प्रतीकों के अंकन भी मिलते हैं।[247] हिन्दू धर्म में शिव, कार्तिकेय तथा देवी उमा के अंकन, यूनानी तथा रोमन हेराक्लीज, जीअस, हीलिओ इत्यादि के अंकन, पारसी के मिहिर, माओ, फैरो इत्यादि के अंकन कुषाण मुद्राओं पर प्राप्त हुए है(चित्र -15)।[248] कुषाण शासकों द्वारा राजा तथा प्रजा सभी को धार्मिक रूप से पूर्ण स्वतंत्रता दी थी। कदफिसस द्वितीय शिव के उपासक थे, कनिष्क प्रथम बुद्ध के तथा वासुदेव भगवान शिव के उपासक थे इस प्रकार न केवल राज्य में अपितु राजवंश में भी धार्मिक उदारता के चिन्ह प्रबल रूप से दृष्टिगोचर है।[249]

कनिष्क के विशाल साम्राज्य में अनेक देशी तथा विदेशी धर्म सफलतापूर्वक फले-फूले, इस प्रकार कनिष्क की धार्मिक उदारता अतुलनीय है। रायचौधरी के अनुसार मुद्राओं तथा पुरुषपुर के अभिलेख से ज्ञात होता है कि कनिष्क बौद्ध धर्म में परिवर्तित हो गए थे अथवा बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया था।[250] मुद्राओं तथा पुरुषपुर के अभिलेखों के अतिरिक्त कनिष्क द्वारा निर्मित स्तूप तथा विहार, महान बौद्ध संगीति का आयोजन जैसे कार्य भी बौद्ध धर्म के प्रति उनके समर्पण को दर्शाते हैं।[251] जिस बृहद स्तर पर बौद्ध धर्म के उत्कर्ष में अशोक ने तत्कालीन मध्य भारत में कार्य किये थे उसी प्रकार कनिष्क ने बौद्ध धर्म हेतु गांधार क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये थे। कनिष्क द्वारा मुद्राओं पर बुद्ध का अंकन मनुष्य रूप में हुआ था।[252] के. डी. बाजपेई जी ने नवीन अन्वेषण में मध्य प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रायगढ़ से कनिष्क काल की स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त की है। इन मुद्राओं के पश्च भाग में बुद्ध का अंकन है जिसमें सिर के दोनों ओर की आकृति में प्रभामंडल दृष्टिगत होता है। दांया हस्त, छाती के समीप उठी मुद्रा में है जिस पर एक बिंदु बना हुआ है तथा बायें हस्त में एक वृत्ताकार भिक्षापात्र है (चित्र-16)।[253] कतिपय मुद्राओं पर शाक्यमुनि[254] तथा मैत्रेय[255] का भी मानवाकृति में अंकन है। कुषाण काल में महायान से दो शाखायें निकली -माध्यमिका तथा योगाचार।[256] महासांघिका ने लोकोत्तरवाद का सिद्धांत दिया जिसके अनुसार ऐतिहासिक बुद्ध, तीन प्रकार का शरीर ग्रहण करते थे। यहाँ से बौद्ध धर्म के त्रिकाया का आरम्भ हुआ तथा इस त्रिकाया में तीन सिद्धांत निर्माणकाया, सैनभोगकाया तथा धर्मकाया थे। त्रिकाया का सिद्धांत महायान का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत था।[257] कनिष्क ने महायान को संरक्षण प्रदान किया था। दक्षिण पूर्व एशिया तथा जापान में बौद्ध धर्म का जो प्रसार हुआ था वो संभवतः महायान ही था तथा धर्म के इस प्रसार से कनिष्क की ख्याति न केवल भारत में अपितु भारत देश की सीमाओं के पार भी पहुंच गई थी।[258]

विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा भारतीय बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के उपरांत इस धर्म में परिवर्तन आया तथा यह अपने मूलस्वरूप से इतर एक नए स्वरुप में परिवर्तित हो गया। भगवान बुद्ध जिनका देहावसान हो चुका था, उन्हें एक अवतार माना गया जिसने प्राणी मात्र के उद्धार हेतु मनुष्य योनि में जन्म लिया था। संभवतः बुद्ध को भगवान विष्णु का अवतार मानने की प्रथा कुषाण काल से ही प्रारम्भ हुई होगी। अनेक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि कनिष्क के उदार धार्मिक दृष्टिकोण से धर्मों में परस्पर सिद्धांतों के आदान प्रदान को मान्यता मिली। स्मिथ के अनुसार कनिष्क के काल में महायान शाखा, गौतम बुद्ध द्वारा बताई गई शिक्षाओं से भिन्न हो गई थी।[259] बुद्ध, भगवान् विष्णु की भांति ही एक उद्धारकर्ता भगवान के रूप में मान्य हो गए थे तथा उनकी भी मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हो गया था। वर्तमान में वैष्णव समाज भी बुद्ध को नवें अवतार के रूप में मान्यता देता है।[260] *विष्णु पुराण*[261], *अग्नि पुराण*[262], *वराह पुराण*[263], *भागवत पुराण*[264], *नृसिंह पुराण*[265] इत्यादि में बुद्ध को अवतार के रूप में प्रकट किया गया है जो प्रत्यक्ष रूप में कुषाण काल में ही प्रारम्भ हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुषाण शासकों की उदारता तथा संरक्षण के कारण चीन से बाद में यात्रियों का आगमन हुआ।। रैपसन के अनुसार कुषाण काल की उदारता ने चीन तथा भारत के मध्य के प्रगाढ़ सम्बन्ध को स्थापित किया। बौद्ध धर्म, भारतीय सभ्यता, भारतीय भाषाएँ यहाँ तक की भारतीय अक्षर भी चीन तथा अन्य देशों में प्रसारित हुए थे।[266]

4 . 6. 3 कला पर भारतीय तथा विदेशी प्रभाव

मानव की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का नाम कला है। कुषाण शासक मूर्तिकला तथा वास्तुकला के महान संरक्षक थे। उनके काल में विदेशी गांधार कला तथा देशी मथुरा कला दोनों ही सर्वोच्च स्थान पर पहुंच गई थी। कनिष्क ने यूनानी मूर्तिकारों को भारत आमंत्रित किया था तथा मूर्तियों के सौंदर्यीकरण में रोमन प्रभाव भी स्पष्ट होता है।[267] प्रोफेसर बाजपेई के अनुसार कुषाण काल में उत्तर भारत में मथुरा कला का सर्वांगीण विकास हुआ था।[268] रॉविल्सन के अनुसार कला के क्षेत्र में कुषाण काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने यवन मूर्तिकारों को भारत में कला के विकास हेतु अवसर प्रदान किया था तथा बौद्ध विहारों के सौंदर्यीकरण का कार्य सम्पादित करवाया।[269] प्रारम्भ में एशिया माइनर से आये इन मूर्तिकारों का कार्य यवन कला के समकक्ष था परन्तु क्रमशः विदेशी कला भी भारतीयता से प्रभावित हो गई तथा इनकी कलाकृतियों में देशी कला का अंश दृष्टिगत होने लगा था मुख्य रूप से साँची तथा भरहुत के बौद्ध संघों में ऐसे प्रभाव दृष्टिगत हुए हैं।[270]

मथुरा कला

मथुरा, प्राचीन समय के उन नगरों में से है जो ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन तीनों ही धर्मों का केंद्र रहा है। मथुरा एक सहस्त्राब्दी तक कला का प्रमुख केंद्र रहा है जहाँ एक ओर मथुरा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों हेतु भगवान् कृष्ण की जन्मस्थली के कारण प्रसिद्ध थी तो वहीं दूसरी ओर मथुरा बौद्ध धर्म के अनुयायियों हेतु महायान संप्रदाय के केंद्र के रूप में प्रसिद्ध हुई, इसके अतिरिक्त यहाँ कुषाण काल में जैन स्तूपों का भी निर्माण हुआ था।[271] प्रथम शताब्दी में मथुरा कुषाण सत्ता का केंद्र बना तथा इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदेशियों के कारण मथुरा के सांस्कृतिक व धार्मिक जीवन में अनेक नवीन तत्वों का समावेश हुआ। विभिन्न धर्मों का प्रभाव मथुरा में कला व संस्कृति पर व्यापक रूप से परिलक्षित होता है, जिससे मथुरा एक सर्वधर्म समभाव की भावना को समाहित किए हुए नगर के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इस काल में ही बुद्ध का मानवरूपी चित्रण हुआ था जो भारतीय कला को कुषाणों द्वारा दी गयी सर्वोत्तम देन है।[272] मौर्य काल में भारतीय कला में बुद्ध को प्रतीकों के रूप में शिलाफलकों पर प्रदर्शित किया गया था।[273] महायान संप्रदाय ने बुद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया था। एक ओर जहाँ कुबेर, यक्ष आदि की मूर्तियां निर्मित हुयी, वहीं दूसरी ओर बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियां भी बड़ी संख्या में निर्मित की गयी थीं [274] हिन्दू धर्म के देवता जैसे विष्णु, सूर्य, शिव तथा देवी मूर्तियों का भी चित्रण दृष्टिगत होता है तथा इसी क्रम में जैन तीर्थंकर की मूर्तियां भी बनी।[275] साँची तथा भरहुत की शिल्प परंपरा को मथुरा के कलाकारों द्वारा अपनाया गया था किन्तु कुषाणों के समय में मूर्ति निर्माण हेतु किया गया प्रयास अधिक परिष्कृत रूप में था।[276] मानवाकृति में सौंदर्य को चित्रित किया गया तथा उन पर अनेक मुद्राओं व भावों को समाहित करने का कार्य भी कारीगरों ने अत्यंत कुशलता से किया था।[277]

कुषाण साम्राज्य उत्तरी पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान तक विस्तृत था तथा इस काल के शासकों द्वारा मूर्तिकला के बहुमुखी विकास को प्रोत्साहित किया गया था। भारतीय कला का परिपक्व युग यहीं से आरम्भ होता है। शिल्पियों द्वारा इस काल में अनेक सम्प्रदायों से सम्बंधित मूर्तियां उदाहरणतः बुद्ध, बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर, विश्वपाणि, पार्श्वनाथ, आदिनाथ, नेमिनाथ, शिव, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, गणेश, दुर्गा, अर्धनारीश्वर, कार्तिकेय की मूर्तियां निर्मित की गयी। इस काल में यक्ष-यक्षिणी (चित्र -17) की मूर्तियां मथुरा तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्र आगरा तथा मथुरा के मध्य स्थित परखम नामक स्थान से भी प्राप्त हुई थी।[278]

गांधार कला

भौगोलिक दृष्टि से गांधार प्रदेश ऐसा था जहाँ भारतीय यूनानी, ईरानी एवं रोमन संस्कृतियों का संगम होता था, जिसके फलस्वरूप इस स्थान की कला में पूर्व एवं पश्चिम की कला का दर्शन होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है।[279] यूनानी कलाकारों द्वारा जिस कला शैली को अपनाया गया तथा जो गांधार क्षेत्र में प्रफुल्लित हुई उसे गांधार कला कहते हैं। इस कला शैली को यूनान के शिल्पकारों द्वारा बनाया तो गया किन्तु इनके कला का आधार भारतीय विषय तथा प्रतीक थे। गांधार कला को ग्रेको-रोमन कला भी कहते हैं क्योंकि इस कला का विषय तो भारतीय है किन्तु निर्माण शैली यूनानी है।[280] गांधार कला में बुद्ध की सुंदर तथा गरिमापूर्ण मूर्ति निर्मित हुई थी जिसके मुख पर मुस्कान की मुद्रा थी।[281] इस शैली का उदय समन्वय का परिणाम था। इस कला के प्रमुख केंद्र जलालाबाद, हद्द, बामियान, पेशावर तथा स्वात घाटी थे।[282] उनकी मुद्रा तो भारतीय है जैसे कमलासन पर बैठे हैं किन्तु मूर्तियों के मुखमण्डल और वस्त्र यूनानी शैली के हैं। इस कला में बुद्ध की मूर्तियों को अलंकृत किया गया है, जो यूनानी तथा रोमन कला का प्रभाव है जिससे वे आध्यात्मिक पुरुष न लगकर सम्राट की भांति लगते हैं। गांधार कला की मूर्तियां स्लेटी पत्थर की हैं इन्हें मोटे वस्त्र पहने दिखाया गया है, इन मूर्तियों में मांसलता अधिक है, आँखे भरी तथा होंठ मोटे हैं तथा मस्तक पर उष्णीष धारण किये हैं। मुख मुद्रा प्रायः भावशून्य है, उनमें आध्यात्मिक की भावना का अभाव है(चित्र -18)।[283]

बोधिसत्व के मूर्तियों के सिरे पर बहुधा लहरियादार केश, मूंछ और सारा शरीर संघाटी से ढका दर्शाया गया है।(चित्र -19) मूर्तियों के चारों ओर प्रभामंडल है क्योंकि गांधार कला में भारतीय कला के मूल तत्वों का आभाव है, यूनानी कला में शारीरिक सौंदर्य है जबकि भारतीय कला में आध्यात्मिकता को वरीयता दी जाती थी।[284] यही मूलभूत अंतर दोनों कला शैलियों में था जिसके कारण गांधार कला भारत में दीर्घकाल तक अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल नहीं हुई।

रॉलिंसन के अनुसार कनिष्क काल की इमारतें मुख्यतः लकड़ी तथा ईंट से भारतीय शैली में ही निर्मित हुई थी। रॉलिंसन के अनुसार कुषाण काल की इमारतें किसी भी विदेशी प्रभाव से प्रायः मुक्त थी यहाँ तक की स्वयं कुषाणों का प्रभाव भी इमारतों में नहीं प्राप्त होता है।[285] अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि कुषाण समाज में पूर्व में ही स्थित कला को अपनाया तथा उसे विकसित किया। मुद्राओं के अध्ययन से भी उनके द्वारा भारतीय संस्कृति को अपनाने की पुष्टि होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 6.4 अर्थव्यवस्था

भारतीय अर्थव्यवस्था की दृष्टि से कुषाण वंश का काल अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है।कुषाण वंश का गौरव न केवल उनके साम्राज्य विस्तार तथा सामाजिक समरसता में है अपितु भारत की आर्थिक उन्नति में भी है। पश्चिम से व्यापार बढ़ाने हेतु नए मार्गों की खोज, नवीन वैज्ञानिक तकनीकी, व्यापार वाणिज्य में स्वर्ण-मुद्राओं के समावेश से भारतीय अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हुयी। पाश्चात्य देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों की दृष्टि से कुषाणों का समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। कुषाण काल में व्यापार एवं वाणिज्य को बहुत प्रोत्साहन मिला जिससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यह काल शांति ,सुरक्षा एवं समृद्धि का काल रहा होगा। कुषाणों के साम्राज्य में उत्तरी एवं पश्चिमी स्थल मार्गों से और देश के पश्चिमी तट के समुद्री मार्गों से भारतीय सामग्री का आदानप्रदान होता था। इनके साम्राज्य की सीमा पूर्व में चीन तथा पश्चिम में रोमन साम्राज्य तक विस्तृत थी जिसके परिणामस्वरूप भारत का संपर्क वर्तमान ईरान, मध्य याएशि , पश्चिम एशिया एवं यूरोप से हुआ इन देशों में उस समय विशाल एवं सुसंगठित साम्राज्य थे।[286] जिसके परिणामस्वरुप भारत को अप्रत्याशित व्यापारिक वृद्धि हुई। विशेष रूप से रोम के साथ व्यापार करने से भारत में सोने का आगमन बड़ी मात्रा में हुआ जो रोम के व्यापारियों द्वारा भारत से वस्तु विनिमय में दिया जाता था जिसके विषय में प्लिनी लिखता है।[287] कुषाण काल में विदेशी निर्यात से व्यापारी एवं कृषक वर्ग समृद्ध हुआ। कुषाण कालीन उन्नत आर्थिक स्थिति ने तत्कालीन भारत की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जिसका लाभ आगे चलकर गुप्त शासकों को प्राप्त हुआ।

व्यापार बढ़ने से आवश्यक रूप से मुद्राओं की आवश्यकता भी बढ़ गयी, फलस्वरूप कुषाण शासकों द्वारा मुद्राओं का प्रचलन प्रचुर मात्रा में कराया गया। कुषाण शासकों द्वारा स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मुद्राओं का प्रचलन कराया गया था। कुषाणों ने ही सर्वप्रथम स्वर्ण सिक्कों को भारत में प्रचलित करवाया था। रजत मुद्रायें अत्यंत न्यून मात्रा में प्राप्त होती है जो संभवतः प्रयोगात्मक ही थी क्योंकि शक शासनकाल में ही रजत मुद्राओं की साख अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में घट गयी थी।[288]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 6. 5. मुद्रा प्रणाली

कुजुल कदफिसेस की मुद्राओं पर सीथियनों द्वारा प्रचलित मृत्यु के देवता के प्रमाण मिलते हैं, जिन्हें यवन हेराक्लीज की भांति ही माना जाता है। परन्तु अन्य मुद्राओं पर सत्य धर्म के रक्षक आदि का अंकन है जो उसके बौद्ध धर्म के अनुपालक के रूप में मान्यता प्रदान करता है। उसके पुत्र विम कदफिसेस द्वारा मुद्राओं में भगवान शिव तथा यम का अंकन कराया गया था (चित्र-20)।[289] पंजाब तथा मथुरा मे मिली मुद्रायें तथा अन्य पुरातात्विक सामग्रियां विम कडफिसेस द्वारा भारत विजय का प्रमाण प्रस्तुत करती है। विम कडफिसेस द्वारा स्वर्ण व ताम्र मुद्रायें चलायी गई जिन पर यूनानी तथा खरोष्टी भाषा उत्कीर्ण है।[290] सुविख्यात कनिष्क के गौरवमयी शासन के विषय में वैज्ञानिक विश्लेषण का महत्वपूर्ण उपयोग किया गया है। चीनी तथा तिब्बती ग्रंथों में कनिष्क के शासन व विजयों का उल्लेख मिलता है। अश्वघोष के प्रभाव में कनिष्क ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया तथा अपने शासनकाल में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन किया। कनिष्क के शासन तथा साम्राज्य विस्तार के विषय में विभिन्न लेखों तथा मुद्राओं के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है। लेखों में कनिष्क को *महाराजाधिराज देवपुत्र* की उपाधि से सुशोभित किया गया है। कनिष्क के उपरांत वाशिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि उसके उत्तराधिकारियों ने भारत पर शासन किया था। हुविष्क के काल की स्वर्ण व ताम्र मुद्रायें प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है।[291] डी . सी . सरकार के अनुसार उत्तर प्रदेश तथा बिहार के अनेक स्थानों से कुषाण वंश की मुद्रायें प्राप्त हुई है।[292] इन मुद्राओं पर विभिन्न उपाधियाँ अंकित है तथा ये कुषाण वंश की विजयगाथा के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। देवी -देवताओं के अंकन वाली कुषाण मुद्रायें अत्यंत प्रसिद्ध है। इन मुद्राओं को मुख्यतः चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इस चार श्रेणियों में ईरानी, यूनानी, हिन्दू तथा बौद्ध धर्म से सम्बंधित मुद्रायें है।[293]

कुषाण मुद्राओं पर ईरानी, यूनानी, हिन्दू तथा बौद्ध धर्म से सम्बंधित देवी-देवताओं का अंकन प्रचुरता में हुआ है। कुषाण मुद्राओं पर मूल भारतीय धर्म हिन्दू तथा बौद्ध धर्म से सम्बंधित देवताओं के अतिरिक्त यूनानी तथा ईरानी देवताओं का अंकन एक वृहद सम्मिलन को प्रदर्शित करता है।[294] प्रथम कुषाण शासक कुजुल कडफिसस ने भारतीय बौद्ध धर्म ग्रहण कर के सामाजिक सम्मिलन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। कुजुल कडफिसस की मुद्राओं पर *ध्रमठिदस* का अंकन इसकी पुष्टि करता है, जिसका अर्थ है धर्म में स्थित।[295] विम कडफिसस के काल में स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन बढ़ा तथा इनकी मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर शिव व नंदी का अंकन है। विम कडफिसस ने *महिश्वर* उपाधि को धारण किया जो उनके शैव मतावलम्बी होने का द्योतक है।[296] कनिष्क तथा उसके बाद के राजाओं के सिक्कों पर सभी मतों के देवताओं को स्थान दिया गया है यह उनके सहिष्णु होने का द्योतक है। हुविष्क की मुद्राओं में विभिन्न देवी -देवताओं का अंकन है तथा यूनानी भाषा में नाम अंकित है। वासुदेव के शासन काल में भी यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रही। वासुदेव के शासन काल में शैवमत का प्रचार अधिक हुआ इसलिए सोने तथा ताम्बे के सिक्कों पर शिव को प्रमुख स्थान दिया गया। आरडोक्षो का अंकन जो कुषाण मुद्राओं पर मिलता है उन्हें गुप्त काल में देवी लक्ष्मी के रूप में पूजा जाने लगा। इसी प्रकार ओएशो को कालांतर में शिव के रूप में मान्यता मिली। इसी तरह समस्त कुषाण कालीन देवताओं का जो उनकी मुद्राओं द्वारा प्रचलित हुए थे कालान्तर में भारतीय समाज में उनको हिन्दू देवी -देवताओं के रूप में पूजा जाने लगा।[297]

प्रारंभिक कुषाण मुद्राओं की कल्पना ग्रीक पौराणिक कथाओं से अधिक आकर्षित हुई थी। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि भारतीय महाद्वीप के उत्तरी-पश्चिम क विभिन्न हिस्सों में दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से पहली शताब्दी ईस्वी तक ग्रीको -बैक्ट्रियन व ग्रीको- इंडियन ने शासन किया था। मेसोपोटामियन, मिस्र तथा ईरानी सम्बन्ध की जानकारी हमें केवल कनिष्क प्रथम और हुविष्क की मुद्राओं के अध्ययन से ज्ञात होती है। इन दो राजाओं के शासनकाल में कुषाण साम्राज्य सर्वोपरि था तथा उसका एक विशाल क्षेत्र था। अधिक संपन्न रेशम मार्ग के व्यापारियों द्वारा किए गए अन्य स्थानीय धार्मिक विश्वासों का प्रभाव कुषाण पंथियों पर पड़ा होगा। कुषाण मुद्राओं से यह स्पष्ट है कि कुषाणों के पूरे क्षेत्र में धार्मिक जीवन अत्यधिक विकसित था। भारत में प्राचीन काल से एक धार्मिक विचारधारा प्रवाहित हो रही थी तथा जिस पर दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी के मध्य यूनानी तथा ईरानी सभ्यताओं ने प्रभाव स्थापित किया था। उपरोक्त तथ्यों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विदित होता है और हम भली- भाँति कह सकते हैं कि कुषाणों द्वारा प्रचलित मुद्राओं में मुख्यतः चार प्रकार की संस्कृतियों के देवी -देवताओं का अंकन हुआ है। ये देवता वर्तमान भारतीय समाज में भी अपने हिन्दू सम्तुल्यों के रूप में पूजे जाते हैं। देवताओं का अंकन उनकी सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के प्रतीक के रूप में भी समझा जा सकता है। बर्बर तथा घुमन्तु यु ची प्रजाति ने भारत में आकर भारत की सभ्यता को अपना लिया तथा भारत में एक गौरवशाली वंश के रूप में स्वयं को स्वर्णाक्षरों में इतिहास में अंकित कराया। उनकी उपलब्धि निसंदेह ही उल्लेखनीय है तथा भारत भूमि को सँवारने में उनका योगदान अतुलनीय है। काल के गर्भ में यु ची प्रजाति की परम्परायें लुप्त हो गई तथा वो स्वयं भी भारतीय हो गए व पूर्णतः भारतीय सभ्यता का वरन कर लिया।

4. 7 हूणों के आगमन का भारत पर प्रभाव

यद्यपि हूणों के आगमन ने भारत पर एक राजनीतिक प्रभाव स्थापित किया था परन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उनका आगमन भारतभूमि हेतु अत्यंत घातक रहा था। उत्कृष्ट कलाकृतियों को उन्होंने बर्बरतापूर्वक नष्ट कर दिया था तथा अनेक बौद्ध विहारों व मंदिरों को भी ध्वस्त कर दिया था।[298] गुप्त काल की प्रसंशनीय उपलब्धियों को उन्होंने निर्दयतापूर्वक समाप्त कर दिया था और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य भी अग्नि की भेंट कर दिए थे, जिससे इतिहासकारों को भारतीय इतिहास के विषय में उनके महत्वपूर्ण जानकारियां प्राप्त नहीं हो सकी तथा भारतीयों व विदेशी शासकों द्वारा संपन्न कार्यों के विषय में केवल वही ज्ञान प्राप्त हो सका जो हूणों की बर्बरता से सुरक्षित रह सके।[299] हूणों की भारत में प्रथम विजय के उपरांत उनमें उपजे दुःसाहस ने उन्हें अपने पथ में आने वाले समस्त धार्मिक स्थान तथा सामाजिक समूह के विनाश को प्रोत्साहित किया। परन्तु समय ने उनकी उग्रता को अस्त कर दिया तथा उन्होंने बाद में भारतीय शैव धर्म को ग्रहण कर अपने सांस्कृतिक सम्मिलन की प्रक्रिया को प्रारम्भ कर दिया था। परन्तु बौद्धों के प्रति उनकी क्रूरता अपेक्षाकृत तीक्ष्ण ही रही जो उनके शासनकाल के अंत तक अनवरत चलती रही।[300] भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल गुप्त काल हूणों की बर्बरता की भेंट चढ़ गया था, यद्यपि शकों या कुषाणों की भांति हूणों ने भारत में स्थायी निवास नहीं स्थापित किया था परन्तु उनका प्रभाव अत्यंत आक्रामक होने के कारण, गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्राज्य पुनः स्थापित होने के उपरांत भी अपने पूर्व शासन की एक रुग्ण छाया के रूप में ही रह गया था तथा अपना प्राचीन गौरव कभी भी प्राप्त नहीं कर सका था।[301] उत्तर भारत में हर्षवर्धन का शासन भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसने विभिन्न जातियों, संस्कृतियों आदि को एक सूत्र में पिरोकर महान भारतीय साम्राज्य की नींव रखी।[302] हूणों के आक्रमण ने दमनकारी तानाशाही शासन की नींव भारत में रखी थी जो अनेक शताब्दियों से अनियंत्रित होकर एक प्रकार की सामंतवादी व्यवस्था के रूप में स्थापित हो गई थी। यद्यपि भारत में जनतंत्र प्रभावशाली नहीं था परन्तु हूणों के आक्रमण ने भारत में जनतंत्र की व्यवस्था को पूर्णतः समाप्त कर दिया था। इसके पूर्व प्राचीन भारत में राजतन्त्रों के शासन में भी जनतंत्र इतना क्षीण पहले कभी नहीं हुआ था। हूणों के आक्रमण से पांचवी शताब्दी तक जनतंत्र मृतप्राय हो गया था।[303] यौधेय, कुणिंद, अंबष्ठ आदि को भी हूणों ने बर्बरतापूर्वक नष्ट कर दिया।[304] यदि इस अनुमान को सत्य माना जाए की हूण ही राजपूतों के पितामह है तो हूणों का यह प्रभाव न केवल भारतीय इतिहास में देखा जा सकता है परन्तु वर्तमान समय में भी अनुभव किया जा सकता है क्योंकि मध्यकाल के इतिहास में राजपूतों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।[305]

4. 7.1 धार्मिक प्रभाव

हूण जिस समय भारत आये थे वो अपने प्राचीन धर्म का पालन करते थे, इसमें वो आकाश, अग्नि इत्यादि की पूजा करते थे। उन्होंने अपने द्वारा पराजित क्षेत्रों के सांस्कृतिक रूप से उच्च धर्मों तथा उनके दार्शनिक सिद्धांतों को महत्त्व नही दिया। यद्यपि जरथ्रुष्ट का प्रभाव एक सीमा के भीतर दृष्टिगत होता है परन्तु यह अत्यंत सूक्ष्म है।[306] ऐसे साक्ष्य नहीं प्राप्त होते हैं जिनसे पूर्ण विश्वसनीयता के साथ हूणों द्वारा भारतीय धर्मों पर पड़े प्रभाव को समझा जा सके। परन्तु यह सम्भावना हो सकती है कि पराजित भारतीय जनमानस ने उनकी कतिपय पद्धतियों को शायद अपनाया हो। अवश्य ही अपनाई होगी, यदि हूण शासनकाल के समय नहीं तो उस समय जब हूण स्वयं भी भारतीय समाज में सम्मिलित हो गए हूणों पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। हूणों द्वारा प्रचलित मुद्राओं में अंकित शंख, चक्र, त्रिशूल इत्यादि उनके शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय से प्रभावित होने के प्रमाण देते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसके अतिरिक्त कुछ मुद्रायें उनकी शिव भक्ति का भी विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करती है जिनके ऊपरी भाग में बैल तथा नीचे के भाग में *जयत वृषः अंकित* है।[307]

4. 7.2 भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव

भारतीय जनमानस जो अपनी सांस्कृतिक तथा चारित्रिक गुणवत्ता के कारण प्रसिद्ध था हूणों के प्रभाव से उसमें अनेक दुर्गुणों, अन्धविश्वास इत्यादि का समावेश हो गया था।[308] दार्शनिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान जो प्राचीन भारत को विश्वगुरु की श्रेणी में रखता था उसमे गिरावट आ गयी। यह अवमूल्यन सतत रूप से चलता रहा, जब हूण स्वयं भी हिन्दू हो गए उसके उपरांत भी इस अवमूल्यन का क्रम समाप्त नहीं हुआ। कनिष्क के काल में अपने सर्वोच्च स्थान पर पहुंचे बौद्ध धर्म का जितना विनाश हूणों द्वारा मध्य एशिया से मध्य भारत तक हुआ है, इतिहास उसे सम्पूर्ण रूप से कभी भी व्यक्त नहीं कर पायेगा। पांचवी शताब्दी के मध्य में हूण तक्षशिला पहुंचे थे तथा उस प्राचीन गौरवशाली नगर को नष्ट कर दिया था। युवान च्वांग (अथवा ह्वेन सांग) ने सातवीं शताब्दी में तक्षशिला का भ्रमण किया था तथा इस तथ्य की पुष्टि की थी कि यह नगर अपने प्राचीन गौरव का शेष मात्र ही रह गया था।[309] तत्कालीन शासक द्वारा तक्षशिला के निकट स्थित बौद्ध विहार जिसे कमलसिला (Kamalshila) कहा जाता है जहाँ पर संत्रान्तिका विद्वानों ने बहुमूल्य कार्य संपन्न किये थे वो खँडहर में परिवर्तित हो गया था।[310] भारतीय कला तथा ज्ञान को हूणों ने गंभीर क्षति पहुंचाई थी। हूणों का तृतीय आक्रमण जो मिहिरकुल के नेतृत्व में संपन्न हुआ था उसने उन महत्वपूर्ण स्थानों, जिनमें शताब्दियों से शिक्षा तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के क्रियाकलाप अनवरत रूप से चले आ रहे थे, को नष्ट कर दिया। यह स्थान शताब्दियों तक विभिन्न राजाओं के संरक्षण में सदैव ही उन्नति करते रहे थे तथा भारतीय ज्ञान व सभ्यता हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण थे। कला के क्षेत्र में परिष्कृत गांधार क्षेत्र, शिक्षा का केंद्र तक्षशिला इत्यादि अत्यंत महत्वपूर्ण स्थानों को हूणों ने नष्ट कर दिया। कपिलवस्तु, कौशाम्बी, नालंदा, पाटलिपुत्र को भी उनकी भीषणता की आग में स्वाहा होना पड़ा था। बौद्ध स्तूप तथा बौद्ध विहारों का नाश, देश की महान सांस्कृतिक तथा बौद्धिक परंपरा हेतु एक घातक कार्य था। शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध विहार गौरवशाली थे परन्तु हूणों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आक्रमण के उपरान्त वो पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सके थे।[312] अंतराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय का भी मिहिरकुल के नेतृत्व में विध्वंस किया गया था। इसके विध्वंस का एक कारण यह भी हो सकता है की नालंदा तक पहुंचते हुए हूण हिन्दू धर्म से प्रभावित हो चुके थे, जिसने बौद्ध विश्वविद्यालय के नाश हेतु परिस्थितियां उत्पन्न की।

मातृविष्णु के अनुज धन्यविष्णु द्वारा निर्मित एरण वाराह पाषाण अभिलेख में तोरमाण से सम्बंधित लेख उपलब्ध है। यह अभिलेख तोरमाण के शासन के प्रथम वर्ष का है तथा इसमें वाराह, भगवान विष्णु के अवतार को प्रदर्शित करता है।[313] मिहिरकुल के ग्वालियर पाषाण अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह सूर्य का उपासक था तथा सूर्य देव के मंदिर की स्थापना ग्वालियर के गोपा के पर्वतीय क्षेत्र में की।[314] यशोधर्मन का मंदसौर पाषाण अभिलेख स्पष्ट करता है कि मिहिरकुल केवल शिव के सम्मुख ही सिर नवाता था।[315] गांधार क्षेत्र से मुहर प्राप्त हुई है जिसके मुख पर चतुर्भुजी भगवान विष्णु की आकृति अंकित है तथा इसमें एक भक्त उनकी आराधना कर रहा है, जो सम्भवतः मिहिरकुल ही है।[316] परन्तु इसे हूण शासकों के वैष्णव धर्म को ग्रहण करने का साक्ष्य नहीं माना जा सकता है क्योंकि ये सभी अभिलेख सामंतों द्वारा निर्मित गए थे न की स्वंय हूण शासकों द्वारा।

बौद्ध ग्रंथों में हूणों के विषय में लिखा है कि उन्होंने शासन हेतु घोषणापत्र नहीं बनवाये थे, उन्हें खगोलीय पिंडों की जानकारी का अभाव था उन्हें महीने के विषय में जानकारी नहीं थी तथा इस हेतु वो एक वर्ष को बारह से विभाजित कर देते थे। हूणों द्वारा प्रयुक्त वाद्य यंत्रों का भी किसी प्रकार का प्रमाण नहीं प्राप्त होता है। राजकीय स्त्रियों के वस्त्र लबादा की भांति थे जो धरती को स्पर्श करते थे। हूण सिर पर सींग की सज्जा भी लगाते थे। धनी तथा निर्धनों के परिधानों में भिन्नता मिलती थी। उनमें से अधिकांश बुद्ध को नहीं मानते थे तथा जीव जंतुओं की हत्या करते थे तथा उनका मांस खाते थे।[317]

पश्चिमोत्तर भारत में हूणों को राजपूतों द्वारा सम्बोधित किया जाता है। हूण भी अंत में उसी प्रकार हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो गए थे जिस प्रकार उनके परवर्ती आक्रमणकारी शक तथा पहलव हिन्दू धर्म में परिवर्तित हुए थे।[318] हूणों के भारतवर्ष में स्थायी निवास तथा भारतीय शासकों के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य जातियों में स्थापित हुए उनके वैवाहिक संबंधों के उपरान्त, उनका भारत पर प्रभाव अध्ययन योग्य अवश्य प्रतीत होता है। उनकी संताने बर्बर जाति की नहीं वरन सांस्कृतिक रूप से सुसज्जित भारत माँ की ही संताने मानी गयी।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या गुर्जर विदेशी थे जो भारत में हूणों के साथ आये थे, इस प्रश्न के उत्तर को ढूंढने में अनेक विद्वानों ने कार्य किया था जिनमे डॉ भंडारकर, मजूमदार, डॉ संकालिया इत्यादि भी सम्मिलित थे। डॉ भंडारकर ने सर्वप्रथम गुर्जरों को मध्य एशिया से आने के सिद्धांत को दिया था।[319] मजूमदार जी, डॉ भंडारकर के इस मत का समर्थन नहीं करते हैं, उनका मत है कि गुर्जर एक देश को प्रकट करता है जो माउंट आबू के दक्षिणी भाग के राजपुताना की भूमि हेतु प्रयुक्त किया जाता था। इसके अतिरिक्त वो स्थान भी गुर्जर के रूप में जाना गया था जो गुर्जरों द्वारा विजित हुआ था। मजूमदार जी के अनुसार गुर्जर शब्द किसी जनजाति या समूह हेतु प्रयुक्त नहीं हुआ है।[320] इसी प्रकार का मत डॉ संकालिया की गुजरात की उस सूची से मिलता है जिसमें उन्होंने कुछ नामों का उल्लेख किया था जिनका मूल भारतीय नहीं था। उनके अनुसार भाषा के आधार पर यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि गुर्जर, शकों से भी सम्बंधित हो सकते हैं। डॉ संकालिया के अनुसार पांचवी शताब्दी के पूर्व गुर्जर या गुर्जर मंडल शब्दों के प्रमाण नहीं मिलते हैं। एक अन्य अभिलेख में गुर्जर मंडल का प्रमाण मिलता है, जिसमें गुर्जरात, संभवतः वर्तमान गुजरात में दक्षिणी भाग को प्रकट करता है।[321] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारतीय सन्दर्भ में गुर्जरों का प्रमाण, पांचवी शताब्दी में हूणों के साथ ही मिलता है। परिस्थितिजन्य प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि गुर्जर, मूलतः विदेशी थे तथा उनका प्रभाव गुजरात में दृष्टिगत है। हूणों के वंशजों का क्या हुआ, क्या वो भारत भूमि से पूर्णतः मिटा दिए गए या उनका भारतीयकरण हो गया। भारत में उनका सम्मिलन अधिक संभावित प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है की वो हिन्दू जाति व्यवस्था में एक नवीन जाति के रूप में उदित हुए हों , गुर्जर एक ऐसी ही जाति विद्वानों द्वारा मानी गयी है। संस्कृत साहित्यों में गुर्जरों को विदेशी बताया गया है तथा उनके भारत आगमन का समय वही है जो श्वेत हूणों के आगमन का समय है। यह तार्किक प्रतीत होता है कि पांचवी शताब्दी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बर्बर आक्रमणकारी जाति जिसनें भारत भूमि पर शासक की भूमिका भी निभाई थी वो पदच्युत होने के उपरान्त एक पृथक जाति समूह के रूप में हिन्दू धर्म ग्रहण कर भारत में पूर्णतः सम्मिलित हो गया होगा।[322] स्मिथ के अनुसार मुख्यतः पश्चिमोत्तर भारत में पुस्तकों तथा अभिलेखों में प्रायः हूणों के साथ गुर्जरों को भी सम्बोधित किया गया है। राजपूत व परिहार जातियां भी पाचंवी तथा छठीं शताब्दियों में प्रमुख शासक वर्ग की जातियों के रूप में उदित हुई थी जो संभवतः विदेशी आक्रमणकारियों की संतान थी।[323] अग्निकुल सिद्धांत के अनुसार राजपूत जातियाँ परमार, प्रतिहार, चौहान तथा सोलंकी आदि का जन्म दक्षिणी राजस्थान के माउंट आबू की यज्ञ की अग्नि से हुआ है। स्मिथ के अनुसार इस मिथक का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है कि राजपूतों की ये चार जातियाँ परस्पर सम्बंधित हैं तथा सभी का मूल स्थान दक्षिणी राजस्थान है। अग्नि द्वारा शुद्धता की व्याख्या करते हुए वो स्पष्ट करते हैं की अरुबुदा की पहाड़ियों पर विदेशियों की अपवित्रता को दूर करके उन्हें हिन्दू जाति व्यवस्था में प्रवेश मिला।[324] रॉलिंसन ने हूणों द्वारा भारतीय समाज पर पड़े प्रभावों का विस्तृत अध्ययन किया है। उनके अनुसार हूण गुर्जर तथा अन्य जातियाँ जिन्होंने पंजाब के मार्ग से भारत भूमि में प्रवेश किया था तथा जिस स्थान को अपने अधिकार में किया था वो स्थान राजपुताना तथा गुजरात के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने भारत में अपना निवास स्थान स्थापित किया तथा विवाह सम्बन्धों के माध्यम से भारतीय समाज में सम्मिलित होने लगे।[325] हूण के भारत में पतन का एक कारण यह भी था की मध्य एशिया में तुर्कों ने उन्हें क्षीण कर दिया फलतः उनकी शक्ति भारत में भी क्षीण होने लगी थी। अंत में वो भारत में ही स्थानीय लोगों में समाहित हो गए। इस बर्बर जाति का भारत में आगमन इतिहास को परिवर्तित करने वाला सिद्ध हुआ तथा भारतीय समाज पर एक प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगत हुआ। यद्यपि हूणों ने किसी भी स्थायी राज्य को नहीं स्थापित किया था परन्तु गुर्जर तथा राजपूतों के रूप में उनके प्रभाव की महत्ता स्पष्ट होती है। हूणों के वंशज अपने भारतीयकरण के उपरान्त भारत पर भविष्य में होने वाले मुस्लिमों द्वारा आक्रमण किये जाने पर एक प्रमुख शक्ति बल के रूप में आगे आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. 7.3 भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

हूणों के आक्रमण से भारत की अर्थव्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी थी। कुषाणों तथा गुप्त सम्राटों द्वारा अर्जित सम्पदा का ह्रास हो गया था। अपने प्रथम आक्रमण में ही हूणों ने वाराणसी तक के सुख-समृद्धि के क्षेत्रों को व्यापक क्षति पहुँचायी थी। अर्थव्यवस्था की गंभीरता की स्कंदगुप्त तथा अन्य गुप्त शासकों द्वारा प्रदत्त साक्ष्यों से पुष्टि होती है तथा स्वर्ण मुद्राओं में स्वर्ण की गुणवत्ता में भी ह्रास हुआ। गुप्त काल में प्रचलित मुद्राओं पर स्वर्ण कारीगरी स्कंदगुप्त की मृत्यु के उपरांत समाप्त हो गयी।[326] व्यापारिक मार्गों को भी हूणों द्वारा नष्ट किया गया था जिससे मध्य एशिया तथा भारत के मध्य व्यापारिक गतिविधियों में भी समस्या उत्पन्न हो गयी। हूण किसी भी प्रकार के नियम कानून को नहीं मानते थे तथा व्यापारिक कारवां को लूटते व नष्ट कर देते थे। हूणों की बर्बरता का भय व्याप्त हो गया था जिससे वीर तथा अनुभवी व्यापारी भी उनके क्षेत्रों से निकलने में भयभीत रहने लगे। उनकी लूटमार से कुषाण शासकों ने स्वर्ण मुद्राओं की गुणवत्ता में न्यूनता की जिससे विदेशी व्यापारी, व्यापार हेतु अधिक इच्छुक न रहे। वस्तु विनिमय प्रणाली का भी पतन होने लगा था क्योंकि विशाल मात्रा में वस्तुओं को ले जाना कठिन था तथा हूणों की लूटमार का भय भी प्रबल था। इस प्रकार हूणों के कारण व्यापार में अत्यधिक दुर्बलता आयी।[327]

हूणों द्वारा प्रचलित मुद्राओं में नवीनता का अभाव था तथा उन्होंने विजित क्षेत्रों में पूर्व शासकों द्वारा प्रचलित मुद्राओं की भांति ही अपनी मुद्रायें निर्मित करवाई। तोरमाण द्वारा प्रचलित रजत तथा ताम्र मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। मिहिरकुल की रजत मुद्रायें एक प्रकार की ही मिली हैं जो ससानियों द्वारा प्रचलित थी, जिसमें एक ओर राजा की मुकुटधारी आकृति सुसज्जित तथा अरसठ चंद्र के साथ है तथा *जयतु मिहिरकुल* अंकित है। इस मुद्रा के पश्च भाग में अग्नि वेदी का अंकन है।[328](चित्र-21) रजत मुद्राओं के अतिरिक्त मिहिरकुल ने ताम्र मुद्रायें भी प्रचलित करवाई थी जो निम्न प्रकार की थी- कुषाण शैली की, गांधार शैली की, ससानी शैली की तथा गुप्त शैली की। इससे ज्ञात होता है की हूणों ने विजित क्षेत्रों में प्रचलित मुद्राओं की शैली को ही अंगीकार किया था। जब हूणों ने पंजाब का अतिक्रमण किया था उस समय उनकी ससानी प्रकार की मुद्राओं का भारतीयकरण हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था तथा उन पर हिन्दू चिन्हों ने अपना स्थान स्थापित कर लिया था उदाहरणतः शंख, चक्र, त्रिशूल इत्यादि तथा उन पर लिखित भाषा भी ब्राह्मी हो गयी थी।[329] जब हूणों ने पंजाब तथा कश्मीर पर अधिकार स्थापित किया था उस समय उन्होंने कुषाण शैली में ताम्र मुद्रायें प्रचलित करवाई थी। इस प्रकार की मुद्रायें कश्मीर में हिन्दू शासन चलने तक अनवरत रूप से प्रचलित रही। राजतरंगिणी में एक नरेन्द्रादित्य नामक शासक का उल्लेख है जो संभवतः हूण था। पंजाब से भी ये प्रमाण मिले हैं कि उदयादित्य तथा अन्य शासक जिनके नाम में आदित्य था वो हूण ही थे, जिससे ज्ञात होता है पंजाब पर हूणों का बृहद समय तक शासन स्थापित रहा।[330] राजतरंगिणी के अनुसार हिरण्यकुल तथा वासुकुल नामक हूण शासक कश्मीर पर शासन करते थे, मिहिरकुल तथा तोरमाण उनके पश्चात सत्ता में आये थे। यदि यह क्रम सत्य है तो ये दोनों मिहिरकुल द्वितीय तथा तोरमाण द्वितीय होने चाहिए। परन्तु अन्य साक्ष्यों के अभाव में इसकी निश्चितता संदेहजनक है।[331] उत्खनकर्ताओं को अनेक रजत तथा ताम्र मुद्रायें मिली हैं जिन पर विभिन्न हूण शासकों के नामों का अंकन है तथा ये जानकारी भी मिलती है कि उन्होंने अफगानिस्तान, कश्मीर तथा पंजाब क्षेत्र पर शासन किया था। मिहिरकुल तथा तोरमाण ने काबुल घाटी में ससानियों की भांति ही मुद्रायें चलवाई थी जिसके एक भाग में राजा का चिन्ह तथा पश्च भाग में अग्निकुंड का अंकन है। अनेक मुद्राओं पर शाही जाबुल अंकित है तथा अन्य पर तोर शब्द ब्राह्मी लिपि में अंकित है। रजत मुद्राओं में एक ओर अग्निकुंड तथा दूसरी ओर घुड़सवार राजा का अंकन है।[332] गुप्त काल की रजत मुद्राओं से प्रभावित हूण मुद्राओं में एक ओर राजा का मुख अंकित है तथा दूसरी ओर मोर का अंकन है तथा इसके अतिरिक्त विश्व विजेता श्री तोरमाण का अंकन है। तोरमाण द्वारा प्रचलित मुद्रायें राजस्थान, मालवा तथा पंजाब में मिली है जिनके एक ओर राजा का चिन्ह तथा दूसरी ओर अग्निकुंड का अंकन है। (चित्र-22) तोरमाण की मुद्रायें कश्मीर में शताब्दियों तक प्रचलन में रही थी।[333]

इस प्रकार हूणों का भारत में सम्मिलन अन्य विदेशी शासकों की तुलना में अत्यंत विविध है। उनका अधिकांश शासनकाल भारतीय संस्कृति को नष्ट करने में ही प्रयुक्त हुआ था परन्तु अपने शासन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्ति के उपरांत उन्होंने भारत हेतु अपना समूल ही न्योछावर कर दिया था तथा आने वाली शताब्दियों में भारत निर्माण में अपनी महती भूमिका प्रदान की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ सूची :

(1) जैराजभोय, आर. ए., *फॉरेन इन्फ्लुएंस इन एन्सिएंट इंडिया*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1963, पृ. 41- 42।

(2) ऋग्वेद,7/84/4-8।

(3) यजुर्वेद, (अनु.) आर . व्यास,. संस्कृत साहित्य प्रकाशन, 2015, अध्याय-23.श्लोक-27।

(4) *स निर्जित्य मही कृत्स्नां सशैलवनकाननाम।*
आजहार महाराज राजसूयं महाक्रतुम्।
महाभारत, (अनु.) पंडित रामनारायण शास्त्री, प्रथम खंड, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2010, पृ.802।
शकुन्तले तव सुतश्चक्रवर्ती भविष्यति
बलं तेजश्च रूपं च न समं भुवि केनचित्
आहर्ता वाजिमेधस्य शतसंख्यस्य पौरवः
अनेकानि सहस्राणि राजसूयादि भिर्म£ः
स्वार्थं ब्राह्मणसात् कृत्वा दक्षिणामामितां ददत्
महाभारत, वही, पृ. 260।

(5) सागर, के. सी., *फॉरेन इन्फ्लुएंस ऑन एन्सिएंट इंडिया*, नॉदर्न बुक सेंटर, दिल्ली, 1992, पृ.29-30।

(6)-हेनरी, आर. डब्लू., *गोल्डन लीजेंड ऑफ इंडिया*, लूजाक एंड कंपनी, लंदन, 1911, पृ. 6-14।

(7) बाशम, ए. एल., *द वंडर दैट वाज इंडिया*, रूपा पेपर बैक. कलकत्ता, पृ.47-48।

(8) रॉलिन्सन, एच. जी., *इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया एंड द वेस्टर्न वर्ल्ड*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1926, पृ.42-43।

(9) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 43।

(10) शर्मा, जे. पी., *रिपब्लिकस इन एन्सिएंट इंडिया :1500 बीसी - 500 बीसी*, इ. जे. ब्रिल पब्लिशर, लीडेन, 1968, पृ.85-135।

(11) स्मिथ, वी. ए.,द *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*,ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1914, पृ. 36।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(12) विद्याभूषण, एस. सी., *पर्शियन अफ्फिनिटीज ऑफ द लिच्छवीस*, द इंडियन एंटिक्विटी, खंड-37, 1908, पृ.78-90।

(13) एडविन, बी., द *इंडो-आर्यन कंट्रोवर्सी:एविडेंस एंड इनफरेंस इन इंडियन हिस्ट्री*, रूटलेज, ऑक्सफोर्ड, 2005, पृ.341-350।

(14) करसु, सी., सम रिमार्क्स ऑन आर्काइव-लाइब्रेरी सिस्टम्स ऑफ हत्तोसा-बोगजकोय, देरगीपार्क अकेडमिक, 1996 (2) पृ.39-59; फौरनेट, ए., *अबाउट द मितन्नी आर्यन गोड्स*, जर्नल ऑफ इंडो-यूरोपियन स्टडीज, 2010, खंड-38(1-2), पृ.26-40।

(15) फ्लड, जी., *एन इंट्रोडक्शन टू हिन्दुइज़्म,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1996, पृ. 44-47।

(16) सिक, डी., *मित मित (ह)रा स एंड द मिथ्स ऑफ द सन*, न्यूमेन, 2004 खंड-51, पृ. 432-467; इस्फहानी, ए. एफ., *रिलीजियस एंड कल्चरल रिलेशनशिप बिटवीन इंडियन एंड ईरानियन सिविलाइजेशन रीडिंग ऑफ पंचतंत्र एंड केलिलेह व डेमनेह*, जर्नल ऑफ ह्युमेनिटीज एंड सोशल साइंस, 2013 (17) पृ.106-111।

(17) पांडेय, डी. पी., *इकोनोग्राफिकल स्टडी ऑफ द इंडियन सन गॉड*, 1989, पृ.15।

(18) *साम्ब पुराण* (अनु.) एन. शर्मा, प्रफुल्ल प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, अध्याय-26, पृ. 94-95।

(19) स्कॉट, डी. ए., द *ईरानियन फेस ऑफ बुद्धिज्म*, ईस्ट एंड वेस्ट, खंड-40, 1990, पृ.71।

(20) भट्टाचार्य, टी., द *अवेस्ता*, ऋग्वेद एंड ब्रह्मा कल्ट, जर्नल स्टोरेज पब्लिकेशंस, 1970, खंड-51, पृ.9।

(21) स्कॉट, डी. ए., *पूर्वोक्त*, पृ.65।

(22) भट्टाचार्य, टी., *पूर्वोक्त*, पृ.31-50 ; जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 17-22 ; चट्टोपाध्याय, के. सी., (संपा.) वी. एन. मिश्रा, *स्टडीज इन वैदिक एंड इंडो ईरानियन रिलिजन एंड लिटरेचर*, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1976, पृ.121-130।

(23) अनुराधा, एस., *किंग अशोका एंड बुद्धिज्म*, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसाइटी, कैंडी, 1994, पृ.3; स्मिथ, वी. ए., *अशोका: द बुद्धिस्ट एम्परर ऑफ इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1919, पृ.59; शहबाजी, एस., *डेरियस द ग्रेट*, इनसाइक्लोपीडिया ईरानिका, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, 1994 (7) पृ. 41-50।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(24) गैरशेविच आई., द *अवेस्तन हिम तू मिथ्रा*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1959, पृ. 170

(25) मॅकडॉनेल, ए. ए., कीथ, ए. बी., *वैदिक इंडेक्स ऑफ नेम्स एंड सब्जेक्ट्स* (2), जॉन मरे स्ट्रीट, लंदन, 1912, पृ. 250-251।

(26) ऋग्वेद, (अनु.) बिहारीलाल शास्त्री, दयानन्द प्रकाशक, नई दिल्ली, 1976, पृ.461।

ब्राह्मणोऽस्य मुखामासीद्बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥ 12॥

(27) *मनु संहिता* (अनु.) एम. एन दत्त,. एच. सी. दास प्रेस, कलकत्ता, 1909, पृ.9।

(28) वाटर्स, एम., *एन्सिएंट पर्शिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2014, पृ.115।

(29) दलाल, आर., *हिन्दुइज्मः एन अल्फाबेटिकल गाइड*, पेंगुइन बुक्स, गुड़गांव, 2010, पृ.38।

(30) गुइनों, आर., *सिम्बल्स ऑफ सेक्रेड साइंस*, सोफिया पेरेन्निस, बेडफोर्ड, 2004, पृ.320।

(31) शहबाजी, एस., *क्लोथिंग इन द मीडियन एंड अकहमेनिड पीरियड्स*, इनसाइक्लोपीडिया ईरानिका, 2012, खंड-7, पृ.723-737।

(32) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 17-22।

(33) *वही*, पृ. 38-39।

(34) हेरोडोटस, (अनु.) जी. रॉलिंसन, द *हिस्टोरीज़*, रोमन रोड्स मीडिया, आयडहो, पृ. 65।

(35) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ.39।

(36) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ.17-22।

(37) बॉयस, एम., *पार्थियन राइटिंग एंड लिटरेचर*, द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ ईरान, खंड-3(2), कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1983, पृ.1151-1165; वाटर्स, एम., *पूर्वोक्त*, पृ.62।

(38) डीएस (Dias), एम., *ब्राह्मी स्क्रिप्ट इन रिलेशन टू मेसोपोटामियन क्यूनीफॉर्म (Cuneiform)*, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ श्री लंका, खंड- 53, पृ.91-108; बार्नेट, एल. डी., *एन अरमेइक इंस्क्रिप्शन फ्रॉम तक्षशिला*, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1915, पृ. 340-341।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(39) ओल्मस्टेड, ए. टी., *पूर्वोक्त*, पृ. 381; स्मिथ, वी. ए., *पूर्वोक्त*, पृ.128, 139, 144।

(40) पांडेय, आर. बी., *इंडियन पेलियोग्राफी*, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1952, पृ. 56-57।

(41) शास्त्री, एन., *एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज*, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1952, पृ.233।

(42) स्मिथ, वी. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 20-21, 141-142।

(43) हुलत्ज, इ., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-8, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981, पृ.47।

(44) सरकार., डी. सी., *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1942, पृ.171।

(45) पाणिनि, *अष्टाध्यायी*,(अनु.) एस. मिश्र, चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 1998, पृ.91।

(46) महाजन, वी. डी., *एन्सिएंट इंडिया*, एस चंद पब्लिशिंग, दिल्ली, 2016, पृ.270-271; जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 44।

(47) रोलैंड, बी., *आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया: बुद्धिस्ट, हिन्दू*, *जैन*, पेंगुइन पब्लिकेशन, 1977, पृ.42-43।

(48) स्पूनर, डी. बी., *पाटलिपुत्र*, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया ईस्टर्न सर्किल एनुअल रिपोर्ट, 1912, पृ.55।

(49) शास्त्री एन., *ए कम्प्रेहैन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, भाग-2, ओरिएंट लोंगमानस, कलकत्ता, 1957, पृ.41-42 ; फूओक, एल. एच., *बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर*, ग्राफिकल, 2012, पृ.34।

(50) ब्राउन, पी., *इंडियन आर्किटेक्चर*, डी बी तारापोरवाला संस, बॉम्बे, 1959. पृ.8।

(51) *वही*, पृ. 3-11।

(52) शास्त्री एन., *पूर्वोक्त*, भाग-2, पृ.91-92।

(53) हेरोडोटस, द हिस्टोरीज, *पूर्वोक्त*,पृ.219।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(54) व्हाईजेनहोफर(wiesehofer), जे., *एन्सिएंट पर्शिया*, आई. बी. टॉरिस पब्लिशर्स, लंदन, 201, पृ.27।

(55) चिन्नॉक, ई. जे., द *एनाबासिस ऑफ एलेग्जेंडर*, होड्डर एंड स्टोघ्टन(Hodder And Stoughton), लंदन, 1883, पृ.180; *डिओडोरस ऑफ सिसीली*, (अनु.) सी. बी वेल्स,. भाग-8, विलियम हीनमान लिमिटेड, लंदन, 1963, पृ. 351।

(56) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 44-45।

(57) ओल्मस्टेड, ए. टी., *पूर्वोक्त*, पृ.188।

(58) एलन, जे., *कैटेलॉग ऑफ द कॉइन्स ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, ईस्टर्न बुक हाउस, पटना, 1989, पृ. 71।

(59) सरकार, डी.सी., *स्टडीज इन इंडियन कॉइन्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता,1968, पृ. 9।

(60) क्रिब, जे., *इंवेस्टिगेटिंग द इंट्रोडक्शन ऑफ क्वाइनेज इन इंडिया- ए रिव्यु ऑफ रीसेंट रिसर्च*, जर्नल ऑफ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, 1983, पृ. 80-101।

(61) थपलियाल, यू. पी., *फॉरेन एलिमेंट्स इन एन्सिएंट इंडियन सोसाइटी*, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, 1979. पृ.45।

(62) *वही*, पृ. 58।

(63)- *महाभारत*, (अनु.) पंडित रामनारायण शास्त्री, प्रथम खंड, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2010, पृ. 875 ;

ततः सागरकुक्षिस्थान् क्लेछान् परमदरुणान्
पह्लवान् बर्बरंश्चैव किरातान् यावनात्रछकान्
ततो रत्नान्युपादय वशे कृत्वा च पार्थिवान्
न्यवर्तत कुरुश्रेठों नकुलश्चित्रमार्गवित्

मोतीचंद्र, *ज्योग्राफिकल एंड इकनोमिक स्टडीज इन द महाभारत : उपायना पर्व*, यूपी हिस्टोरिकल सोसाइटी, लखनऊ, 1945, पृ. 69-70 ; अग्रवाल, वी. एस., *हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953, पृ. 80-81।

(64) जैराजभोय, आर. ए., *वही*, पृ. 43।

(65) हुलत्ज इ., *वही*, पृ.47।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(66) द *जियोग्राफी ऑफ स्ट्रेबो*, भाग-7, (अनुवाद-लियोनार्ड, एच.,) विलियम हीनमान लिमिटेड, लंदन, 1951, पृ.123।

(67) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ.44।

(68) *वही* ।

(69) रायचौधरी, एच. सी., *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1923, पृ. 136।

(70) मुखर्जी, आर. के., *हिन्दू सिविलाइजेशन*, लोंगमेन ग्रीन्स एंड को, लंदन, 1936, पृ. 293-294।

(71) रॉलिंसन, एच. जी., *पूर्वोक्त*, पृ. 155।

(72) *वही*, पृ.136 ; जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 50-51।

(73) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 66-67।

(74) कोस्मिन, पी. जे., द *लैंड ऑफ द एलीफैंट किंग्स*, हॉवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2014, पृ.33।

(75) *वही*, पृ. 37-38।

(76) डेमिरेल, डी. यू., द *फिलोसोफी ऑफ फिजिकल एजुकेशन एंड स्पोर्ट फ्रॉम अन्सिएंट टाइम्स टू द एनलाइटनमेंट*, यूरोपियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 2(4), 2013, पृ. 191-202; रैपसन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वॉल्यूम 1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ.357।

(77) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 73-74।

(78) उसबियस, *प्रिपरेशन फॉर द गॉस्पेल* (अनु.) ई. एच. गैफ्फोर्ड, ऑक्सफोर्ड, 2006, पृ. 548।

(79) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 84-85 ; सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 69।

(80) *वही*, पृ. 70 ; काक, एस., *एरिस्टोटल एंड गौतम ऑन लॉजिक एंड फिजिक्स*, हिस्ट्री एंड फिलोसोफी ऑफ फिजिक्स, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी, 2005, पृ. 1-16।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(81) ओफलेहरती, डब्लू. डी., *कर्मा एंड रीबर्थ इन क्लासिकल इंडियन ट्रेडिशंस*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 1980, पृ. 151 ; जैराजभोय, आर. ए., पूर्वोक्त, पृ. 79-80।

(82) सॉफ, डब्लू. एच., द *पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी*, लॉन्गमैन्स, ग्रीन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क, 1912, पृ.173।

(83) शास्त्री, एस. एम., *मैक्रिंडल एन्सिएंट इंडिया एज डिसक्राईबद बाई टॉलेमी*, चक्रवर्ती, चटर्जी कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता, 1927, पृ. 346।

(84) रॉय, पी. सी., द *महाभारत*, भाग-2, ओरिएण्टल पब्लिशिंग कंपनी, कलकत्ता, पृ.76।

(85) सागर, के. सी., पूर्वोक्त, पृ. 71-72।

(86) ओब्रायन, जे. एम., *अलेक्जेंडर द ग्रेट : द इनविजिबल एनिमी*, रूटलेज, लंदन, 1994, पृ. 136-137।

(87) *वाल्मीकि रामायण*, (अनु.) जगदीश्वरनंद सरस्वती, विजयकुमार गोविंदराम हंसानन्द, दिल्ली, 2017, पृ.299।

(88) शास्त्री, एन., पूर्वोक्त, पृ. 34-35, 55।

(89 रैपसन, ई. जे., पूर्वोक्त, पृ. 393-395।

(90) *वही*, पृ. 398-403 ; अरोड़ा, यू. पी., *प्राचीन यूनान: इतिहास और संस्कृति*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2011, पृ. 432-433।

(91) ग्रीन, पी., *एलेग्जेंडर ऑफ मैसीडोन*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 2013, पृ. 288।

(92) मैक्रिंडल, जे. डब्लू., द *इनवेजन ऑफ इंडिया बाई अलेक्जेंडर द ग्रेट*, आर्किबाल्ड कांस्टेबल एंड कंपनी, लंदन, 1896, पृ. 117-118।

(93) रैपसन, ई. जे., पूर्वोक्त, पृ. 363।

(94) *श्रीरामचरितमानस*, लंका कांड,2-3।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(95) सिंह, यू., *पोलिटिकल वायलेंस इन एन्सिएंट इंडिया*, हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2017, पृ. 351।

(96) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ 65।

(97) *वही*।

(98) हेरोडोटस, *पूर्वोक्त*, पृ. 455।

(99) जैराजभोय, आर. ए., *पूर्वोक्त*, पृ. 30, 39, 41।

(100) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ.78।

(101) बनर्जी, जी. एन., *हेलेनिज्म इन एन्सिएंट इंडिया*, बटरवर्थ एंड को, कलकत्ता, 1920, पृ. 3-8।

(102) टार्न, डब्लू. डब्लू., *द ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एंड इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1938, पृ. 90।

(103) *वही*, पृ. 265-270।

(104) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 204।

(105) बेहरेन्ड्ट, के. ए., *द बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर ऑफ गांधार*, ब्रिल, लीडन, 2004, पृ.49।

(106) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त*, पृ. 262।

(107) पेसाला, बी., *द डिबेट ऑफ किंग मिलिंद*, इनवर्ड पथ, मलेशिया, 2001, पृ. 177।

(108) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त*, पृ. 264।

(109) मैकविल्ले, टी. सी., *द शेप ऑफ एन्सिएंट थॉट: कम्पेरेटिव स्टडीज इन ग्रीक एंड इंडियन फिलॉसॉफीज*, अलवर्थ प्रेस, न्यूयॉर्क, 2002, पृ. 500-510।

(110) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ.100-101 ; बाजपेई, के. डी., *अर्ली इंस्क्रिप्शन ऑफ मथुरा- ए स्टडी*, पंथी पुस्तक. कलकत्ता, 1980, पृ. 80।

(111) *मज्झिमनिकाय*, (अनु.) बी. नानमोली, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसाइटी, कैंडी, 1995, पृ. 763-765।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(112) अग्रवाल,वी.एस., *इंडिया एज नोन तो पाणिनि*,यूनिवर्सिटी ऑफ़ लखनऊ, लखनऊ, 1953, पृ 78।

(113) *मनुस्मृति*, अध्याय 10 /43 -44।

"पौण्ड्रकाश्चोड्रद्रविडा: काम्बोजा: यवनाश्च ये।

शकास्च पत्तनाश्चैव तथैव चान्ध्रसिंधव:॥"

(114) टार्न, डब्लू. डब्लू., *पूर्वोक्त*, पृ. 358।

(115) *वही*, पृ. 131-138।

(116) सरकार, डी सी., *इंडियन एपिग्राफी*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965, पृ. 330।

(117) प्रसन्ना, आर. बी., *कॉइन स्प्लेंडोर: ए जर्नी इनटू द पास्ट*, अभिनव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 112।

(118) लाहिरी, ए. एन., *कार्पस ऑफ इंडो-ग्रीक कॉइन्स*, पोद्दार पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1965, पृ. 78

(119) *वही*, पृ.103।

(120) ग्लेंन, एस., *ग्रीको-बैक्ट्रियन एंड इंडो-ग्रीक क्वाइंस*, द आर्कियोलॉजी ऑफ द हेलेनिस्टिक फार ईस्ट: ए सर्वे, 2016, पृ.9।

(121)- टिले (tiele), सी. पी., द *रिलिजन ऑफ़ द ईरानियन पीपल* (अंग्रेजी अनुवाद- नरीमन, जी. के.), द पारसी पब्लिकेशन्स. बॉम्बे, 1912, पृ. 159।

(122) होदीवाला(hodiwala), एस. के., *मित्रा-मिओरा*, सर आशुतोष मुखर्जी सिल्वर जुबली, भाग-3, बाप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता 1925, पृ. 433-434।

(123) सागर. के. सी., *फॉरेन इन्फ्लुएंस ऑन एन्सिएंट इंडिया*, नॉर्दर्न बुक सेंटर, नई दिल्ली, 1992, पृ.114।

(124) रैपसन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वॉल्यूम 1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ. 567-569।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(125) जैराजभोय, आर., *फॉरेन इन्फ्लुएंस इन एन्सिएंट इंडिया*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1963, पृ. 151।

(126) चट्टोपाध्याय, एस., *द शकाज इन इंडिया,* विश्व भारती, शांतिनिकेतन, 1955, पृ.80।

(127) कीलहोर्न, एफ., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-8, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981, पृ. 41।

(128) थॉमस, एफ़, डब्लू., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-16, गवर्मेंट ऑफ इंडिया प्रेस, कलकत्ता, 1921, पृ. 236।

(129) *वही*, पृ. 237।

(130) शर्मा, टी. आर., *ए पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ द इम्पीरियल गुप्ताज: फ्रॉम गुप्त टू स्कन्दगुप्त*, कांसेप्ट पुब्लिशिसंग कंपनी, नई दिल्ली, 1989, पृ. 78।

(131) कीलहोर्न, एफ., *पूर्वोक्त,* पृ. 49।

(132) गुप्ता, पी. एल., *कॉइन्स, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया,* दिल्ली, 1969, पृ. 26।

(133) *वही*, पृ.27।

(134) रैपसन, ई. जे., *कैटेलॉग ऑफ़ द कॉइन्स ऑफ़ द आंध्र डायनेस्टी,* द *वेस्टर्न क्षत्रपस,* द *त्रिकुटका डायनेस्टी* एंड द *बोधि डायनेस्टी,* ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, पृ.100-101, 125। ; सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ.142-143।

(135) कीलहोर्न, एफ., *पूर्वोक्त,* पृ.48।

(136) *वही,* पृ. 48 ।

(137) *वही,* पृ. 78-79।

(138) *वही,* पृ.49।

(139 रायचौधरी, एच. सी., *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1928, पृ.268।

(140) सहाय, शिवस्वरूप, *भारतीय पुरालेखों का अध्ययन*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008, पृ. 209-214।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(141) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. -143।

(142) रैप्सन, ई. जे., *पूर्वोक्त*, पृ.81,95।

(143) कारपेंटिअर(charpentier), जे., द *जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1925, पृ. 237-246।

(144) *स्वप्नवासवदत्तम*, (व्याख्याकार) गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2003, पृ. - 209।

स्वामिन्। देव्यपनयेत कृतापराधः खल्वहम्। तत क्षन्तुर्महति स्वामी ॥

(145) कीथ(keith), ए. बी., द *संस्कृत ड्रामा*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1924, पृ. 69-72।

(146) जैन, जे. सी., *प्राकृत साहित्य का इतिहास*, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1961, पृ. 36-38।

(147) *वही* ।

(148) *वही*, पृ. 38।

(149) *वही* ।

(150) *अंगविज्जा*, (संपादन) वी. एस. अग्रवाल, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, बनारस, 1957, पृ.1, 36।

(151) कीलहोर्न, एफ., *पूर्वोक्त*, पृ. 48।

(152) *वही* ।

(153) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. - 145-146।

(154) अय्यर, एन. पी., *कालपरीक्षा*, एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, दिल्ली, 1982, पृ.3।

(155) पिंगरी(*pingree)*, डी., *एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोलॉजी इन इंडिया एंड ईरान*, द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1963, खंड-54, भाग-2, पृ. 234-235।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(156) उपाध्याय, बी. एस., *हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास*, खंड-5, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1957, पृ.709।

(157) कीथ, ए. बी., *ए हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1956, पृ.518।

(158) झारखंडी, एस., *भारतीय ज्योतिष* (अनुवाद), हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ, 1975, पृ.210।

(159) *वही*, पृ. 213-214।

(160) *वही*, पृ. 219।

(161) *वही*, पृ. 220-222।

(162) मार्शल, जे., *तक्षशिला*, भाग-2, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1951, पृ. 694।

(163) मोहन, वी. एम., *द शकाज इन इंडिया एंड देयर इम्पैक्ट ऑन इंडियन लाइफ एंड कल्चर*, चौखम्बा ओरिएंटिलिया,वाराणसी, 1976, पृ.110।

(164) अग्रवाल, वी. एस., *भारतीय कला*, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966, पृ.306।

(165) *कॉइन्स ऑफ़ द शकाज, द नुमिस्मैटिक क्रॉनिकल एंड जर्नल ऑफ़ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी*, भाग 3, खंड-10, 1890, पृ.103-109।

(166)- चटर्जी, ए. के., *ए कम्प्रेहैन्सिव हिस्ट्री ऑफ़ जैनिज़्म*, भाग 1, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर, दिल्ली, 2000, पृ.86-87।

(167) संकालिया एच. डी., *द आर्कियोलॉजी ऑफ गुजरात*, नटवरलाल एंड कंपनी, बॉम्बे, 1941, पृ.117।

(168) मेहता, आर. एन., *एक्सकेवेसन एट देवनीमोरी*, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस सेल्स यूनिट, बड़ोद, 1966, पृ.167।

(169) सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 149।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(170) सालोमन(salomon), आर., *इंडियन एपिग्राफी: ए गाइड टू द स्टडी ऑफ़ इंस्क्रिप्शन्स इन संस्कृत, प्राकृत एंड द अदर इंडो-आर्यन लैंग्वेजेज,* ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड 1998, पृ. 78–89।

(171) देहेजीअ(dehejia), वी., *अर्ली बुद्धिस्ट रॉक टेम्पल्स; ए क्रोनोलॉजी*, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1972, पृ. 177–178।

(172) संकालिया एच. डी., पूर्वोक्त, पृ.47-49।

(173) *वही*, पृ.47।

(174) *वही*, पृ.49।

(175) *वही*, पृ.51।

(176) *वही*, पृ.52।

(177) *वही*, पृ.53।

(178) *वही*, पृ.55।

(179) सेनार्ट, ई., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-8, द डायरेक्टर जनरल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981, पृ. 78-83 ; ली, एच. पी., *बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर*, ग्राफिकल, पृ.108।

(180) मोहन, वी. एम., *पूर्वोक्त*, पृ. 99-100।

(181) रैपसन, ई. जे., *ए कैटेलॉग ऑफ इंडियन कॉइन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम*, द ट्रस्टीज ऑफ ब्रिटिश म्यूजियम, ऑक्सफोर्ड, 1967, पृ. 107।

(182) सेनार्ट, ई., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-8, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981, पृ. 82-83।

(183) *वही*, पृ. 79।

(184) *वही* ।

(185) संकालिया, एच. डी., पूर्वोक्त, पृ.47-49।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(186) सेनार्ट, ई., *पूर्वोक्त*, पृ.49।

(187) मार्शल, जे., *तक्षशिला*, भाग-1, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1975, पृ.57-58।

(188) रायचौधरी, एच. सी., द *अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट*, एंटीक्यूरियन बुकसेलर्स, कलकत्ता, 1936, पृ.165।

(189) *वही*, पृ.161-163।

(190) मार्शल, जे., द *मोनुमेंट्स ऑफ साँची*, भाग 1, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, पृ. 393।

(191) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 152।

(192) कीलहोर्न, एफ., *एपिग्राफिया इंडिका*, भाग-2, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली,1970, पृ. 330-340।

(193) दत्त, एम. एन., *मनु संहिता*, (अनुवाद) एच सी दास प्रेस, कलकत्ता, 1909, पृ.371।

(194) कीलहोर्न, एफ., *पूर्वोक्त*, पृ. 47।

(195) बर्गीस, जे., द *केव टेम्पल्स ऑफ इंडिया* (पूरक), त्रूबनेर एंड कंपनी, लंदन, 1883, पृ. 78।

(196) गार्डनर, पी., द *कॉइन्स ऑफ़ ग्रीक एंड सीथियन्स किंग्स ऑफ़ बैक्ट्रिया एंड इंडिया इन द ब्रिटिश म्यूजियम*, ब्रिटिश म्यूजियम लंदन, 1886, पृ. 59 (प्रस्तावना), 69।

(197) *महाभारत*,भीष्म पर्व, अध्याय 10, श्लोक 27 -28 ।

परिवार्य तु कौरव्य दैर्ध्य ह्रस्वत्वमेव च। जम्बूद्वीपेन संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः ॥ २७ ॥

शाको नाम महाराज प्रजा तस्य सदानुगा। तत्र पुण्या जनपदाः पूज्यते तत्र शंकरः ॥ २८ ॥

(198) मेहता, आर. एन., चौधरी एस एन, *एक्सकेवेसन एट देवनीमोरी*, डिपार्टमेंट ऑफ आर्कियोलॉजी एम एस यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ोदा, बड़ोदा,1966 पृ. 4।

(199) बिसचॉप, पी. सी., *होली ग्राउंड: वेयर आर्ट एंड टेक्स्ट मीट*, गोंडा इंडोलॉजिकल स्टडीज, खंड 20, 2019, पृ. 283 – 297।

(200) फ्लीट, जे., *नोट ऑन ए जैन इंस्क्रिप्शन एट मथुरा*, जर्नल स्टोरेज, 1905, पृ. 635 - 665।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(201) शाह, एन., द *वर्ल्ड ऑफ कॉनकरर्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004, पृ. 47।

(202) स्टीवेंसन, एम., द *हार्ट ऑफ जैनिज्म*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1915, पृ. 13।

(203) फर्गूसन, जे., *हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर*, भाग 2, जॉन मरे अलबमार्ले स्ट्रीट, लंदन, 1910, पृ.31।

(204) चेन,के .,*बुद्धिज़्म इन चाइना*,प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी,1973, पृ . 94।

(205) संकालिया, एच. डी., पूर्वोक्त, पृ.47।

(206) मजूमदार, एम. आर., *हिस्टोरिकल एंड कल्चरल क्रोनोलॉजी ऑफ गुजरात*, ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट, बड़ोदा, 1960, पृ. 91।

(207) संकालिया, एच. डी., पूर्वोक्त, पृ. 47-49।

(208)- कॉइन्स ऑफ द शकाज, द *नुमिस्मैटिक क्रॉनिकल एंड जर्नल ऑफ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी*, भाग 3, खंड-10, 1890, पृ.103-109।

(209) सागर. के. सी., पूर्वोक्त, पृ. 154।

(210) नस्कर, एस. एन., *फॉरेन इम्पैक्ट ऑन इंडियन लाइफ एंड कल्चर*, अभिनव पब्लिकेशंस, 1996, पृ. 193।

(211) वासु, एस. सी., द *अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि*, भाग 2, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962, पृ. 998।

(212) रैपसन, ई. जे., पूर्वोक्त, पृ.182।

(213) भारद्वाज, एच. सी., *आस्पेक्ट्स ऑफ एन्सिएंट इंडियन टेक्नोलॉजी*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979, पृ.140-142।

(214) *अंगविज्जा*, (अनु.) एम. पी., विजया, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, 1957, पृ. 66।

(215) सरकार, डी. सी., *स्टडीज इन इंडियन कॉइन्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968, पृ.12।

(216) गुप्ता, पी. एल., पूर्वोक्त, पृ.56।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(217) *वही*, पृ.48।

(218) *वही*, पृ.51।

(219) चट्टोपाध्याय, एस., *शकाज इन इंडिया*, विश्व भारती शांतिनिकेतन, कलकत्ता, 1955, पृ. 80-81

(220) *वही।*

(221) विजया, एम. पी., *पूर्वोक्त*, पृ. 69।

(222) सेनार्ट, ई., *पूर्वोक्त*, पृ.78 -79।

(223) इसकॉफ, डब्लू. एच., द *पेरिप्लस ऑफ़ द ईरीथियन सी*, लॉन्गमेंस, ग्रीन एंड को, 1912, पृ. 45-46, 53।

(224) बच, एम. ए., *इकनोमिक लाइफ इन एन्सिएंट इंडिया*, भाग-1, आर्य सुधारक प्रेस, 1924, पृ. 176।

(225) लाल, बी. बी., *एग्जामिनेशन ऑफ सम एन्सिएंट इंडियन ग्लास स्पेसिमेन*, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनतेंजीबल कल्चरल हेरिटेज, 1952, पृ. 22।

(226) रिचर्ड, एस., द *अवका इंस्क्रिप्शन एंड द ओरिजिन ऑफ़ द विक्रम एरा*, जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी, खंड-102(1), 1982, पृ. 59 – 68।

(227) गोयल,एस.राम., *प्राचीन भारत का इतिहास*, कुसुमांजलि बुक वर्ल्ड, जोधपुर, 2007, पृ. 677।

(228) *वही*, पृ. 668।

(229) पुरी, बी. एन., *कुषाणास इन इंडिया एंड सेंट्रल एशिया*, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 2014, पृ. 20।

(230) बाशम, ए. एल, *अद्भुत भारत*, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृ. 42।

(231) अश्वघोष, *बुद्धचरित्र*, (अनु.) चौधरी, एस. एन., मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1955, पृ. 7-11

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(232) कालूपहाना, डी. जे., ए *हिस्ट्री ऑफ़ बुद्धिस्ट फिलॉसफी,* यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस, हवाई, 1992, पृ. 160।

(233) *वही*, पृ. 170।

(234) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 254।

(235) श्रीनिवासाचारी, *हिस्ट्री ऑफ़ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1989, पृ.109।

(236) शास्त्री, ए., *द बुद्धिस्ट एजुकेशन इन एन्सिएंट इंडिया: एन एनालिसिस*, जेइटीआईआर, खंड-9(5), 2022, पृ.1।

(237) पुरी, बी. एन., *पूर्वोक्त*, पृ. 226 – 227।

(238) *वही*।

(239) सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 178।

(240) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 254।

(241) गुप्ता, पी. एल., *पूर्वोक्त*, पृ. 29।

(242) सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 179।

(243) रोजेनफील्ड, जे एम, *द डायनेस्टी आर्ट्स ऑफ द कुषान्स,* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले, 1967, पृ. 29।

(244) *वही*, पृ. 31- 32 ; पुरी, बी. एन., *पूर्वोक्त*, पृ. 280 – 281।

(245) पुरी, बी. एन., *पूर्वोक्त*, पृ.280 – 281।

(246) *वही*, पृ.272।

(247) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 254।

(248) उपाध्याय, वी., *प्राचीन भारतीय मुद्राएं,* मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 2016, पृ. -109-110।

(249) *वही*, पृ. -106-108।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(250) रायचौधरी, एच. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 254।

(251) पुरी, बी. एन., *पूर्वोक्त*, पृ. 277- 283।

(252) बाजपेई, के. डी., *इंडियन न्यूमिस्टिक स्टडीज*, अभिनव पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1976, पृ. 32-33

(253) *वही* ।

(254) चट्टोपाध्याय, बी., *द एज ऑफ द कुशानाज ए नुमिस्मैटिक स्टडी*, पंथी पुस्तक, कलकत्ता, 1960, पृ. 60।

(255) *वही*, पृ. 250।

(256) हंटिंग्टन, एच., *कनिष्क पीरियड क्वाइन विथ एन इमेज ऑफ मैत्रेय बोधिसत्व*, जर्नल ऑफ इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, भाग-16, 1993, पृ. 355 – 360।

(257) नागाओ, जी. एम., *माध्यमिका एंड योगाचारः ए स्टडी ऑफ महायान फिलॉसोफिज*, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयोर्क प्रेस, न्यूयोर्क, 1991, पृ. 1।

(258) विलियम्स, पी., *बुद्धिस्ट थॉट*, रूटलेज, लंदन, 2000, पृ.172-176।

(259) स्मिथ, वी. ए., *एन्सिएंट एंड हिन्दू इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1920, पृ. 133।

(260) *वही*, पृ.134-140।

(261) *विष्णु पुराण*, अनुवाद- दत्त, एम. एन., एलीसियम प्रेस, कलकत्ता, 1896, पृ. 230।

(262) *अग्नि पुराण*, भाग-1, संकलन- जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1998, पृ.38।

(263) *वाराह पुराण*, संकलन- जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2003, पृ.133।

(264)-*श्रीमद्भागवत पुराण*, संकलन - जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999, पृ. 29

(265) *नरसिंह पुराण*, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018, पृ. 74।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(266) रैपसन, ई. जे., *पूर्वोक्त*, पृ. 60 - 62।

(267) मेहता, आर. एन., *पूर्वोक्त*, पृ. 145 - 148।

(268)-वाजपेयी, के. डी., *आर्कियोलाजी इन उत्तर प्रदेश*, लखनऊ, 1957, पृ. 3।

(269)- रॉलिन्सन, एच. जी., *इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया एंड द वेस्टर्न वर्ल्ड*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1926, पृ.165।

(270) *वही।*

(271) उपाध्याय, वी., *पूर्वोक्त*, पृ.42 – 43।

(272) बाजपेई, के. डी., *पूर्वोक्त*, पृ.32 – 33।

(273) थापर, आर., *अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्यास*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001, पृ. 267-270।

(274) दलाल, आर., *द रिलीजंस ऑफ इंडिया: ए कॉनसाईस गाइड टू नाइन मेजर फेथ*, पेंगुइन बुक्स, इंडिया, 2010, पृ. 397-398।

(275) उपाध्याय, वी., *पूर्वोक्त*, पृ. 42- 43।

(276) क्विंटनिल्ला, एस. आर., *हिस्ट्री ऑफ अर्ली स्टोन स्कल्पचर एट मथुरा*, ब्रिल, डेनवर, 2010, पृ. 19।

(277) उपाध्याय, वी., *पूर्वोक्त*, पृ. 44।

(278) अग्रवाल, वी.एस., *भारतीय कला*, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966, पृ. 292।

(279) मजूमदार, आर. सी., *द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी*,भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, पृ. 519।

(280) *वही* ।

(281) मार्शल, जे., *द बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ़ गांधार*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1960, पृ.101।

(282) मजूमदार, आर. सी., *पूर्वोक्त*, पृ.520।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(283) सरस्वती, एस .के., *ए सर्वे ऑफ़ इंडियन स्कल्पचर*, नवाना प्रिंटिंग वर्क प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता,1957 पृ. -73 ।

(284) *वही,* पृ. -74।

(285) रॉलिंसन, एच. जी., *इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया एंड द वेस्टर्न वर्ल्ड*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, ब्रिटेन, 1926, पृ.168।

(286) मणि, बी. आर., द *कुषाण सिविलाइजेशन,* बी आर पब्लिशिंग, दिल्ली, 2013, पृ. 123।

(287) अध्या, जी.एल., *अर्ली इंडियन इकोनॉमिक्स*, एशिया पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली, 1966, पृ. 65।

(288) मणि, बी. आर., *पूर्वोक्त,* पृ.118-140।

(289) कन्निंघम, ए., *कॉइन्स ऑफ द इंडो सीथियन्स शकाज एंड कुषाणास*, इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1971, पृ. 320।

(290) हरमट्टा, जे., *हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेसन्स ऑफ सेंट्रल एशिया,* भाग-2, यूनेस्को पब्लिशिंग, फ्रांस,1994, पृ. 280।

(291) कन्निंघम, *कॉइन्स ऑफ़ द कुषाणा*, नुमिस्मेटिक क्रॉनिकल,लंदन, 1892, पृ. 10।

(292) सरकार, डी. सी., *स्टडीज इन इंडियन क्वाइंस*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008, पृ. 8।

(293) गुप्ता, पी.एल., *पूर्वोक्त,* पृ. 36।

(294) *वही,* पृ. 37।

(295) उपाध्याय, वासुदेव, *प्राचीन भारतीय मुद्रायें*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2016, पृ.106।

(296) *वही,* पृ.107।

(297) *वही,* पृ.109।

(298) रेने, जी., *द एम्पायर ऑफ़ द स्टेप्पेस: ए हिस्ट्री ऑफ़ सेंट्रल एशिया*, रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970, पृ.70।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(299) बैक्केर, एच. टी., द *अल्खान, कम्पैनियन टू हुननिक पीपल इन सेंट्रल एंड साउथ एशिया*, 2020, पृ.77।

(300) जोशी, एल. एम., *स्टडीज इन द बुद्धीस्टिक कल्चर ऑफ़ इंडिया*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1987, पृ. 320-321।

(301) हावेल, ई. बी., *ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड, लंदन, 1924, पृ.100।

(302) *वही* ।

(303) ठाकुर, यू., *द हुनाज इन इंडिया*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1967, पृ. 223।

(304) *वही* ।

(305) *वही*, पृ. 236।

(306) *वही*, पृ. 259।

(307) *वही*, पृ. 261-265।

(308) सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 222-223।

(309) मार्शल, जे., *पूर्वोक्त*, पृ. 76-77।

(310) मार्शल,जे ., *तक्षशिला*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली,1975, पृ. 368 -387 ।

(311)- संकलिआ, एच. डी., द *यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा*, बी जी पॉल एंड को पब्लिशर्स, मद्रास, 1934, पृ. 207।

(312) ठाकुर, यू., *पूर्वोक्त*, पृ.225-226।

(313) फ्लीट, जे. एफ., *कार्पस इंस्क्रिपटॉनम इंडिकारुम*, भाग-3, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, सेंट्रल पब्लिकेशन्स ब्रांच, कलकत्ता,1988, पृ.158-160।

(314) *वही*, पृ.161-163।

(315) *वही*, पृ.149-157।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(316)-द्राबू, वी. एन., *सैवागमस: ए स्टडी इन द सोसिओ-इकनोमिक आइडियाज एंड इंस्टीटूशन्स ऑफ कश्मीर,* इंडस पब्लिशिंग, 1990, दिल्ली, पृ.201।

(317) सागर. के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 223।

(318) स्मिथ, वी. ए., *एन्सिएंट एंड हिन्दू इंडिया*, क्लेरेनडॉन प्रेस, 1920, पृ.172-173।

(319) भंडारकर, डी. आर., *फॉरेन एलिमेंट इन हिन्दू पापुलेशन*, ब्रिटिश इंडिया प्रेस, ब्यकुला, 1910, पृ.30, 31।

(320) मजूमदार, आर. सी., *द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल*, द क्लासिकल एज, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1970, पृ. 63-65।

(321) संकालिया, एच. डी., *स्टडीज इन द हिस्टोरिकल एंड कल्चरल जियोग्राफी एंड एथनोग्राफी ऑफ गुजरात,* श्री अरबिंदो आश्रम प्रेस, पांडिचेरी, 1949, पृ. 9-13।

(322) ठाकुर, यू., *पूर्वोक्त*, पृ.234।

(323) स्मिथ, वी. ए., *पूर्वोक्त,* पृ.163, 174, 182।

(324) *वही,* पृ.172-173; हिल्तेबेटेल, ए., *रीथिंकिंग इंडियाज ओरल एंड क्लासिकल एपिक्सः द्रौपदी अमंग राजपूत्स, मुस्लिम्स एंड दलित्स,* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, लंदन, 1999, पृ.439-444।

(325) रॉलिंसन, एच. जी., *ए कॉनसाइज़ हिस्ट्री ऑफ द इंडियन पीपल*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946, पृ.80-90।

(326) ठाकुर, यू., *पूर्वोक्त*, पृ.224-225।

(327) *वही।*

(328) वर्मा, टी. पी., द *इम्पीरियल मौखरीसः हिस्ट्री ऑफ इम्पीरियल मौखरीस ऑफ कनौज एंड हर्षवर्धन,* नोशन प्रेस, चेन्नई, 2018, पृ. 264।

(329) ठाकुर, यू., *पूर्वोक्त*, पृ. 286-287।

(330) गुप्ता, पी. एल., *पूर्वोक्त,* पृ. 60।

(331) सागर, के. सी., *पूर्वोक्त*, पृ. 228।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(332) गुप्ता, पी. एल., पूर्वोक्त, पृ. 59।

(333) ठाकुर, यू., पूर्वोक्त, पृ. 281-296।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 5

उपसंहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय- 5

उपसंहार

भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र ने भारतीय इतिहास और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय सभ्यता की विविधतापूर्ण संस्कृति के विकास में इस क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। सिंधु घाटी सभ्यता और इसके बाद कई अन्य सभ्यताएँ, जैसे पूर्व वैदिक आर्य, हिन्द-यवन, पह्लव , शक, और कुषाण, मुख्य रूप से इस क्षेत्र में केंद्रित थे। भारतीय इतिहास में कई विदेशियों का आगमन हुआ परन्तु , प्राचीन भारत में इन विदेशियों के आने की मुख्य विशेषता यह भी है कि ये विदेशी भारत आये और यहाँ के समाज एवं संस्कृति में विलीन हो गए। उन्होंने न केवल भारत में शासन ही स्थापित किया, बल्कि भारतीय रीति-रिवाज, धर्म, धारणाएं, और जीवन-शैली को भी स्वीकार किया। कुछ विदेशी शासकों, जैसे कनिष्क और मेनाण्डर को, भारतीय उपमहाद्वीप में बौद्ध धर्म के प्रसार के महान संरक्षकों के रूप में गिना जाता है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता को स्वीकार करते हुए, इन विदेशी शक्तियों ने भारतीय संस्कृति पर भी प्रभाव डाला । विदेशी तत्वों के मिश्रण से भारतीय सभ्यता और संस्कृति को एक नया रूप मिला। वास्तव में, विभिन्न बाह्य और आंतरिक तत्वों के संघटन से भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संवर्धन और विकास हुआ है । चूँकि विदेशी जातियां मुख्य रूप से उत्तर-पश्चिमी भारत में बसी थीं, इसलिए भारतीय और विदेशी संस्कृतियों का सम्मिलन मुख्य रूप से वहीं हुआ। उत्तर-पश्चिमी भारत की विशेषता के कारण, इस क्षेत्र के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास का अध्ययन आवश्यक है।

शोध से यह ज्ञात होता है कि मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया से लोग बहुत बड़ी संख्या में भारत पहुँचे और यहाँ के समाज और संस्कृति पर उनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। यह मानना वास्तव में कठिन है कि भारतीय संस्कृति के मूल तत्व किसी भी विदेशी प्रभाव से मुक्त थे। भारत में देश के पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में जहां सबसे अधिक विदेशी रहे , वहां एक विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण हुआ। देश के रूढ़िवादी वर्ग इन क्षेत्रों के निवासियों को वैदिक जीवन शैली से विमुख और सभ्य आचरण से अनभिज्ञ मानते हुए तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। *महाभारत*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कर्ण पर्व में महारथी कर्ण और महाराज शल्य जोकि तत्कालीन मद्र देश के राजा थे, के बीच वार्तालाप इसका उदाहरण है।

600 ई.पू. से 7वीं शताब्दी ई. तक का समय भारतीय इतिहास का एक प्रमुख काल रहा है। इस काल में महाजनपदों और गणराज्यों का उदय हुआ, मगध साम्राज्य की स्थापना हुई, बुद्ध और महावीर के जीवन एवं उनके धर्मों का उत्थान हुआ, पाणिनि की *अष्टाध्यायी* तथा *रामायण* और *महाभारत* की रचना हुई, पारसी और यवनों का आक्रमण हुआ, और कौटिल्य और चंद्रगुप्त मौर्य का उदय इस काल में ही हुआ था। बौद्ध और जैन साहित्य में इस काल में 16 महाजनपदों का वर्णन है, जिनमें पश्चिमोत्तर भारत में दो महाजनपद गांधार तथा कम्बोज थे। मगध नरेश के साथ गान्धार नरेश के संबंध भी महत्वपूर्ण थे। तक्षशिला इस समय शिक्षा और ज्ञान का प्रमुख केंद्र था। जनमेजय ने कुरु पाण्डवों के युद्ध की कथा को तक्षशिला में सुना था। *महाभारत* के संदर्भ का प्रथम उल्लेख पाणिनि की *अष्टाध्यायी* में है। इस प्रकार के विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों ने पश्चिमोत्तर भारत के सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत के पश्चिमोत्तर क्षेत्र की संस्कृति के अध्ययन के लिए उपलब्ध स्त्रोत प्रमुख रूप से साहित्यिक, पुरातात्विक एवं विदेशी यात्रियों के वृतांत हैं। इस काल के इतिहास, संस्कृति, और सामाजिक पहलुओं को समझने में बौद्ध, जैन, और ब्राह्मण साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। तक्षशिला में मार्शल द्वारा किये गए उत्खनन का विस्तृत वर्णन मिलता है। यूनानियों द्वारा सिकन्दर के साथ भारत आने के अनुभवों को लिखा गया है, जिससे हमें उस समय की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इन लेखों में निआर्कस, एरिस्टोबुलस, ओनेसिक्रिटस, और टॉलमी आदि के विवरण हैं, जो कि मूल रूप में लुप्त हो चुके हैं, किंतु स्ट्रेबो, एरियन, प्लूटार्क, जस्टिन, और कर्टियस जैसे यूनानी और रोमन इतिहासकारों द्वारा उनके अनुभवों का सन्दर्भ दिया गया है। इन उद्धरणों के माध्यम से हमें पश्चिमोत्तर भारत के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बाद की राजनीतिक परिस्थिति का विवरण बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलता है। इस काल में, पश्चिमोत्तर भारत में 16 महाजनपदों के दो महाजनपद पश्चिमोत्तर में स्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, साथ ही केकय, मद्रक, त्रिगर्त, और यौधेय जनपद भी थे। मगध में चन्द्रगुप्त मौर्य के नेतृत्व में पूर्वी भारत में एकीकरण की प्रक्रिया चल रही थी, जबकि दूसरी तरफ पश्चिमोत्तर भारत में विकेन्द्रीकरण की भावना का विकास गणतंत्रों में हो रहा था। एक ओर, पूर्व की तरफ छोटे-छोटे राज्य लुप्त हो रहे थे और अखंडता की भावना विकसित हो रही थी, तो दूसरी ओर, पश्चिमोत्तर भारत में छोटे-छोटे राज्य अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए प्रेरित थे। पंजाब और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रांत में छोटे-छोटे राज्यों के बीच संघर्ष की स्थिति ने इन विदेशियों के लिए भारत में आक्रमण को अनुकूल अवसर दिया। भारत के छोटे राज्य स्वतंत्रता के प्रेमी थे परन्तु कमजोर थे। गांधार और कम्बोज जैसे पुराने राज्य अब शक्तिहीन हो चुके थे, और इसलिए भारत को बाह्य आक्रमण का सामना करना पड़ा।

प्राचीन भारत में पारसी, यूनानी, शक, पह्लव, कुषाण तथा हूण आदि विदेशी शक्तियां पश्चिमोत्तर भारत में आयीं, उन्होंने इस क्षेत्र में शासन किया यहां की संस्कृति को प्रभावित किया और स्वयं भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुई । आर्य जब मध्य एशिया से दो शाखाओं में विभक्त हुए थे तो एक शाखा ईरान तथा दूसरी शाखा भारत आयी थी। प्राचीन ईरानी तथा वैदिकयुगीन भारतीय समाज में अनेक समानताएं दिखती हैं। बोगज़कोइ शिलालेख में मितानी तथा हित्ती के राजाओं के मध्य हुई संधि के विषय में साक्ष्य प्राप्त होते हैं जिनमें इन्द्र, मित्र, वरुण, नासत्य तथा अश्विनी कुमार देवताओं को साक्षी बनाया गया था। इन देवताओं तथा वैदिक देवताओं के मध्य अत्यधिक समानताएं मिलती हैं। भारतीय तथा ईरानी भाषा में भी समानता थी तथा दोनों भाषाओं के अनेक शब्द मिलते जुलते थे। प्राचीन ईरानी तथा संस्कृत के शब्दों में समानता देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त भी ईरानी प्रभाव भारतीय समाज में दृष्टिगोचर होता है जो हखामनी साम्राज्य के आक्रमण के पश्चात दृष्टिगोचर हुआ था। फारस के हखामनी साम्राज्य के साइरस ने सर्वप्रथम भारत पर साम्राज्य विस्तार की लालसा से आक्रमण किया था। उसके बाद दारा तथा क्षयार्ष ने भारत पर शासन किया। कालान्तर में हखामनी साम्राज्य ने भारतीय प्रदेशों पर अपना नियंत्रण खो दिया तथा पश्चिमोत्तर भारत में पुनः स्वतंत्र सत्ताएं स्थापित हो गयी। लगभग दो शताब्दियों तक शासन में रहे हखामनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शासकों ने भारतीय समाज को अनेक रूपों में प्रभावित किया था। मौर्य शासकों द्वारा राजदरबार सम्बन्धी अनेक व्यवस्थाएं ईरान की राजदरबार की परम्पराओं से प्रभावित थी। चन्द्रगुप्त द्वारा अपनायी गयी त्यक्ता की परंपरा को इसी कड़ी में समझा जा सकता है । हखामनी सम्राट की भांति ही मौर्य सम्राट को भी ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। लिच्छवि गणतंत्र तथा ईरानी न्याय व्यवस्था की समानताएं भी ईरानी-भारतीय सम्मिलन को बताती है। इन दोनों की न्याय व्यवस्था में इतनी समानताएं थी कि इतिहासकार स्मिथ लिच्छवियों को ईरानी मूल का ही मानते हैं।

भारतीय धर्म पर भी ईरान का प्रभाव दिखाई देता है। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में सूर्य उपासना का वर्णन है। परन्तु मूर्त रूप में सूर्य की पूजा भारत में ईरानी प्रभाव से ही प्रारम्भ हुई थी। वेद तथा अवेस्ता के अनेक शब्दों में समानता देखने को मिलती है। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म में पशुबलि का विरोध, संभव है कि जरथ्रुष्ट धर्म से प्रभावित हो। ईरानी समाज में पुजारी वर्ग मनुष्य के सिर, योद्धा वर्ग हाथ, कृषक समाज पेट तथा शिल्पकार पैरों से सम्बंधित दर्शाये गए थे। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में भी ब्राह्मण को भगवान ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न, क्षत्रिय को हाथों से उत्पन्न, वैश्य को जांघों तथा शूद्र को पैरों से उत्पन्न बताया गया है। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओं में समानता सम्मिलन की प्रगाढ़ता को दर्शाता है। भारत में प्रारम्भ हुई खरोष्ठी लिपि ईरान द्वारा ही प्रभावित थी जो आने वाली अनेक शताब्दियों तक भारत में प्रयुक्त होती रही थी। संभवतः यह ईरानी प्रभाव भारतीय दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मौर्य सम्राटों द्वारा पाटलिपुत्र का निर्माण कार्य करवाया गया था। ईरानी पर्सिपोलिस तथा भारतीय पाटलिपुत्र में अत्यधिक समानताएं देखने को मिलती हैं। ईरानी शिल्पियों ने भारत आकर निर्माण कार्यों में अपना योगदान दिया था। सम्राट अशोक द्वारा निर्मित सारनाथ के शिखर निर्माण में भी ईरानी प्रभाव दिखाई देता है। भारत में मुद्राओं के प्रचलन में भी ईरानी प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। हखामनी शासन के उपरांत, विश्व विजेता सिकन्दर ने पश्चिमोत्तर भारत पर आधिपत्य स्थापित किया था। सिकन्दर द्वारा भारत में सिकन्दरिया, बउकेफला, निकैया तथा सोग्डियाना नामक यवन नगरों की स्थापना की गयी थी जो सांस्कृतिक सम्मिलन हेतु अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। स्थानीय भाषा पर भी यवन प्रभाव देखा जा सकता है। गणित तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खगोलीय विज्ञान के कतिपय शब्द यवन भाषा से प्रभावित थे उदाहरणतः होरा, केंद्र, कोना इत्यादि। भारतीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इस सम्मिलन का विशेष महत्त्व है। सिकंदर एक योद्धा होने के अतिरिक्त अन्य विषयों जैसे खेलकूद तथा दर्शन में भी विशेष रुचि रखता था। जहाँ एक ओर भारतीय सैनिक यवन सेना में सम्मिलित होने के उपरांत खेलकूद से जुड़ गए वहीं दूसरी ओर सिकंदर भारत के ऋषि मुनियों से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। भारत से प्रस्थान करते समय सिकंदर दार्शनिक कालानोस को अपने साथ ही ले गया था परन्तु अप्रिय स्वास्थ्य के कारण कालानोस ने मृत्यु का वरण कर लिया था। भारतीयों ने यवन तर्कशास्त्र का अध्ययन किया था तथा भारतीय न्यायशास्त्र भी अरस्तु की द *प्रायर एनालिटिक्स* से प्रभावित थी। भारतीय तथा यूनानी पुनर्जन्म तथा कार्मिक सिद्धांत के अध्ययन ने यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय में यूनान पर भारतीय प्रभाव था। भारतीयों ने सिकंदर के विषय में नहीं लिखा केवल सिकंदर के साथ भारत आये यूनानियों द्वारा ही सिकंदर के समय की राजनीतिक परिस्थिति को लिपिबद्ध किया गया था। यह यूनानी विवरण तत्कालीन भारतीय इतिहास को जानने का प्रमुख स्रोत है। मौर्य शासकों ने नौसेना का भी संगठन किया था जो स्पष्ट रूप से यवन नौसेना से प्रभावित थी।

सिकंदर के पश्चात् पश्चिमोत्तर की ओर से बख्त्री- यवन शासकों का आगमन हुआ और उनका आगमन सिकंदर की विजय से भी अधिक महत्वपूर्ण था। दो शताब्दियों तक अनेक बख्त्री-यवन शासकों ने भारत पर शासन किया था तथा इस दीर्घ अवधि में अनेक सांस्कृतिक सम्मिलन संबंधी विषयों को रेखांकित किया जा सकता है। यह सम्मिलन निसंदेह ही प्रथम दो विदेशी क्रमशः ईरानी तथा सिकंदर से अधिक प्रभावी था। सम्राट अशोक के उपरांत हिन्द यवन शासकों ने बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में महती भूमिका निभाई थी। मिनाण्डर हिन्द यवन शासकों में सर्वाधिक प्रसिद्ध थे जो *मिलिंदपञ्ह* के अनुसार बौद्ध अर्हत भी बने थे। इन्हें बौद्ध ग्रंथो में बौद्ध धर्म के रक्षक के रूप में भी बताया गया है। इनके विषय में *मिलिंदपञ्ह* से ज्ञात होता है जो बौद्ध प्रचारक नागसेन तथा यवन शासक मिनाण्डर के मध्य हुए वार्तालाप का विवरण है। सम्राट अशोक के उपरांत मिनाण्डर द्वारा स्तूप के निर्माण कार्य में सहयोग दिया था। हिन्द यवन शासक अगाथोक्लीज ने भागवत धर्म में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष उदारता प्रदर्शित की थी उनके सिक्कों पर संकर्षण बलराम का अंकन है तथा उनके सिक्कों पर स्तूप का भी अंकन मिलता है। यवन मुद्राएं विश्व प्रसिद्ध थी तथा अपने शासनकाल में भारत में मुद्रा निर्माण की तकनीकी में उच्च कोटि का विकास हुआ था। भारतीय मुद्राओं पर उत्कीर्ण लेख में, यूनानी के साथ साथ खरोष्ठी लिपि का भी व्यापक प्रयोग हुआ था जो इस तथ्य का द्योतक है कि गांधार क्षेत्र के सामान्य लोगों में प्रचलित महत्वपूर्ण भाषा खरोष्ठी थी न कि यूनानी।

शक शासन व्यवस्था में क्षत्रपों का विशेष महत्त्व था तथा इस परंपरा को भारत में भी प्रयोग में लाया गया था। शक शासनकाल में संस्कृत भाषा की उन्नति के प्रमाण प्राप्त होते हैं। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख इसका सुंदर उदाहरण है। यह अभिलेख शक शासन काल में संस्कृत के विस्तार एवं विस्तृत संस्कृत साहित्य के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। रुद्रदामन के पश्चात भी शकों ने शिलालेख में संस्कृत का उपयोग जारी रखा था। देवनी मोरी से प्राप्त अवशेष में संस्कृत भाषा के साथ - साथ प्राकृत भाषा का प्रभाव भी है। संस्कृत नाट्यकला की उन्नति में भी शक शासकों का योगदान था तथा स्वामिन भद्रमुख आदि शब्द क्षत्रप राजदरबार से लिए गए थे। मथुरा में जैन धर्म की संगीति भी शक शासनकाल में हुई थी। जिनमें जैन धर्म के भीतर चले आ रहे विरोधाभाषों को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था। शक क्षत्रपों द्वारा शक सम्वत प्रयोग में लाया गया था तथा खगोशास्त्रीय तथा ज्योतिषीय गणना हेतु शक सम्वत को आधार के रूप में लिया गया था। प्रमुख भारतीय ज्योतिष संकलन *सिद्धांत-पंचक* पर विदेशी प्रभाव को अनेक विद्वान स्वीकार करते हैं। वाराहमिहिर कृत पंच सिद्धांतिका में रोमक तथा पौलिश सिद्धांत में विदेशी प्रभाव देखने को मिलता है। शकों ने भारतीय धर्मों को पर्याप्त संरक्षण दिया था तथा अनेक बौद्ध एवं जैन गुफाओं का निर्माण करवाया तथा दानादि कार्य किये थे।

कुषाण वंश के शासनकाल में का भारत में सांस्कृतिक सम्मिलन एक वरदान के रूप में देखा जा सकता है। कनिष्क इस वंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक था । वह शक सम्वत का प्रवर्तक था। अश्वघोष, नागार्जुन, वसुमित्र, पार्श्व, चरक जैसे विद्वानों ने कुषाण शासन में ही अपने-अपने क्षेत्र में प्रसिद्धि पायी थी। कुषाण विद्वानों का आदर करते थे तथा कुषाण शासकों ने विद्वानों हेतु अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य में उचित वातावरण उपलब्ध कराया था । अनेक विद्वानों को कुषाण राजदरबार में आश्रय प्राप्त हुआ था। जिससे प्रेरणा पाकर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने भी अपने दरबार में विद्वानों को स्थान दिया था जो नवरत्न के रूप में इतिहास में प्रसिद्ध हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तों के समृद्ध और सुदृढ़ शासन में कुषाणों का अप्रत्यक्ष योगदान रहा था। कुषाण शासकों ने संस्कृत के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी कुषाण काल में बौद्ध विद्वानों ने भी संस्कृत का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया था। संस्कृत व्याकरण कुषाण काल में अधिक समृद्ध हुई थी।

कनिष्क अत्यंत उदारवादी था तथा सभी धर्मों का आदर करता था। कनिष्क की इसी उदारता से हर्षवर्धन भी प्रभावित हुआ था तथा उसने बौद्ध तथा हिन्दू देवताओं को अपनी उपासना में सम्मिलित किया था। कनिष्क के समय कश्मीर के कुण्डलवन में बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था जिसमें विभिन्न बौद्ध शाखाओं के मध्य चले आ रहे विवादों के समाधान हेतु प्रयास किया गया। कुषाण काल में बुद्ध को विष्णु का अवतार मानने की परंपरा प्रारम्भ हुई थी। मथुरा कला तथा गांधार कला का सर्वांगीण विकास कुषाण काल में ही संभव हो सका था। मूर्ति कला की दृष्टि से कुषाणकाल अत्यंत प्रभावशाली रहा था। जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्म से सम्बंधित उच्च कोटि की मूर्तियों का निर्माण मथुरा तथा गांधार में कुषाण काल में हुआ था। मूर्तियों के अतिरिक्त, कुषाण वंश की मुद्राओं पर भी विभिन्न धर्मों एवं संस्कृतियों के तत्व दिखाई देते हैं। कुषाणों के शासनकाल में अनेक ईरानी, हिन्दू तथा यवन देवताओं का अंकन उनकी मुद्राओं से प्राप्त होता है।

हूणों का भारत में आगमन सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यंत घातक रहा था। उत्कृष्ट कलाकृतियों, बौद्ध विहारों व मंदिरों को उन्होंने बर्बरतापूर्वक नष्ट कर दिया था महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य भी हूणों की बर्बरता की भेंट चढ़ गए थे। परन्तु कुछ समय के पश्चात उनका भारतीय समाज में सम्मिलन प्रारम्भ हो गया था तथा हिन्दू धर्म मुख्यतः शैव धर्म में उनकी श्रद्धा बढ़ने लगी थी। कुछ विद्वान गुर्जरों को भी हूणों का वंशज मानते हैं। इस प्रकार गुर्जर तथा राजपूतों के पूर्वजों के रूप में हूण इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। हूणों के वंशज अपने भारतीयकरण के उपरान्त भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भविष्य में होने वाले मुस्लिमों द्वारा आक्रमण किये जाने पर एक प्रमुख शक्ति बल के रूप में आगे आये।

कालान्तर में हूण भारतीय समाज में घुल मिल गए थे तथा उनकी मुद्राओं में शंख, चक्र, त्रिशूल इत्यादि का अंकन देखा जा सकता है। यह मुद्राएं उनकी शैव तथा वैष्णव सम्प्रदाय में निष्ठा को प्रदर्शित करती है। यशोधर्मन का मंदसौर पाषाण अभिलेख स्पष्ट करता है कि हूण सम्राट मिहिरकुल केवल शिव के सम्मुख ही सिर नवाता था। इस प्रकार हूणों का भारत में सम्मिलन उनके द्वारा प्रदर्शित बर्बरता के उपरांत हुआ था परन्तु इस सम्मिलन के उपरांत उन्होंने भारत कि रक्षा हेतु अपना अमूल्य योगदान दिया था।

इस प्रकार ये विदेशी शक्तियां भारत के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी थी तथा भारत की विशिष्ट संस्कृति के निर्माण में उनके योगदान की उल्लेखनीय भूमिका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

मूल-ग्रन्थ

ऋग्वेदः (अनु.) बिहारीलाल शास्त्री, दयानन्द प्रकाशक, नई दिल्ली, 1976।

यजुर्वेद : (अनु.) आर .व्यास, संस्कृत साहित्य प्रकाशन, 2015।

अथर्ववेद : (अनु.) पं रामस्वरूप शर्मा गौड़, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2003।

ऐतरेय ब्राह्मण : (अनु.) सुधाकर मालवीय, तारा प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी, 1983।

शतपथ ब्राह्मण : (अनु.) पं गंगाप्रसाद उपाध्याय, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2010।

गोपथ ब्राह्मण : (अनु.) पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी, व्रजजीवन प्राच्य भारती ग्रन्थमाला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1999।

वाल्मीकि रामायण : (अनु.) जगदीश्वरनंद सरस्वती, विजयकुमार गोविंदराम हंसानन्द, दिल्ली, 2017, पृष्ठ- 299।

महाभारत : (अनु.) पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय राम, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1967 ।

वायु पुराण : (अनु.) रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री ; हिंदी साहित्य सम्मलेन , प्रयाग , 1987 ।

विष्णु पुराण : (अनु.) गुप्त एम., गीताप्रेस, गोरखपुर, 1987।

विष्णु पुराण : (अनु.) दत्त, एम. एन., एलीसियम प्रेस, कलकत्ता, 1896।

अग्नि पुराण : (अनु.) जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1998।

वाराह पुराण : (अनु.) जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2003।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरसिंह पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018 ।

श्रीमद्भागवत पुराण : (संकलन) - जे, एल., शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1999।

श्रीमदभागवतम पुराण : (अनु.) पं रामतेज पांडेय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2004।

श्री हरिवंश पुराण : (अनु.) रामतेज पांडे, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान , दिल्ली , 2006 ।

मार्कण्डेयपुराण : चौखम्बा विद्याभवन , वाराणसी, 2009 ।

साम्ब पुराण : (अनु.) शर्मा, एन., प्रफुल्ल प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, 1945।

भविष्य पुराण : (व्याख्याकार) एस.एन. खंडेलवाल ,चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान , दिल्ली , 2017।

मत्स्य पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर, 2018 ।

काव्यमीमांसा : (अनु.) गंगासागर राय , चौखम्बा विद्याभवन ,वाराणसी , 2007 ।

राजतरंगिणी : (अनु.) रघुनाथ सिंह, हिंदी प्रचारक संस्था , वाराणसी, 1970।

रघुवंशमहाकाव्यम : (अनु.) हरगोविंद मिश्र ,चौखम्बा संस्कृत संस्थान ,वाराणसी , 2007 ।

नैषधीयचरितम : (अनु.) शेषराज शर्मा ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन , वाराणसी , 2012 ।

हर्षचरितम : (अनु.) जगन्नाथ पाठक ,चौखम्बा विद्याभवन , वाराणसी , 2005 ।

महाभाष्य : (अनु.) सुरेंद्र नाथ दासगुप्ता, इंडियन कौंसिल ऑफ़ फिलोसोफिकल रिसर्च, 1991।

वृहत्संहिता : (व्याख्याकार) पं अच्युतानंद झा , चौखम्बा विद्याभवन ,वाराणसी , 2011।

मज्झिमनिकाय : (अनु.) , राहुल सांस्कृतायन , महाबोधि सभा सारनाथ , वाराणसी , 1933।

मज्झिमनिकाय : (अनु.) बी. नानमोली, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसाइटी, कैंडी, 1995।

स्वप्नवासवदत्तम : (व्याख्याकार) गंगासागर राय , चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2003

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगविज्जा : (संपादन) वी. एस. अग्रवाल, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, बनारस, 1957

अश्वघोष, बुद्धचरित्र : (अनु.)चौधरी, एस. एन., मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1955

मनु संहिता : (अनु.) दत्त, एम. एन., एच. सी. दास प्रेस, कलकत्ता, 1909,

अष्टाध्यायी : (अनु.) मिश्र, एस., चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 1998

द हिस्टोरिज : (अनु) रॉलिंसन, जी., रोमन रोड्स मीडिया, आइडहो, 2013।

सहायक ग्रन्थ

- अग्रवाल, वी. एस., *पाणिनिकालीन भारतवर्ष* , चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1996।
- अग्रवाल, वी. एस., *हैंडबुक ऑफ द स्कल्पचर्स इन द कर्जन म्यूजियम ऑफ आर्कियोलॉजी* , सुपरिटेंडेंट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, यूनाइटेड प्रॉविन्सेस, इलाहाबाद, 1939।
- अग्रवाल, वी. एस., *हर्षचरित-एक सांस्कृतिक अध्ययन*, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953।
- अग्रवाल, वी. एस., *भारतीय कला*, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966।
- अली, एस. एम., *द जियोग्राफी ऑफ पुराणस*, पीपल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966।
- अरोड़ा, यू. पी., *प्राचीन यूनान इतिहास और संस्कृति*, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2011 ।
- ओल्मस्टेड, ए. टी., *हिस्ट्री ऑफ द पर्शियन एम्पायर*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1948।
- अध्या, जी.एल., *अर्ली इंडियन इकोनॉमिक्स*, एशिया पब्लिशिंग हाउस ,दिल्ली, 1966।
- ओफलेहरती, डब्लू. डी., *कर्मा एंड रीबर्थ इन क्लासिकल इंडियन ट्रेडिशंस*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 1980।
- ओब्रायन, जे. एम., *अलेक्जेंडर द ग्रेट- द इनविजिबल एनिमी*, रूटलेज, लंदन, 1994।
- अनुराधा, एस., *किंग अशोका एंड बुद्धिज्म*, बुद्धिस्ट पब्लिकेशन सोसाइटी, कैंडी, 1994।
- अय्यर, एन. पी., *कालपरीक्षा* , एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, दिल्ली, 1982।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- इसकॉफ, डब्लू. एच., *द पेरीप्लस ऑफ़ द ईरीथियन सी*, लॉन्गमेंस, ग्रीन एंड को, 1912।
- गैफ्फोर्ड, ई. एच., *प्रिपरेशन फॉर द गॉस्पेल* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ,लंदन , 2006 ।
- उपाध्याय, बी. एस., *हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास*, खंड-5, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1957 ।
- उपाध्याय , वी., *प्राचीन भारतीय मुद्राएं*, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 2016।
- ऐलन, जे., कैटेलॉग ऑफ द कॉइन्स ऑफ एन्सिएंट इंडिया, ईस्टर्न बुक हाउस, पटना, 1989।
- एडविन, बी., *दा इंडो-आर्यन कंट्रोवर्सी, एविडेंस एंड इनफरेंस इन इंडियन हिस्ट्री*, रूटलेज, ऑक्सफोर्ड, 2005।
- कन्निघम, ए., *द एन्सिएंट जियोग्राफी ऑफ़ इंडिया* ,त्रूबनार एंड कंपनी, लंदन, 1871।
- कन्निंघम, ऐ., *कॉइन्स ऑफ द इंडो-सीथियन्स, शकाज एंड कुशानाज*, इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1971।
- कन्निघम , *कॉइन्स ऑफ़ द कुषाणा* , नुमिस्मेटिक क्रॉनिकल ,लंदन , 1892।
- किंग, एल. डब्लू., द स्कल्प्चर एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ़ बेहिस्तून, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1907।
- कैम्पबेल, जे. सी., बॉम्बे गैजेटियर, खंड-1, भाग-1, गवर्मेंट सैन्ट्रल प्रेस, बॉम्बे, 1896।
- कुहत, ऐ., *दा एन्सिएंट नियर ईस्ट*, रूटलेज, 1995।
- कारनी, ऐ., *ओल्यिम्पअस : मदर ऑफ एलेग्जेंडर द ग्रेट*, रूटलेज, न्यूयॉर्क, 2006।
- कुरैशी, एम. एच., *कैटेलॉग ऑफ द म्यूजियम ऑफ आर्किओलोजी एट साँची*, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1922।
- *बाणभट्ट कृत हर्षचरित* , (अनु.) पी. वी. केन, विल्सन कॉलेज, बॉम्बे, 1918 ।
- कुलक, एच., *ए हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, रूटलेज, लंदन, 1998 ।
- कोस्मिन, पी. जे., *द लैंड ऑफ द एलीफैंट किंग्स*, हॉवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2014।
- काक, एस., *एरिस्टोटल एंड गौतम ऑन लॉजिक एंड फिजिक्स*, हिस्ट्री एंड फिलोसोफी ऑफ फिजिक्स, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी, 2005 ।
- कारपेंटिअर(charpentier), जे., *द जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड* , कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1925।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- कीथ, ए. बी., द *संस्कृत ड्रामा* , ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1924।
- कीथ, ए. बी., ए *हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1956।
- कालूपहाना, डी. जे., ए *हिस्ट्री ऑफ़ बुद्धिस्ट फिलॉसफी*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई प्रेस, हवाई, 1992।
- क्विंटनिल्ला, एस. आर., *हिस्ट्री ऑफ अर्ली स्टोन स्कल्पचर एट मथुरा*, ब्रिल, डेनवर, 2010।
- गोयल, एस.राम., प्राचीन भारत का इतिहास , कुसुमांजलि बुक वर्ल्ड, जोधपुर, 2007।
- गैजर, डब्लू., *महवामसा*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. लंदन, 1912।
- गुप्ता, पी. एल., *कुषाणा क्वाइंस एंड हिस्ट्री*, डी के प्रिंटवर्ल्ड, दिल्ली, 1994।
- गुप्त, पी.एल., *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2011।
- गुप्त, पी.एल., *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख* (भाग 2) , विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2013।
- गुप्त, पी. एल., *कॉइन्स, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया*, दिल्ली, 1969।
- गोल्डमैन, आर. पी., द *रामायण ऑफ वाल्मीकि, भाग-1*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 1990।
- गैजेरानी, एस., द *सिस्तानी साईकल ऑफ एपिक्स एंड ईरांस नेशनल हिस्ट्री: ऑन द मार्जिन्स ऑफ हिस्टोरिओग्राफी*, ब्रिल, लीडेन, 2015।
- गार्डनर, पी., द *कॉइन्स ऑफ द ग्रीक एंड सीथियन्स किंग्स ऑफ बैक्ट्रिया एंड इंडिया इन द ब्रिटिश म्यूजियम*, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, 1886।
- ग्रोसट(Grausset), आर., द *एम्पायर ऑफ द स्टेप्स: ए हिस्ट्री ऑफ सेंट्रल एशिया*, रुत्गेर्स(Rutgers) यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूजर्सी, 1970।
- गुइनों, आर., *सिम्बल्स ऑफ सेक्रेड साइंस*, सोफिया पेरेन्निस, बेडफोर्ड, 2004।
- गैरशेविच आई., द *अवेस्तन हिम तू मिथ्रा*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1959।
- ग्रीन, पी., *एलेग्जेंडर ऑफ मैसेडोन*, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, कैलिफोर्निया, 2013।
- ग्लेंन, एस., *ग्रीको-बैक्ट्रियन एंड इंडो-ग्रीक क्वाइंस द आकिओलोजी ऑफ द हेलेनिस्टिक फार ईस्ट: ए सर्वे*, 2016।
- घोष, एस., *फ्रॉम दा ऑक्सस टू इंडस*, प्राइमस बु, दिल्ली, 2017।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- घिरशमन, आर., *ईरान फ्रॉम द अरलीएस्ट टाइम्स टू द इस्लामिक कनक्वेस्ट*, पेंगुइन बुक्स, बाल्टिमोर, 1965।
- चक्रबर्ती, के., *सोसाइटी, रिलिजन एंड आर्ट ऑफ कुषाण इंडिया*, के. पी, बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 1930।
- मोतीचंद्र , *ज्योग्राफिकल एंड इकनोमिक स्टडीज इन द महाभारत* , उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी , लखनऊ , 1945 ।
- चटर्जी, ए. के., *ए कम्प्रेहैन्सिव हिस्ट्री ऑफ़ जैनिज़्म*, भाग 1, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर, दिल्ली, 2000 ।
- चटोपाध्याय, एस., *द शकाज इन इंडिया*, विश्वभारती शांतिनिकेतन, कलकत्ता, 1955 ।
- चट्टोपाध्याय, एस., *सम अर्ली डाईनेस्टीज ऑफ साउथ इंडिया*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1974 ।
- चट्टोपाध्याय, के. सी., *स्टडीज इन वैदिक एंड इंडो ईरानियन रिलिजन एंड लिटरेचर*, भारतीय विद्या प्रकाशन , वाराणसी, 1976।
- चट्टोपाध्याय, बी., *द एज ऑफ द कुशानाज ए नुमिस्मैटिक स्टडी* , पंथी पुस्तक, कलकत्ता, 1960।
- चिन्नॉक, ई. जे., *द एनाबासिस ऑफ एलेग्जेंडर*, होड्डर एंड स्टोघ्टन, लंदन, 1883।
- जैरज़भोय, आर., *फॉरेन इन्फ्लुएंस इन एन्सिएंट इंडिया*, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बॉम्बे, 1963।
- जोंस, एच, एल., *द जियोग्राफी ऑफ स्ट्रेबो*, खंड-5, विलियम हीनमान, लंदन, 1961।
- जोंगेवार्ड, डी., *कुषाण, कुषाणों-सासनीयन एंड कीदारित कॉइन्स*, अमेरिकन नुमिस्मैटिक सोसाइटी, न्यूयॉर्क, 2015।
- जैन, के. सी., *मालवा थ्रू एजेस*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1972 ।
- जैन, जे. सी., *प्राकृत साहित्य का इतिहास* , चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1961 ।
- जोशी, एल. एम., *स्टडीज इन द बुद्धीस्टिक कल्चर ऑफ़ इंडिया*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1987।
- झारखंडी, एस., *भारतीय ज्योतिष* (अनुवाद), हिंदी समिति, उत्तर प्रदेश शासन लखनऊ, 1975।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- टार्न, डब्लू. डब्लू., द *ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया एंड इंडिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1938।
- टॉने, सी. एच., *मालविकाग्निमित्र*, ठक्कर स्पिंक एंड को, कलकत्ता, 1875।
- टाईशन, यू., *सिनो-प्लेटोनिक पेपर्स, ए स्टडी ऑफ शक हिस्ट्री*, यूनिवर्सिटी ऑफ पेनसिलवेनिया, फिलेडैल्फिया, 1998।
- टिले (tiele), सी. पी., द *रिलिजन ऑफ़ द ईरानियन पीपल*, द पारसी पब्लिकेशन्स. बॉम्बे, 1912।
- ठाकुर, यू., द *हुनाज इन इंडिया*, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी,1967।
- डे, एन. एल., *ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ़ एन्सिएंट एंड मैडिवल इंडिया*, लूज़ाक एंड कंपनी, लंदन, 1927।
- डैनिएल्स, पी. टी., *फ्रॉम साइरस टू एलेग्जेंडर: ए हिस्ट्री ऑफ द पर्शियन एम्पायर*, आईजेनब्राउन्स, इंडिआना, 2002।
- डेविड्स, टी. डब्लू., द *क्वेश्चनस ऑफ किंग मिलिंद*, क्लैरेडों प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1890।
- डिजाजी, एम. जी., *रिमार्क्स ऑन द लोकेशन ऑफ द प्रोविंस ऑफ पार्थिया इन द ससानियन पीरियड*, ब्रिटिश इंस्टिट्यूट ऑफ पर्शियन स्टडीज, विएना, 2012।
- डॉबसन, जे. एफ., द *ग्रीक ओरेटर्स*, लाइब्रेरीज प्रेस, न्यूयॉर्क, 1967।
- तोलमन, एच. सी., *ए गाइड टू द ओल्ड पर्शियन इंस्क्रिप्शन्स*, अमेरिकन बुक कंपनी, न्यूयॉर्क, 1893।
- थपलियाल, यू. पी., *फॉरेन एलिमेंट्स इन एन्सिएंट इंडियन सोसाइटी*, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1979।
- थापर, आर., *अर्ली इंडिया: फ्रॉम द ओरिजिन्स टू एडी 1300* , पेंगुइन बुक्स, दिल्ली, 2002।
- थापर, आर., *अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ द मौर्यास*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 2001।
- द्राबू, वी. एन., *सैवागमस: ए स्टडी इन द सोसिओ-इकनोमिक आइडियाज एंड इंस्टीटूशन्स ऑफ कश्मीर*, इंडस पब्लिशिंग, दिल्ली, 1990।
- देबेवॉइस(Debevoise), एन. सी., *ए पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ पार्थिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1938।
- दलाल, सी. डी., *काव्यमीमांसा (राजशेखर)*, ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट, बड़ोदा, 1934।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- दलाल, आर., हिन्दुइज्म: एन अल्फाबेटिकल गाइड, पेंगुइन बुक्स, गुड़गांव, 2010।
- दलाल, आर., द *रिलीजंस ऑफ इंडिया: ए कॉनसाईस गाइड टू नाइन मेजर फेथ*, पेंगुइन बुक्स, इंडिया, 2010।
- दरयाई(Daryaee) ,टी., *किंग ऑफ द सेवन क्लीमेंस: ए हिस्ट्री ऑफ द एन्सिएंट ईरानियन वर्ल्ड (3000 बीसीई - 651 सीई)* ब्रिल, 2021 ।
- दण्डामेव, एम. ए., *ए पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ द अकहमेनिड एम्पायर* (अनुवाद- वोगलसंग, डब्लू. जे.,), ब्रिल, न्यूयॉर्क, 1989, पृष्ठ-147 ।
- देहेजीअ(dehejia), वी., *अर्ली बुद्धिस्ट रॉक टेम्पल्स; ए क्रोनोलॉजी*, कॉर्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 1972।
- दत्त, एम. एन., मनु संहिता (अनुवाद), एच. सी. दास प्रेस, कलकत्ता, 1909।
- नारायण, ए. के., द इंडो ग्रीक्स, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, 1957।
- नस्कर, एस. एन., *फॉरेन इम्पैक्ट ऑन इंडियन लाइफ एंड कल्चर*, अभिनव पब्लिकेशंस, 1996।
- नागाओ, जी. एम., *माध्यमिका एंड योगाचार: ए स्टडी ऑफ महायान फिलॉसोफिज*, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयोर्क प्रेस, न्यूयोर्क, 1991।
- पेसाला(pesala), बी., द *डिबेट ऑफ किंग मिलिंद*, इनवर्ड पाथ, पेनांग, 2001।
- पोलार्ड, ई., *वर्ल्डस टुगेदर, वर्ल्डस अपार्ट*, भाग-1. नॉर्टन एंड कंपनी, न्यूयॉर्क, 2015।
- पांडेय, आर. बी., *विक्रमादित्य,* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1960 ।
- पांडेय, आर. बी., *इंडियन पेलियोग्राफी, भाग-1*, मोतीलाल बनारसीदास, 1952 ।
- पांडेय, डी. पी., इकोनोग्राफिकल स्टडी ऑफ द इंडियन सन गॉड, 1989 ।
- पूरी, बी, एन., *इंडिया अंडर कुशांस*, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1965 ।
- पुरी, बी. एन., *कुषाणास इन इंडिया एंड सेंट्रल एशिया* ,मुंशीराम मनोहरलाल प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली,2014 ।
- पराशर, पी., *कश्मीर द पैराडाइस ऑफ एशिया*, स्वरुप एंड संस, दिल्ली, 2004 ।
- परपोला, ए., द *रूट्स ऑफ़ हिन्दुइज़्म*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, 2015 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- फ्लीट, जे., *नोट ऑन ए जैन इंस्क्रिप्शन एट मथुरा*, जर्नल स्टोरेज, 1905।
- फर्गूसन, जे., *हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर* , भाग 2, जॉन मरे अलबमार्ले स्ट्रीट, लंदन, 1910।
- फ्लड, जी., *एन इंट्रोडक्शन टू हिंदुइज्म*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1996।
- फूओक, एल. एच., बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर, ग्राफिकल, 2012।
- बाशम, ए, एल., *पेपर्स ऑन द डेट ऑफ कनिष्का*, ब्रिल, लंदन, 1960।
- बाशम, ए. एल, *अद्भुत भारत*, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, पृष्ठ-42 ।
- बर्गीज, जे., *आरकीओलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इंडिया*, त्रूबनेर एंड कंपनी, लंदन, 1883।
- बर्गीस, जे, द *केव टेम्पल्स ऑफ इंडिया* , त्रूबनेर एंड कंपनी, लंदन, 1883।
- बरी, जे. बी., द *कैम्ब्रिज एन्सिएंट हिस्ट्री*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1926।
- बरी, जे, बी., ए *हिस्ट्री ऑफ़ ग्रीस टू द डेथ ऑफ़ एलेग्जेंडर द ग्रेट*, मैकमिलन, लंदन, 1900।
- बरुआ, बी. एम., *अशोक एंड हिज इंस्क्रिप्शन*, न्यू ऐज पब्लिशर लिमिटेड, कलकत्ता, 1946।
- ब्रोसियस, एम., ए *हिस्ट्री ऑफ पर्शियन एम्पायरः द अकहमदि एम्पायर*, विले-ब्लैकवेल, न्यू जर्सी, 2021।
- बोई, टी., *लेट अकहमदि एंड हेलेनिस्टिक बेबीलोन*, पीटर्स पब्लिशर्स, पेरिस, 2004।
- ब्रिएंट, पी., (अनु.) पी. टी. डैनिएल्स, फ्रॉम साइरस टू एलेग्जेंडरः ए हिस्ट्री ऑफ़ द पर्शियन एम्पायर, विनोना लेक, इंडिआना, 2002।
- बज, इ. ए. डब्लू., द *इसकलपचर्स एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ़ बेहिस्तून*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1907।
- बच, एम. ए., *इकनोमिक लाइफ इन एन्सिएंट इंडिया* , भाग-1, आर्य सुधारक प्रेस, 1924।
- बॉयस, एम., *पार्थियन राइटिंग एंड लिटरेचर- द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ ईरान*, खंड-3(2), कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1983।
- ब्राउन, पी., *इंडियन आर्किटेक्चर*, डी बी तारापोरवाला संस, बॉम्बे, 1959।
- बनर्जी, जी. एन., *हेलेनिज्म इन एन्सिएंट इंडिया*, बटरवर्थ एंड को, कलकत्ता, 1920।
- बेहरेन्ड्ट, के. ऐ., द बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर ऑफ गांधार, ब्रिल, लीडन, 2004।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- बाजपेई, के. डी., अर्ली इंस्क्रिप्शन ऑफ मथुरा- ए स्टडी, पंथी पुस्तक. कलकत्ता, 1980।
- बाजपेई, के. डी., *इंडियन न्यूमिस्टिक स्टडीज*, अभिनव पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1976।
- बाजपेई, के. डी., *आर्कियोलाजी इन उत्तर प्रदेश* , लखनऊ, 1957।
- भारद्वाज, एच. सी., *आस्पेक्ट्स ऑफ़ एन्सिएंट इंडियन टेक्नोलॉजी*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979।
- भंडारकर, डी. आर., *अशोका* , यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता ,कलकत्ता, 1925।
- भंडारकर, डी. आर., *फॉरेन एलिमेंट इन हिन्दू पापुलेशन*, ब्रिटिश इंडिया प्रेस, ब्यकुला, 1910।
- मैक्रिंडल, जे. डब्लू., *एन्सिएंट इंडिया एस डिस्क्राइब्ड बाइ मेगस्थनीज़ एंड एरियन* , त्रुब्नेर एंड कंपनी ,लन्दन , 1877।
- मैक्रिंडल, जे. डब्लू., द *इंडिका ऑफ़ ऐरियन*, एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, ब्यकुला (byculla), 1876।
- मैक्रिंडल, जे. डब्लू., द *इनवेजन ऑफ इंडिया बाई एलेग्जेंडर द ग्रेट*, आर्किबाल्ड कांस्टेबल एंड कंपनी, वेस्टमिनिस्टर, 1896।
- मिचिनर, जे. ई., द *युग पुराण*, द एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता,1986।
- मजूमदार, आर. सी., द *हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल*, द क्लासिकल ऐज, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1970।
- मजूमदार, आर.सी., द *हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल*, भाग-2, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 2001।
- मजूमदार, एम. आर., *हिस्टोरिकल एंड कल्चरल क्रोनोलॉजी ऑफ गुजरात*, ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट, बड़ोदा, 1960।
- मजूमदार, आर. सी., *भारत का वृहत इतिहास*, मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया, दिल्ली, 2009।
- मजूमदार, आर. सी., द *ऐज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी*, भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1960।
- मजूमदार, आर. सी., *एन्सिएंट इंडिया*, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 1977।
- मार्शल, जे., *ए गाइड टू तक्षशिला*, सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1918।
- मार्शल, जे., *तक्षशिला: स्ट्रक्चरल रिमेंस, खंड-1*, यूनिवर्सिटी प्रेस. कैंब्रिज, 1951।
- मार्शल, जे., *तक्षशिला*, भाग-2, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1951।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- मार्शल, जे., द *मोनुमेंट्स ऑफ साँची*, भाग 1, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली।
- मार्शल, जे., द *बुद्धिस्ट आर्ट ऑफ़ गांधरा*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1960।
- मोहन, वी. एम., द *शकाज इन इंडिया एंड देयर इम्पैक्ट ऑन इंडियन लाइफ एंड कल्चर*, चौखम्बा ओरिएंटिलिया,वाराणसी , 1976।
- मेहता, आर. एम., *एम. एस. यूनिवर्सिटी कॉपर प्लेट्स ऑफ द टाइम ऑफ तोरमाण*, महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी आर्किओलॉजी सीरीज-14, 1978।
- मेहता, आर. एन., *एक्सकेवेसन एट देवनीमोरी* , डिपार्टमेंट ऑफ आर्कियोलॉजी एम् एस. यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ोदा, बड़ोदा ,1966।
- महाजन, वी, डी. *एन्सिएंट इंडिया*, एस चाँद, दिल्ली, 2019।
- मास, एम., द *कैंब्रिज कम्पैनियन टू द एज ऑफ अत्तिला*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2015।
- मुखर्जी, आर. के., *चन्द्रगुप्त मौर्य एंड हिज टाइम्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1960 ।
- मुखर्जी, आर. के., *हिन्दू सिविलाइजेशन*, लोंगमेन ग्रीन्स एंड को, लंदन, 1936 ।
- मॅकडॉनेल, ए. ए., *वैदिक इंडेक्स ऑफ नेम्स एंड सब्जेक्ट्स* , जॉन मरे स्ट्रीट, लंदन, 1912 ।
- मैकविल्ले(McEvilley), टी. सी., द शेप ऑफ एन्सिएंट थॉट: कम्पेरेटिव स्टडीज इन ग्रीक एंड इंडियन फिलॉसॉफीज, अलवर्थ प्रेस, न्यूयॉर्क, 2002 ।
- मणि, बी. आर., द *कुषाण सिविलाइजेशन*, बी आर पब्लिशिंग, दिल्ली, 2013 ।
- यर्शटर(Yarshater), ई., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ ईरान*, खंड-3, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1986 ।
- रैपसन, ई. जे., द *कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया*, वॉल्यूम 1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922 ।
- रैपसन, ई. जे., द *कैटालॉग ऑफ इंडियन कॉइन्स इन ब्रिटिश म्यूजियम*, एल्डेन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1967 ।
- रैपसन, ई. जे., *इंडियन कॉइन्स*, बॉम्बे एजुकेशन सोसाइटी प्रेस, बॉम्बे, 1898 ।
- रैपसन, ई. जे., *कैटेलॉग ऑफ़ द कॉइन्स ऑफ द आंध्र डायनेस्टी, द वेस्टर्न क्षत्रपस, द त्रिकुटका डायनेस्टी एंड द बोधि डायनेस्टी*, ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन।
- रामकृष्णन, एस., द *एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी*, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 2001 ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- रॉन्गजी(Xuanzang), ली., द *ग्रेट टैंग(tang) डायनेस्टी रिकॉर्ड ऑफ द वेस्टर्न रीजंस*, बीडीके अमेरिका, कैलिफोर्निया, 1996।
- रायचौधरी ,एच .सी., *पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता प्रेस, कलकत्ता, 1938।
- रायचौधरी, एच. सी., द *अर्ली हिस्ट्री ऑफ द वैष्णव सेक्ट*, एंटीक्यूरियन बुकसेलर्स, कलकत्ता, 1936।
- रायचौधरी ,एच. सी., *स्टडीज इन इंडियन एंटीक्विटीज़* ,कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता, 1932।
- रोजेनफील्ड, जे. एम., द डाईनैस्टिक आर्ट्स ऑफ़ द कुषाणास, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले, 1967।
- रॉलिन्सन, एच. जी., इंटरकोर्स बिटवीन इंडिया एंड द वेस्टर्न वर्ल्ड, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1926।
- रॉलिंसन, एच. जी., ए *कॉनसाइज़ हिस्ट्री ऑफ द इंडियन पीपल*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946।
- रोलैंड, बी., *आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया: बुद्धिस्ट, हिन्दू, जैन*, पेंगुइन पब्लिकेशन, 1977।
- रेने, जी.(Grousset), द *एम्पायर ऑफ़ द स्टेप्पेस(steppes): ए हिस्ट्री ऑफ़ सेंट्रल एशिया*, रटगर्स(Rutgers) यूनिवर्सिटी प्रेस, 1970।
- लेग्गे(legge),जेम्स , द *ट्रेवल्स ऑफ़ फाह्यान* ,ओरिएण्टल पब्लिशर , दिल्ली ,1971।
- लॉ, बी.सी., ए *स्टडी ऑफ़ महावस्तु*, ठक्कर स्प्रिंक एंड कंपनी , कलकत्ता , 1930।
- लॉ, बी .सी., *इंडोलॉजिकल स्टडीज* , इंडियन रिसर्च इंस्टिट्यूट ,दिल्ली, 1950।.
- लॉ, बी.सी., *जियोग्राफी ऑफ़ अर्ली बुद्धिज़्म*, त्रूबनार एंड कंपनी लिमिटेड, लन्दन, 1932।
- लॉ, बी.सी., *जियोग्राफी ऑफ़ एन्सिएंट इंडिया* ,एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ पेरिस, फ्रांस, 1954।
- लॉ, बी. सी., द *मगधाज इन एन्सिएंट इंडिया*, द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, 1946।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- लॉ, वी.सी.,*प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल* (अनु .)राम कृष्ण द्विवेदी ,उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ ऐकेडमी, लखनऊ, 1972।
- ली, एच. पी., *बुद्धिस्ट आर्किटेक्चर*, ग्राफिकल, 2012।
- लाहिरी, बी., *इंडिजेनस स्टेट्स ऑफ नॉर्दर्न इंडिया*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1974।
- प्रसन्ना, आर. बी., *कॉइन स्प्लेंडोर: अ जर्नी इन टू द पास्ट*, अभिनव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003 ।
- लाहिरी, ए. एन., *कार्पस ऑफ इंडो-ग्रीक कॉइन्स*, पोद्दार पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1965 ।
- व्हाईजेनहोफर(wiesehofer), जे., *एन्सिएंट पर्शिया*, आई. बी. टॉरिस पब्लिशर्स, लंदन, 2001 ।
- वाइटहेड, आर. बी., *कैटेलॉग ऑफ कॉइन्स इन द पंजाब म्यूजियम, लाहौर*, भाग-1, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1914 ।
- वीजहोफर, जे., *एन्सिएंट पर्शिया*, आई. बी. टॉरिस, लंदन, 2001 ।
- वाटर्स, टी., *ऑन ह्वेनसांग ट्रेवल इन इंडिया* ,रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन , 1904 ।
- वाटर्स, एम., *एन्सिएंट पर्शिया*, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 2014 ।
- विद्यालंकार, एस., *प्राचीन भारत*, श्री सरस्वती सदन, दिल्ली, 1978, पृष्ठ-91 ।
- विद्याभूषण, एस. सी., *पर्शियन अफ्फिनिटीज ऑफ द लिच्छवीस, द इंडियन एंटिक्विटी*, खंड-37, 1908।
- विलियम, एल., *द स्कल्पचर्स एंड इंस्क्रिप्शन ऑफ डेरियस द ग्रेट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1907।
- विलियम्स, एन, एस., *ए न्यू बैक्ट्रियन इंस्क्रिप्शन ऑफ कनिष्क द ग्रेट*, सिल्क रोड आर्ट एंड आर्कियोलॉजी, भाग-4, 1995 ।
- विलियम्स, पी., *बुद्धिस्ट थॉट*, रूटलेज, लंदन, 2000 ।
- वोगेल, जे. पी., *कैटेलॉग ऑफ द आर्कियोलॉजिकल म्यूजियम एट मथुरा*, सुपरिटेंडेंट गोवरमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1910 ।
- वासु, एस. सी., द *अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि* भाग 2, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1962 ।
- विजया, एम. पी., *अंगविज्जा*, (अनुवाद) प्राकृत ग्रन्थ परिषद् , वाराणसी, 1957, पृष्ठ-66।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- वर्मा, टी. पी., द *इम्पीरियल मौखरीसः हिस्ट्री ऑफ इम्पीरियल मौखरीस ऑफ कनौज एंड हर्षवर्धन*, नोशन प्रेस, चेन्नई, 2018।
- वेल्स, सी. बी., *डिओडोरस ऑफ सिसीली* (अनुवाद.) भाग-8, विलियम हीनमान लिमिटेड, लंदन, 1963।
- बैक्केर, एच. टी., द *अल्खान, कम्पैनियन टू हुननिक पीपल इन सेंट्रल एंड साउथ एशिया*, 2020।
- सरकार, डी. सी., *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शन्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1942।
- सरकार, डी सी., *इंडियन एपिग्राफी*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1965।
- सरकार, डी. सी., *स्टडीज इन इंडियन कॉइन्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1968।
- सीताराम, आर., *रिवर ऑफ किंग्स (राजतरंगिणी)*, द इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1935।
- सेन, एस., *ओल्ड पर्शियन इंस्क्रिप्शन्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, कलकत्ता, 1941।
- सेन, एस., *एन्सिएंट इंडियन हिस्ट्री एंड सिविलाइज़ेशन*, न्यू एज इंटरनेशनल, दिल्ली, 1999।
- सिंह, यू., *पोलिटिकल वायलेंस इन एन्सिएंट इंडिया*, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 2017।
- सिन्हा, बी. पी., *पाटलिपुत्र एक्सकेवेशन 1955-56*, डायरेक्टरेट ऑफ आर्किओलोजी एंड मुसुम्स, बिहार, 1970।
- सेठ, के. एन., द *ग्रोथ ऑफ द परमार पावर इन मालवा*, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, भोपाल, 1978।
- संकालिया एच. डी., द *आर्कियोलॉजी ऑफ गुजरात*, नटवरलाल एंड कंपनी, बॉम्बे, 1941।
- संकालिया, एच. डी., *स्टडीज इन द हिस्टोरिकल एंड कल्चरल जियोग्राफी एंड एथनोग्राफी ऑफ गुजरात*, श्री अरबिंदो आश्रम प्रेस, पांडिचेरी, 1949।
- संकलिआ, एच. डी., द *यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा*, बी जी पॉल एंड को पब्लिशर्स, मद्रास, 1934।
- सालोमन, आर., *इंडियन एपिग्राफी: ए गाइड टू द स्टडी ऑफ़ इंस्क्रिप्शन्स इन संस्कृत, प्राकृत एंड द अदर इंडो-आर्यन लैंग्वेजेज*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड 1998।
- सरस्वती, एस. के., ए *सर्वे ऑफ़ इंडियन स्कल्पचर*, नवाना प्रिंटिंग वर्क प्राइवेट लिमिटेड, कलकत्ता, 1957।
- स्मिथ, वी. ए., द अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया ,चतुर्थ संस्करण , ऑक्सफ़ोर्ड प्रेस ,इंग्लैंड , 1924।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- स्मिथ, वी. ऐ., *कैटेलॉग ऑफ द कॉइन्स इन द इंडियन म्यूजियम कलकत्ता*, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1906।
- स्मिथ, वी. ए., *अशोका: द बुद्धिस्ट एम्परर ऑफ इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1919।
- स्मिथ, वी. ए., *एन्सिएंट एंड हिन्दू इंडिया* ,ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1920।
- स्वामीनान्धा, वी. एस., *एन्सिएंट हिस्ट्री ऑफ द डेक्कन*, ऐसिअन एजुकेशन सर्विस ,दिल्ली , 1991 ।
- स्टीफन, बी., *कैटलॉग एंड रिवाइज्ड टेक्स्ट्स एंड ट्रान्सलेशन्स ऑफ गान्धारन रेलिकरी*(Reliquary) *इंस्क्रिप्शन्स* , अर्ली बुद्धिस्ट मनुस्क्रिप्ट प्रोजेक्ट, सीएटल, 2012 ।
- स्टीवेंसन, एम., *द हार्ट ऑफ जैनिज्म*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1915।
- स्कॉट, डी. ए., *द ईरानियन फेस ऑफ बुद्धिज्म*, ईस्ट एंड वेस्ट, 1990 ।
- शाह, एन., *द वर्ल्ड ऑफ कॉनकरर्स*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004 ।
- शास्त्री, एन. के., *एज ऑफ द नन्दाज एंड मौर्याज़*, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1952 ।
- शास्त्री एन., ए कम्प्रेहैन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग-2, ओरिएंट लोंगमानस, कलकत्ता, 1957 ।
- शास्त्री, एस. एम., *मैक्रिंडल एन्सिएंट इंडिया एज डिसक्राईबद बाई टॉलेमी*, चक्रवर्ती, चटर्जी कंपनी लिमिटेड, कलकत्ता, 1927 ।
- शहबाजी, एस., *डेरियस द ग्रेट*, इनसाइक्लोपीडिया ईरानिका, कोलंबिया यूनिवर्सिटी, 1994 ।
- सॉफ, डब्लू, एच., *द पेरिप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी*, लोंगमानस ग्रीन एंड को, न्यूयॉर्क, 1912।
- सेविल, ए., *एलेग्जेंडर द ग्रेट*, बार्नेस एंड नोबल वर्ल्ड डिजिटल लाइब्रेरी, न्यूयॉर्क, 2002 ।
- सहाय, एस., *भारतीय पुरालेखों का अध्ययन* , मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008 ।
- शर्मा, जी. आर., *रेह इंस्क्रिप्शन ऑफ मेनाण्डर एंड द इंडो-ग्रीक इन्वेजन ऑफ द गंगा वैली*, अबिनाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 1980 ।
- शर्मा, जे. पी., *रिपब्लिकस इन एन्सिएंट इंडिया 1500 बीसी - 500 बीसी*, ब्रिल पब्लिशर, लीडेन, 1968।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- शर्मा, टी. आर., *ए पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ़ द इम्पीरियल गुप्ताज: फ्रॉम गुप्त टू स्कन्दगुप्त* , कांसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1989।
- श्रीनिवासाचारी, *हिस्ट्री ऑफ़ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1989।
- हावेल, ई. बी., *ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया*, मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड, लंदन, 1924।
- हेनरी, आर. डब्लू., गोल्डन लीजेंड ऑफ इंडिया, लूजाक एंड कंपनी, लंदन, 1911।
- हिल्तेबेटेल, ए., *रीथिंकिंग इंडियाज ओरल एंड क्लासिकल एपिक्सः द्रौपदी अमंग राजपूत्स, मुस्लिम्स एंड दलित्स*, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, लंदन, 1999।
- हरमट्टा, जे., *हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेसन्स ऑफ सेंट्रल एशिया*, भाग-2, यूनेस्को पब्लिशिंग , फ्रांस,1994।
- त्रिपाठी, आर. एस., *हिस्ट्री ऑफ एन्सिएंट इंडिया*, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1960।

शोध पत्रिका

1. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनटेंजिबल कल्चरल हेरिटेज, 1952।
2. एनल्स ऑफ़ द भंडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, 1951।
3. गोंडा इंडोलॉजिकल स्टडीज, 2019।
4. जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन ओरिएण्टल सोसाइटी, 1982।
5. जर्नल ऑफ़ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च, 2022।
6. जर्नल ऑफ इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज, भाग-16, 1993।
7. जर्नल ऑफ ह्युमेनिटीज एंड सोशल साइंस, 2013।
8. जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड, 1895।
9. जर्नल ऑफ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया, 1983।
10. जर्नल ऑफ दा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ श्री लंका, 2015।
11. जर्नल ऑफ इंडो-यूरोपियन स्टडीज, 2010।
12. जर्नल ऑफ़ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृष्ठ-103।
13. जर्नल ऑफ दा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, 1915।
14. जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड, 1903।
15. जर्नल स्टोरेज पब्लिकेशंस, 1970।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

16. देरगी पार्क अकेडमिक (Dergi Park Akademik), 1996।
17. द नुमिस्मैटिक क्रॉनिकल एंड जर्नल ऑफ़ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी, 1890।
18. द नुमिस्मैटिक क्रॉनिकल एंड जर्नल ऑफ़ द नुमिस्मैटिक सोसाइटी, 1869।
19. द यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1963।
20. न्यूमेन, 2004।
21. यूरोपियन जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च, 2013।
22. सोशल साइंस हिस्ट्री, 1979।
23. 23, सेज जर्नल्स, 2005।
24. 24, साउथ एशिया: जर्नल ऑफ़ साउथ एशियाई स्टडीज, 2003।
25. स्पूनर, डी. बी., *पाटलिपुत्र*, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया ईस्टर्न सर्किल एनुअल रिपोर्ट, 1912।
26. एपिग्राफिया इंडिका, खंड-1, सुपरिटेंडेंट ऑफ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1892।
27. एपिग्राफिया इंडिका, भाग-2, मोतीलाल बनरसीदास, दिल्ली, 1970।
28. एपिग्राफिया इंडिका, भाग-7, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981।
29. एपिग्राफिया इंडिका, भाग-8, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1981।
30. एपिग्राफिया इंडिका, भाग-16, गवर्मेंट ऑफ इंडिया प्रेस, कलकत्ता, 1921।
31. एपिग्राफिया इंडिका, भाग-19, आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया , दिल्ली,1927।
32. एपिग्राफिया इंडिका, भाग -24, गवर्मेंट ऑफ इंडिया प्रेस, कलकत्ता, 1942।
33. कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम, भाग -1, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया सेंट्रल पब्लिकेशन ब्रांच, कलकत्ता, 1929।
34. कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम, भाग -3, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, सेंट्रल पब्लिकेशन्स ब्रांच
35. आर्किओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, एनुअल रिपोर्ट (1908-09), सुपरिटेंडेंट गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता, 1912।
36. इनसाइक्लोपीडिया ईरानिका, 2012।
37. सर आशुतोष मुखर्जी सिल्वर जुबली, भाग-3, बाप्टिस्ट मिशन प्रेस,1925।
38. वाइटहेड, आर. बी., टू कॉइन्स ऑफ सोटेर मेगस: द नेमलेस किंग, जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटैन एंड आयरलैंड, 1913।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र-संकलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 1- मेउस की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

(चित्र 2- एजेज प्रथम की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 3- राजुल की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

(चित्र 4- भूमक की मुद्राएं: स्रोत- इंडियन कॉइन्स इन द ब्रिटिश म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 5- नहपान की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

(चित्र 6- कुजुल कदफिसस की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 7- हुविष्क की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 8- सम्राट अशोक द्वारा निर्मित स्तम्भ: स्रोत- आर्कियोलॉजिकल म्यूज़ियम,

सारनाथ)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

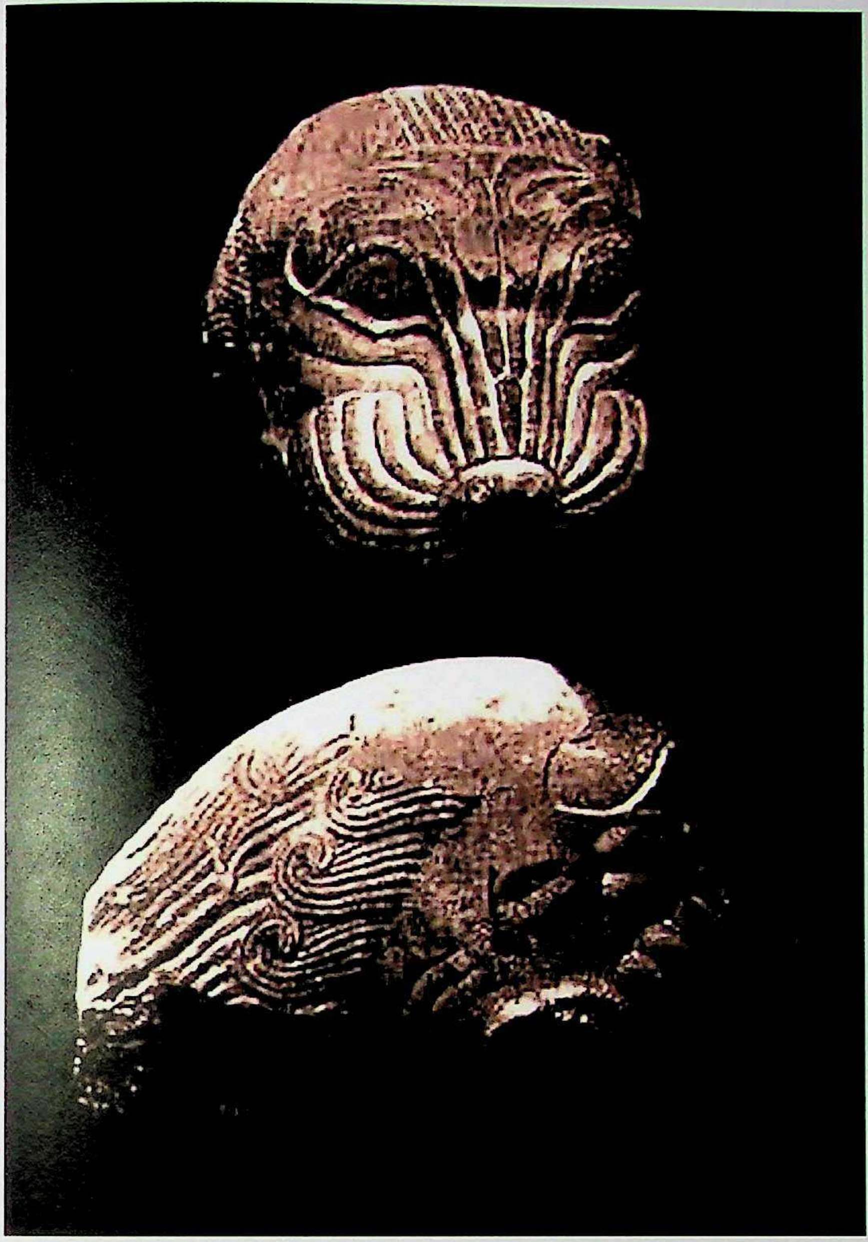

(चित्र 9- मसर्ह शेर की पाषाण मूर्ति: स्रोत-पटना म्यूजियम कैटेलॉग)

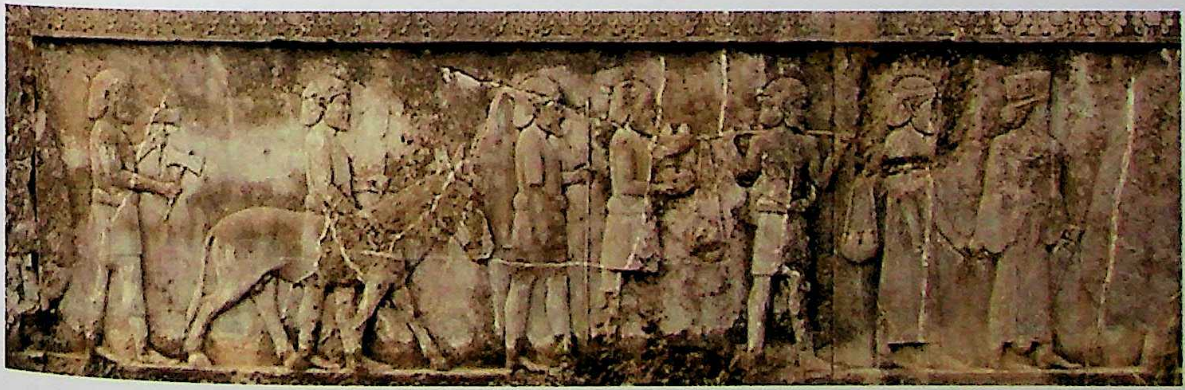

(चित्र 10- हखामनी दरबार में भेंट ले जाते भारतीय: स्रोत- Livius.org)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 11- वर्तमान काबुल से प्राप्त हुई हखामनी मुद्रा: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

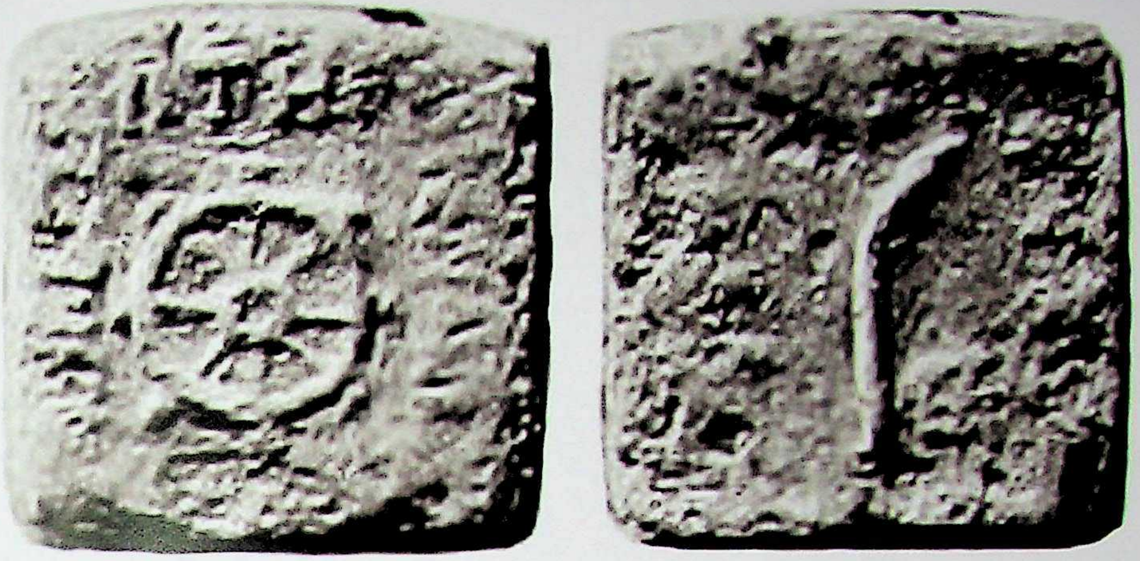

(चित्र 12- मेनाण्डर द्वारा प्रचलित मुद्रा: स्रोत- ब्रिटिश म्यूजियम)

(चित्र 13– चष्टन की सिरविहीन मूर्ति: स्रोत-मथुरा म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 14- शक काल की मुद्राएं: स्रोत- पेरिस म्यूजियम)

(चित्र 15-विम कुषाण कालीन देवताओं की मुद्राएं: (अ)- मैनाओवैगो, (ब)-फैरो, (स)-आरडोक्षो, (द)-महासेना, (इ)-स्कन्द व विशाखा: स्रोत-ब्रिटिश म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 16- कनिष्क की मुद्रा: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

(चित्र 17– मथुरा कला की यक्ष की मूर्तियां (अ)-मुद्गरपानी यक्ष (ब)-अग्निपानी यक्ष (स)-प्रखम यक्ष: स्रोत-मथुरा म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

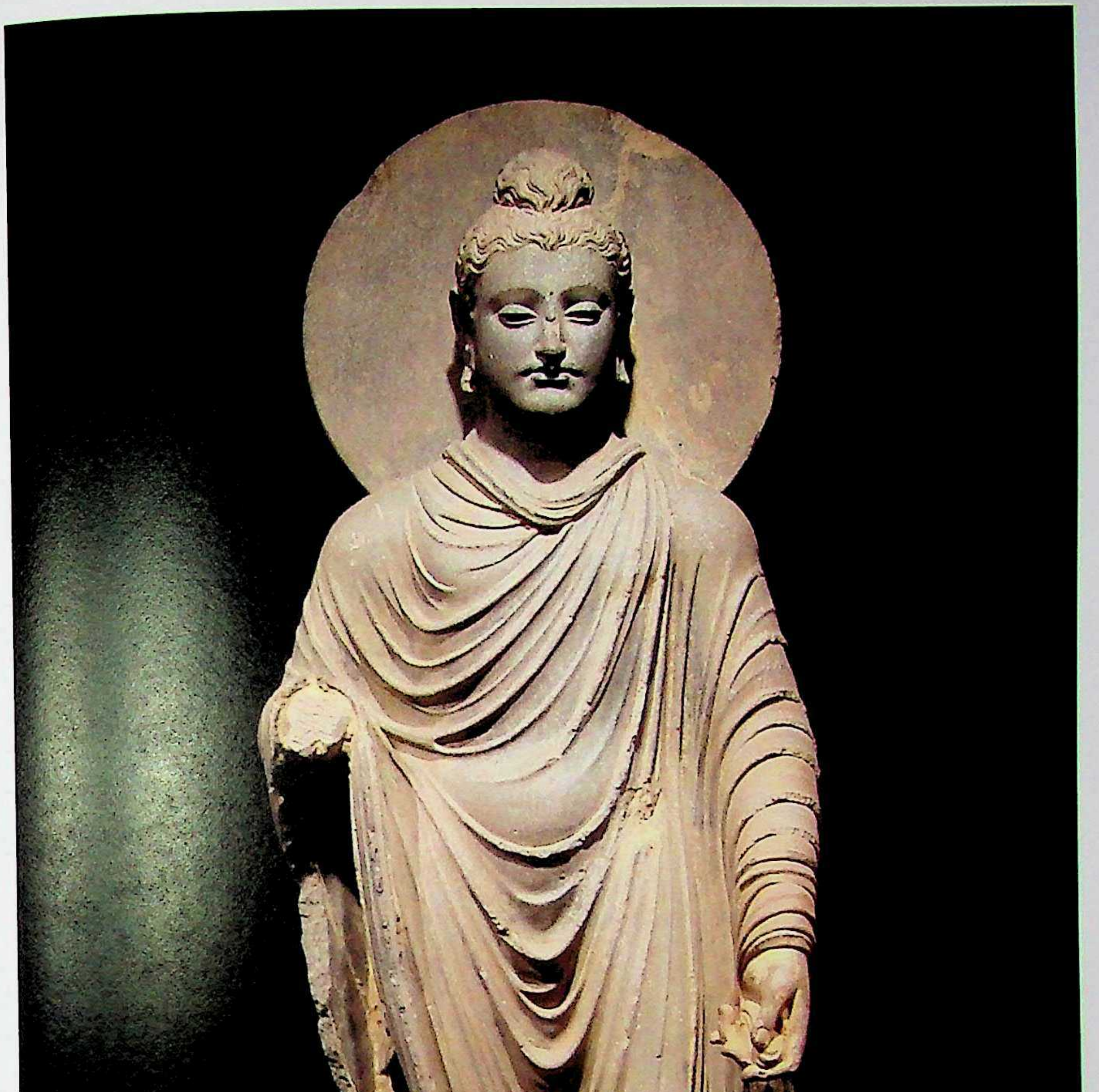

(चित्र 18- गांधार कला की मूर्ति: स्रोत-टोक्यो नेशनल म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 19- गांधार कला की बोधित्सव की मूर्ति: स्रोत-पेरिस म्यूजियम)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 20-विम कदफिसस की मुद्राएं: स्रोत- क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

(चित्र 21- मिहिरकुल की मुद्रा: स्रोत-क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चित्र 22– तोरमाण की मुद्रा: स्रोत-क्लासिकल नुमिस्मैटिक ग्रुप)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शोध
दिशा

ISSN 0975-735X

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त

UGC APPROVED CARE LISTED JOURNAL

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त शोध पत्रिका

शोध अंक 62/C अप्रैल-जून 2023 400.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,
बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फोन : 0124-4076565, 09557746346
ई-मेल : shodhdisha@gmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा
डॉ॰ मीना अग्रवाल
ए-402, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,
गुड़गाँव (हरियाणा)

दिल्ली एन॰सी॰आर॰
डॉ॰ अनुभूति
सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स
बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा
फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
07838090732

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक
डॉ॰ शंकर क्षेम
डॉ॰ प्रमोद सागर

उपसंपादक
डॉ॰ अशोककुमार
09557746346
डॉ॰ कनुप्रिया प्रचण्डिया

कला संपादक
गीतिका गोयल/ डॉ॰ अनुभूति

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

शुल्क
आजीवन (दस वर्ष): छह हजार रुपए
वार्षिक शुल्क : एक हजार रुपए
यह प्रति : चार सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसैट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

शब्दों के बिगड़ते रूप/ **डॉ॰ भगवान सिंह निरंजन** 20

राकेश कुमार सिंह के उपन्यास में चित्रित स्वतंत्रता संग्राम/ **बाल किसुन** 26

भारतीय ज्ञान परंपरा में महाभारत के पौलोम पर्व की प्रासंगिकता/ **डॉ॰ कविता त्यागी** 33

डॉ॰ नरेंद्र कोहली के व्यंग्यों में धार्मिक अपराधीकरण और विसंगतियाँ/ **मनोहर राम गर्ग** 40

समकालीन हिंदी और उर्दू ग़ज़ल में सामाजिक और राजनीतिक चेतना/ **डॉ॰ रेवंत दान, डॉ॰ विजेयता चारण** 46

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताज 'बिदापत नाच' में सामाजिक समस्या/ **डॉ॰ कनक रागिनी** 54

'सोजेवतन' में देश-प्रेम की भावना/ **कनक नंदिनी** 60

घनानंद के काव्य में प्रेम का स्वरूप/ **अन्नू इंदौरा** 65

जिंदगी 50-50 में चित्रित किन्नर की दो पीढ़ियों की कथा/ **सीमा कुशवाहा** 72

दिनकर की दृष्टि में भक्ति आंदोलन और इस्लाम : एक समीक्षा/ **डॉ॰ प्रिया तिवारी** 77

मोहन राकेश के नाटक और उनकी नाट्य दृष्टि/ **कुँवर डॉ॰ महाराणाप्रताप सिंह 'विद्रोही'** 81

डॉ॰ रमेश पोखलियाल निशंक के साहित्य में व्यक्ति और समाज/ **डॉ॰ मनीषा अग्रवाल** 85

डॉ॰ कैलाशदेवी सिंह और उनकी कविताएँ : कविता संग्रह 'नवें दशक की शाम' के विशेष संदर्भ में/ **कुँवर डॉ॰ महाराणाप्रताप सिंह 'विद्रोही'** 89

साहित्यिक परंपरा में स्वाधीनता आंदोलन के स्वर/ **डॉ॰ सुमन सिंह** 94

आधुनिककाल में ग्रामीण विधवा महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन/ **संगीता** 102

उत्तराखंड की सुदृढ़ अर्थव्यवस्था के मार्ग में आपदा एक चुनौती का अध्ययन/ **डॉ॰ दीपक** 108

नरेंद्र मोहन के नाटक 'सींगधारी' में समसामयिक समाज/ **डॉ॰ सपना शर्मा, रजवंत कौर** 115

हिंदी ग़ज़ल : अभिव्यक्ति और संप्रेषणीयता के पक्ष/ **अंजनीकुमार, प्रो॰ सुधा जितेंद्र** 121

योग के संदर्भित ग्रंथों में प्रतिपादित ईश्वरप्रणिधान का परिभाषात्मक स्वरूप/ **डॉ॰ अरविन्द वैदवान, माधुरी** 125

वाल्मीकि रामायण में वर्णित सरयू नदी का ऐतिहासिक एवं धार्मिक समुन्मीमलन/ **डॉ॰ साधना देवी** 132

द्विवेदी युगीन एवं छायावादी महिला कहानीकारों की कहानियों में मानवीय-दृष्टि/ **डॉ॰ लक्ष्मी कान्त चंदेला** 136

शक काल में भारतीय भाषा तथा साहित्य का विकास/ **प्रो॰ रेनु शुक्ला, सारिका दुबे** 140

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक काल में भारतीय भाषा तथा साहित्य का विकास

प्रो॰ रेनु शुक्ला
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
सारिका दुबे (शोध-छात्रा)
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारतीय इतिहास में शकों का आगमन एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा सामाजिक प्रक्रिया के रूप में उल्लेखनीय है। भारतीय संस्कृति के मूल अवयवों में निरंतरता रही है परंतु भारतीय समाज का हिस्सा रहे जिन विभिन्न विदेशी तत्त्वों ने उसे अनेक रूपों में प्रभावित और समृद्ध किया उनमें शकों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय भाषा साहित्य, दर्शन, नाट्यकला, शिक्षा, ज्योतिष इत्यादि पर शक शासनकाल में एक सकारात्मक प्रभाव पड़ा जिसने न केवल तत्कालीन वरन् उसी क्रम में भविष्य के भारत को भी प्रभावित किया। शक शासनकाल में शक क्षत्रपों की उदार नीतियों ने सामाजिक सद्भाव प्रोत्साहित किया। उन्होंने विदेशी मुख्यत: यवन शासनकाल की विशेषताओं को अक्षुण्ण रखा और भारतीय सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाया एवं उन पर अपना प्रभाव भी छोड़ा। भारतीय राजनीति, समाज एवं संस्कृति की सही समझ के लिए शक शासनकाल व उनकी नीतियों की विवेचना आवश्यक है, जो भारतीय-शक संस्कृति के सम्मिलन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करती है।

भारतीय इतिहास विभिन्न राजवंशों के शौर्यपूर्ण उपलब्धियों एवं तत्कालीन, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का दर्पण है जिनमें भारतीय एवं शकों सहित अनेक विदेशी शासक भी शामिल हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् पश्चिमोत्तर भारत बाह्य आक्रमणकारियों का केंद्रबिंदु बन गया फलस्वरूप समय-समय पर वहाँ से विदेशियों का आगमन होता रहा। जिन विदेशियों ने भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया और शासन किया उनमें शक क्षत्रपों का शासन उल्लेखनीय हैं।[1] शक मूलत: मध्य एशिया की भूमि पर निवास करते थे। भारतीय उनसे सर्वप्रथम हखामनी साम्राज्य के नागरिकों के रूप में परिचित थे। शकों के दो महत्त्वपूर्ण समूह शक तिग्रखौद तथा शक हउमवर्क भारतीय सीमा के निकट निवास करते थे, जिनका उल्लेख फारसी अभिलेखों में भी किया गया है।[2] भारत में शकों का आगमन ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी से प्रारंभ हुआ था। यू-ची आक्रांताओं के भय के परिणामस्वरूप उन्होंने बैक्ट्रिया की दिशा में प्रस्थान किया तदुपरांत स्थायी निवास हेतु भारतवर्ष में उनका आगमन हुआ जहाँ इन्होंने भारत की राजनीतिक अस्थिरता का लाभ उठाते हुए अपने राज्य विस्तार के प्रयास किए। ईस्वी सन् के आरंभ तक शकों ने स्वयं को पश्चिमी भारत पर इतनी मजबूती से स्थापित कर लिया था कि यूनानियों द्वारा शकों के इस गढ़ को सीथिया कहा गया।[3] शक शासक मेउज तथा उनके उत्तराधिकारियों ने तक्षशिला क्षेत्र में एक शताब्दी तक शासन किया। शक वंश के कतिपय अन्य शासकों ने शनैः

 ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनैः पूर्व की दिशा में अग्रसर होते हुए मथुरा तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।[4] पश्चिमी भारत के क्षत्रपों ने अपनी शक्ति के शिखर पर दक्षिण के समृद्धशाली सातवाहन राजाओं पर एक से अधिक अवसरों पर आक्रमण किया था। ईस्वी सन की प्रथम चार शताब्दियों में 20 शक शासकों ने पश्चिम भारत के सौराष्ट्र क्षेत्र पर शासन किया। चौथी शताब्दी में गुप्त शासकों ने शकों को पराजित कर उनकी शक्ति को क्षीण किया परंतु शक किसी-न-किसी रूप में पश्चिम पंजाब में सामंतों के रूप में स्थापित रहे।[5]

अनेक भारतीय साहित्य शकों के शासन के विषय में उल्लेख करते हैं। युग पुराण[6] में 5 शक शासकों के नाम तथा उनके द्वारा लूटपाट का वर्णन विस्तार से किया गया है। जैन कृति कालकाचार्य कथानक[7] में काठियावाड़ व उज्जैन पर शक शासन का उल्लेख मिलता है। रामायण[8] में उन्हें विश्वामित्र के साथ युद्ध में ब्राह्मण वशिष्ठ के पक्ष में लड़ते हुए बताया है। बृहद संहिता[9] में यौधेय, इक्ष्वाकु, कलिंग के साथ शकों का उल्लेख मिलता है। महाभारत[10] में विभिन्न जनजातियों के रूप में शकों के विषय में भी वर्णन मिलता है तथा काव्यमीमांसा[11] में भी उत्तरापथ में शकों का उल्लेख है। शकों ने प्रारंभ में तक्षशिला, मथुरा तथा निचले सिंधु प्रदेश में अपना साम्राज्य स्थापित किया तदुपरांत उन्होंने अन्य भारतीय क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक अपने साम्राज्य को विस्तारित किया। कौशांबी से शक-पह्लव काल के टेरा-कोटा अवशेष उस क्षेत्र में उनके राज्य विस्तार के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं।[12] भारत पर शकों की एक शाखा का आधिपत्य एक शताब्दी तक था जबकि अन्य शाखाएँ लगभग तीन शताब्दियों तक भारत के विभिन्न स्थानों पर शासनरत रही थी।

विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि तक्षशिला, मथुरा, अवंति, काठियावाड़, मालवा को केंद्र बनाकर विभिन्न शाखाओं में विभक्त होकर शकों ने प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक शासन किया तथा भारतीय भाषा एवं लिपि को अपनाकर अपने नाम, उपाधि का भारतीयकरण कर तत्कालीन समाज में एक समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया।

भाषा तथा साहित्य

पश्चिमी क्षत्रपों ने सर्वप्रथम संस्कृत भाषा को अपने लेखों की भाषा के रूप में अपनाया। रुद्रदामन का जूनागढ़ अभिलेख इसका सुंदर उदाहरण है। यह मूलतः गद्य में लिखा गया है, परंतु सरल महाकाव्य शैली से लेकर उच्च गद्य की अलंकृत कविता तक के विकास को दर्शाता है।[13] यह अभिलेख शक शासनकाल में संस्कृत के विस्तार एवं विस्तृत संस्कृत साहित्य के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है। रुद्रदामन के पश्चात् भी शक शासकों के शिलालेखों में संस्कृत का प्रयोग चलता रहा। उदाहरण के रूप में गुजरात के देवनी मोरी में पाए गए। धातु पेटी के शिलालेख को उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें उत्कीर्ण भाषा संस्कृत है तथा साथ ही इसमें प्राकृत का पुट भी पाया गया।[14] रुद्रदामन के पुत्र दमयसद/दमघसद प्रथम द्वारा जो सिक्के चलाए गए उसमें उत्कीर्ण शब्द भी संस्कृत में है जो कालांतर में शक क्षत्रप सत्यदामन द्वारा भी प्रयोग में लाए गए।[15]

नाट्यकला

सिल्वां लेवी के अनुसार संस्कृत नाटक के उदय का श्रेय उज्जैन के शकों को दिया जाता है। नाटक में प्रयुक्त शब्द जैसे स्वामिन, भद्रमुख, राष्ट्रीय क्षत्रपों की राज्यसभा में सम्मानसूचक रूप में प्रयुक्त होते थे।[16] यद्यपि यह शब्द प्राचीनकाल से ही भारतीय शब्दकोष में थे परंतु शकों के काल में नाटक में इनका उपयोग होने लगा जिसका उदाहरण हमें कालिदास के नाटक स्वप्नवासवदत्ता में भी मिलता है। विद्वान कोनो भी लेवी के इस विचार से सहमत है कि संस्कृत नाटक का चरमोत्कर्ष

ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शकों के काल में हुआ परंतु उनके अनुसार इसका उदय उज्जैन में नहीं अपितु मथुरा था। भरत मुनि द्वारा नाट्यशास्त्र की रचना शक शासन में ही हुई थी। नाट्यशास्त्र में संबोधन हेतु किसी व्यक्ति को उसके जन्म या उसके द्वारा अपनाए गए व्यवसाय, कला या शिक्षा के लिए उपयुक्त शब्द से संबोधित किया गया है जो कालांतर में नाटकों हेतु एक परंपरा के रूप में विकसित हुई। स्वप्नवासवदत्ता में उदयन को स्वामिन कहकर संबोधित किया गया है।[17] अभिलेखों के अनुसार स्वामिन् शब्द को नाट्यशास्त्र से लिया गया है, जहाँ युवराज के लिए स्वामिन तथा अन्य राजकुमारों को भद्रमुख कहकर संबोधित किया है। अधीनस्थों द्वारा राजा को सामान्यत: देव या भट्ट कहकर संबोधित किया जाता था।[18]

जैन साहित्य

शक काल में तीसरी शताब्दी में जैन संगीति मथुरा में आयोजित हुई तथा उसमें दृष्टिवाद को संकलित तथा अध्यादेशित करने पर विचार विमर्श हुआ था। इस संगति के सभापति आचार्य स्कंदिल थे तथा संकलित कार्य माथुरी वचन अथवा स्कंदिली वचन के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। मथुरा में संपन्न हुई संगीति के समय आचार्य नागार्जुन ने वल्लभी में एक दूसरी जैन सभा आयोजित की थी जिसमें आगम साहित्य को लिखने का निश्चय किया गया था, इस प्रकार वल्लभी वचन अथवा नागार्जुन वचन निर्मित हुए थे। इन दोनों सभाओं के लगभग 150 वर्षों के उपरांत दोनों ही विचार केंद्रों का सम्मिलन देवर्धिगणि क्षमाश्रवण द्वारा किया गया। इस संयुक्त सभा में श्वेतांबर जैन के एक प्रामाणिक ग्रंथ में मथुरा में संकलित साहित्य को प्रमुख साहित्य माना गया तथा साथ ही वल्लभी में संकलित साहित्य को भी सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया। जिन तथ्यों पर भी दोनों शाखाओं में विवाद था उन्हें ग्रंथ से हटा दिया गया।[19] इस ग्रंथ पर मूलभूत कार्य शक काल में ही संपादित हुआ है। अंगविद्या एक महत्त्वपूर्ण जैन साहित्य है जो इस काल में लिखा गया था। यह कार्य जैन मुनियों द्वारा संपादित हुआ था। इस साहित्य में एक स्थान पर 'खत्पक' शब्द का उपयोग हुआ है जिसका अर्थ क्षत्रप है तथा अन्य स्थानों पर क्षत्रप मुद्राओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है परंतु इसमें किसी भी स्थान पर गुप्तकाल में प्रयुक्त हुई रजत मुद्राओं का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रंथ की रचना शक क्षत्रपों के समय में गुजरात क्षेत्र में हुई थी। इस ग्रंथ के संकलन में शकों का कोई भी प्रत्यक्ष योगदान नहीं है परंतु यह कहना उचित होगा कि शक शासनकाल में एक सौहार्दपूर्ण वातावरण था जिस कारण ही इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना संभव हो सकी थी। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि शक शासनकाल में जैनधर्म को पर्याप्त आश्रय मिला था तथा जैन धर्म उन्नति के शिखर को प्राप्त हुआ।[20]

शिक्षा प्रणाली

शक काल में शिक्षा व्यवस्था को जूनागढ़ शिलालेख के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। इस शिलालेख में शिक्षा को निम्नलिखित चार चरणों में प्रस्तुत किया गया है–

1. पारण–शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करना
2. धारण–याद रखना
3. विज्ञान–विशेष ज्ञान

4–प्रयोगवास–प्राप्त शिक्षा का भौतिक जगत में उपयोग।

जूनागढ़ शिलालेख के अनुसार इस काल में व्याकरण, राजनीति, अर्थविद्या, गंधर्वविद्या. संगीत, तार्किक न्याय विद्या आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। समाज के कतिपय वर्गों मुख्यत:

ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्च वर्ग द्वारा संस्कृत भाषा (शुद्ध अथवा प्राकृत मिश्रित) सामान्य वार्तालाप हेतु प्रयक्त होती थी। शक राजदरबार की भाषा प्राकृत मिश्र संस्कृत थी परंतु सामान्य जन की भाषा संस्कृत नहीं थी। शक शासनकाल में खरोष्ठी तथा ब्राह्मी दोनों ही लिपियों के उपयोग की जानकारी मिलती है, परंतु शक शासनकाल के उत्तरार्द्ध में केवल ब्राह्मी लिपि के उपयोग के ही प्रमाण मिलते हैं। शक काल में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि अशोक काल में प्रयुक्त हुई लिपि से भिन्न थी अत: शक काल में प्रयुक्त लिपि को क्षत्रप कालीन लिपि के नाम से संबोधित किया जाता है।[21]

उपर्युक्त तथ्यों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय साहित्य में शक सम्मिलन का उच्चकोटि का प्रभाव पड़ा है। प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही रूपों में इस प्रभाव को समझा जा सकता है। यह कथन देना अतिशयोक्ति न होगी कि भारतीय भाषा, नाट्यशास्त्र तथा साहित्य के उत्थान में शक शासन का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन साहित्य की उन्नति जैनधर्म के विकास में उनकी भूमिका की ओर संकेत करती है। शक शासनकाल में जैन साहित्य न केवल फला-फूला अपितु जैन धर्म के भीतर स्थापित विवादों का अंत भी शक शासन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। अत: यह शकों का शासनकाल सांस्कृतिक सम्मिलन एवं भारतीय साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण अध्याय के रूप में जाना जाता है।

संदर्भ

1. यू॰पी॰ थपलियाल, फॉरेन एलिमेंट्स इन एंसिएंट इंडियन सोसाइटी, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1979, पृ॰ 6-7
2. ए॰टी॰ ओल्मस्टेड, हिस्ट्री ऑफ द पर्शियन एंपायर, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1948, पृ॰ 157
3. ई॰जे॰ रैप्सन, द कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, भाग-1, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1922, पृ॰ 563-564
4. स्टेन कोनो, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम, खंड-2, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1929, पृ॰ 24-25
5. एच॰सी॰ राय चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंसिएंट इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, 1923, पृ॰ 513
6. जे॰ई॰ मिचनर, द युग पुराण, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1986, पृ॰ 66-68
7. स्टेन कोनो, कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम, खंड-2, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, दिल्ली, 1929, पृ॰ 26-28
8. भूय एवासृजद् घोरान्शकान् यवनमिश्रितान्।
   तैरासीत संवृता भूमि: शकेर्यवनमिश्रितै:।।21।।
   श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (प्रथम खंड),(अनु॰) पं॰ रामनारायणदत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ॰ 174
9. बृहद संहिता, (अनु॰) अचुत्यानंद झा, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, 2011, पृ॰ 53
10. यवना: किराता गांधाराच्श्रीना: शबरबर्बरा:
    शकास्तुषारा: कक्ङाश्च पह्लवाश्च आंध्रा मद्रका।। 13।।
    महाभारत (पंचम खंड), शांतिपर्व, (अनु॰) पं॰ रामनारायणदत्त शास्त्री, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰ 209
11. पृथुदकात्परत उत्तरापथ:। यत्र शककेकय वोक्काणहुणवाणायुजकम्बोजवा।
    काव्यमीमांसा, (अनु॰) गंगासागर राय, चौखंबा, विद्याभवन, वाराणसी, पृ॰ 199

ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

12. जी०आर० शर्मा, एक्सक्लेवेशन एट कौशांबी, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1960, पृ० 52
13. शिवस्वरूप सहाय, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2008, पृ० 209-214
14. के०सी० सागर, फॉरेन इंफ्लुएंस ऑन एंसिएंट इंडिया, नॉदर्न बुक सेंटर, दिल्ली, 1992, पृ० 143
15. ई०जे० रैप्सन, केटेलॉग ऑफ द इंडियन कॉइन्स, ब्रिटिश म्यूजियम, 1967, पृ० 81-95
16. जे० कारपेंटिअर, द जर्नल ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड, कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1925, पृ० 237-246
17. स्वामिन। देव्यपनयेत कृतापराधः खल्वहम्। तत क्षन्तुर्महति स्वामी।
स्वप्नवासवदत्तम, (व्याख्याकार) गंगासागर राय, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2003, पृ० 209
18. ए०बी० कीथ, द संस्कृत ड्रामा, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज, 1924, पृ० 69-72
19. जैन, जे०सी० जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखंबा विद्या भवन, वाराणसी, 1961, पृ० 37-38
20. अंगविज्जा, (संपादन) वी०एस० अग्रवाल, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, बनारस, 1957, पृ० 136
21. के०सी० सागर, फॉरेन इंफ्लुएंस ऑन एंसिएंट इंडिया, नॉदर्न बुक सेंटर, दिल्ली, 1992, पृ० 145-146

ISSN 0975-735X

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARNAVA SHODH SANSTHA

एतद् भानुरर्णवः

Scientific Indexing Services

Arnava
अर्णव

Vol. IX | No. 1 | Half Yearly | Year : 2020

REFEREED-PEER REVIEWED JOURNAL

Editors
Niharika
Ajay Srivastava

Associate Editor
Sachin Kr. Tiwary

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

11. Techno-Morphologic Distinction: Observation on Prehistoric Stone Tool Mechanism in Odisha 125-138

Dr. Soumya Ranjan Sahoo

12. कुषाण कालीन मथुरा कला : एक परिचय 139-152

सारिका दुबे

13. Comparative Study of Harappan Sites in Haryana and Gujarat: with the Help of Archaeobotanical Studies 153-166

Abhishek Roy

14. पुराणों में वर्णित आचार पक्ष (अग्निपुराण और भागवत पुराण के विशेष सन्दर्भ में) 167-171

डॉ० विजय पाल सिंह

15. The Impact of Vaishnava Art on Buddhist Art: Some Examples 172-188

J. Manuel

T. R. Sharma

16. सीतायन; अयोध्या से जनकपुर धाम : एक तैर्थिक पर्यटन 189-208

प्रो. डॉ. दीनबन्धु पाण्डेय

17. पुस्तक–समीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Arnava
अर्णव

Vol. IX No. 1 Half Yearly Year 2020 ISSN 2320-0103

सारिका दुबे*

कुषाण कालीन मथुरा कला : एक परिचय

सारांश

जब कोई कला के संदर्भ में बात करता है तो आमतौर पर उसका अभिप्राय दृष्टिमूलक कला से होता है, जैसे-वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्र कला। प्राचीन कला में ये तीनों पहलू आपस में मिले हुए थे। प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में मूर्तिकला का विशेष स्थान रहा है। अलग-अलग इतिहास काल में उस संस्कृति को परिलक्षित करती हुई मूर्तिकला अपने आप में ही एक अदभुत दृश्य प्रस्तुत करती है। जहाँ एक तरफ मूर्ति को धर्म से जोड़ा जा सकता है वहीं दूसरी ओर यह अलग-अलग संप्रदायों के विश्वास का भी प्रतीक माना जा सकता है। बौद्ध व जैन धर्म की मूर्तियों के साथ ही हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण कुषाण काल में प्रारम्भ हुआ और इन मूर्तियों के चिन्ह भी यहीं विकसित हुए जो आगे चलकर हिन्दू प्रतिमा लक्षण का आधार बने।

प्रमुख शब्द : मथुरा कला, कुषाण, मूर्तिकला, हिन्दू, बुद्ध, जैन

Abstract

Visual mediums obviously provide a greater impact to the art and art forms such as architectures, sculptures and paintings are no different. There was a time when these three arts were interlinked to the core and were considered pillar of the society. Specifically, sculptures gained extra popularity and proved itself of huge historical importance due to its storytelling capacity of that particular era. Sculpture art, sometimes grown in one religion often goes beyond its periphery and find place in another religion. Figurines in Mathura art flourished in Kushana dynasty has its roots in Buddhism and Jainism and also is connected with Hinduism. Actually, icons in Mathura art paves the way of modern Hinduism.

Keywords: Mathura Art, Kushana, Sculpture, Hinduism, Buddhism, Jainism

* शोध छात्रा, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, उत्तराखंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला सामाजिक वास्तविकता के रूप में समाज के विकास की एक आत्मिक अभिव्यक्ति है। मूर्तिकला सांस्कृतिक विचारों एवं भावनाओं के अर्थ को समझने में सहायक होने के साथ ही साथ मानव के सौंदर्य बोध की अभिव्यक्तिकरण का एक नया आयाम भी है। प्राचीन काल से ही भारतीय कला अपने रूप में धार्मिकता लिए थी। परन्तु इससे अलग कलाकारों ने मंदिरों के निर्माण में स्तूप ,वेदिका, स्तम्भ तथा उन पर कलाकृतियाँ उत्कीर्ण कर अनुपम सौंदर्य चित्रित किया। भारत की मूर्तिकला में केवल देवी-देवता की मूर्तियों का ही निर्माण नहीं हुआ अपितु अनेक धर्मेत्तर मूर्तियाँ भी बनीं। भारतीय कला परंपरा का प्रागैतिहासिक काल से लेकर सातवाहन काल तक निरंतर विकास हुआ, किन्तु सिंधु सभ्यता के बाद कला के विकास में एक अंतराल द्रष्टव्य है जो कि मौर्य काल से पुनः प्रारम्भ हुआ, जिसमें स्थापत्य कला का अत्यधिक विकास हुआ। मौर्य साम्राज्य के अंत तथा शुंग राजवंश के उदय एवं विकास का क्रम लगभग 200 ईसा पूर्व के आसपास मिलता है। शुंग वंश से लेकर गुप्तवंश तक की पांच शताब्दियों में भारतीय कला का बहुमुखी विकास तथा व्यापक उत्कर्ष हुआ। इस काल में भारतीय कला एक नए कलेवर के रूप में प्रस्तुत हुई जहाँ लोक संस्कृति एवं लोक कला का प्रभुत्व तथा विदेशी कला का भारतीय कला में सम्मिलन एक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में कुषाणों का भारत में आगमन हुआ जिन्होंने कला को एक नवीन स्फूर्ति दी और वहीं से प्रारम्भ हुआ एक कलात्मक विकास का पथ। कुषाण शासकों का शासनकाल मूर्तिकला के इतिहास में एक नवीन अध्याय का काल है। कुषाण काल के शिल्पकारों के द्वारा मूर्तिकला का विकास एक ऐसे उदार हृदय के साथ किया कि यह कला, कला को एक सुदृढ़ आधार प्रदान कर गुप्त काल की अनुकृति बनी। इस काल में प्रस्तर मूर्तियों के साथ–साथ मिट्टी की मूर्तियाँ भी निर्मित की गयीं। कुषाण सम्राट कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव का शासनकाल मथुरा कला का ''स्वर्णिम काल'' था। यहाँ प्राचीन पृष्ठभूमि पर नवीन विचारों से प्रेरित कलाकारों की छेनी ने एक ऐसी शैली को जन्म दिया जो आगे चलकर अपनी विशेषताओं के कारण भारतीय कला की एक स्वतंत्र शैली के रूप में विकसित हुई। कुषाण शासकों के संरक्षण में कला की दो शैलियाँ–मथुरा कला शैली तथा गांधार कला शैली विकसित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुषाणों के समय नागार्जुन ने महायान शाखा की स्थापना की और कुषाणों द्वारा इसे संरक्षण दिया गया। कुषाण सम्राट कनिष्क के राज्यारोहण के पश्चात् तथा महायान संप्रदाय का एक बड़ा मत होने से मूर्तिकला को विकास के लिए एक समुचित आधार मिला। मथुरा में सर्वप्रथम जैन आयागपट्ट बने, तदन्तर गौतम बुद्ध की मूर्तियाँ निर्मित हुई। इसके पश्चात् कुषाण राजाओं की मूर्तियाँ बननी प्रारम्भ हुई, तत्पश्चात मृतक राजाओं की मूर्तियों के देवकुल भी बने। इसी क्रम में लौकिक मूर्तियाँ भी बननी प्रारम्भ हुईं और मूर्ति–निर्माण के मानक स्थापित हुए। पुरुष और स्त्री सौंदर्य का जो मानक उस समय बना वह आगे भी निरंतर जारी रहा। कुषाण काल में ही गांधार कला का भी उद्‌भव हुआ जिसमें भारतीय तत्वों के इतर यूनानी और रोमन तत्वों का भी समावेशन हुआ ।

कुषाणों के राज्य विस्तार के साथ भारतीय कला शैली एवं विषय–वस्तु का प्रभाव मध्य एशिया आदि क्षेत्रों में भी व्याप्त हुआ। कनिष्क द्वारा कला की एक नवीन संरचना का विकास हुआ जो गांधार प्रदेश में विकसित हुई जिसे गांधार कला के नाम से जाना जाता है। गांधार प्रदेश में विकसित होने वाली कला–परम्परा, भारतीय संस्कृति के साथ–साथ मध्य–एशिया और पूर्व के देशों तक पहुंच गयी थी। कुषाण काल में दो परम्पराओं का उद्‌भव हुआ जिनमें ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन धर्मों का सामंजस्य प्राप्त होता है। एक कला परंपरा विशुद्ध भारतीय परिधान में देश की आत्मा की अभिव्यक्ति है तो दूसरी आत्मा को बाह्य परिधान में अलंकृत करती है।

मथुरा मूर्तिकला का विकास

मथुरा प्राचीन समय के उन नगरों में से है जो ब्राह्मण, बौद्ध और जैन धर्म का केंद्र रहा है। मथुरा लगभग एक सहस्त्राब्दी तक कला का प्रमुख केंद्र रहा है। जहाँ एक ओर मथुरा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों के लिए कृष्ण की जन्मस्थली हेतु प्रसिद्ध था तो वहीं यह बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए उनके महायान संप्रदाय के बड़े केंद्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ। दूसरी तरफ यहाँ शुंग तथा कुषाणकाल में जैन स्तूपों का भी निर्माण हुआ। लगभग प्रथम सदी ईस्वी में यह कुषाण सत्ता का केंद्र बना तथा इसी समय मथुरा के सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन में अनेक नए तत्वों का समावेश हुआ (श्रीवास्तव, 2010: 312)।

कुषाण काल में मथुरा, कला की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया। विभिन्न धर्मों का प्रभाव मथुरा में कला व संस्कृति पर व्यापक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से पड़ा। जिससे मथुरा अपने अंदर एक सर्वधर्म समभाव की भावना को निहित रखे हुआ था। इस काल में ही बुद्ध का मानवरूपी चित्रण हुआ जो भारतीय कला को कुषाणों द्वारा दी गयी सर्वोत्तम देन है। मौर्य एवं शुंग काल में भारतीय कला में बुद्ध को प्रतीकों के रूप में शिलाफलकों पर प्रदर्शित किया गया था। महायान संप्रदाय ने बुद्ध तथा बोधिसत्त्वों की मूर्तियों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया था। एक ओर जहाँ कुबेर, यक्ष आदि की मूर्तियाँ बनी वहीं दूसरी ओर बुद्ध एवं बोधिसत्व की मूर्तियाँ भी बहुतायत में बनी। हिन्दू धर्म के देवता जैसे विष्णु, सूर्य, शिव तथा देवी मूर्तियों का भी चित्रण दृष्टिगत है इसी क्रम में जैन तीर्थंकर की मूर्तियाँ भी बनीं। साँची तथा भरहुत की शिल्प परंपरा को ही मथुरा के कलाकारों द्वारा अपनाया गया था। किन्तु कुषाणों के काल में मूर्ति निर्माण के लिए किया गया प्रयास अधिक परिष्कृत रूप में था। मानवाकृति में सौंदर्य को चित्रित करने के साथ-साथ उन में अनेक मुद्राओं और भावों को समाहित करने का यह कार्य उन्होंने बड़ी ही कुशलता से किया। मथुरा शैली की मूर्तियों की पहचान उसमें प्रयोग में लाए जाने वाले लाल चकत्तेदार पत्थर हैं जो मथुरा के निकट रूपवास व सिकरी नामक स्थानों से प्राप्त होते हैं।

मथुरा मूर्तिकला में निर्मित मूर्तियों के लक्षण

1. कुषाणकाल में शिल्पियों द्वारा नवीन मुद्राओं के साथ–साथ पार्श्वगत तथा पृष्ठगत दर्शनों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया गया।
2. जीवन के विभिन्न परिदृश्यों को उकेरने हेतु अनौपचारिकता का वातावरण आवश्यक था। इस हेतु शिल्पियों द्वारा मुद्रा एवं कोणों को विभिन्नता के साथ स्त्री एवं पुरुष आकृतियों में स्वाभाविकता लाने के लिए लाया गया।
3. पूर्व में जो मूर्तियाँ चपटी होती थीं कुषाण काल में उभरी हुई हैं।
4. जो मूर्तियाँ पत्थरों में उभार के साथ बनायी गयी हैं उनके पृष्ठ में केशराशि,आभूषण एवं वस्त्र को उकेरा गया है।
5. भारी वस्त्रों के स्थान पर हल्के वस्त्रों से मूर्ति को सुसज्जित किया गया है।
6. मूर्तियों की देह को सुडौल एवं मांसल दिखाया गया है।
7. देव प्रतिमाओं के दाहिने कंधे पर वस्त्र नहीं है व दाहिना हाथ अधिकतर अभय मुद्रा में बनाया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मथुरा कला शैली की मूर्तियों का वर्गीकरण

कुषाण साम्राज्य उत्तरी पूर्वी भारत तथा पश्चिमी पाकिस्तान तक विस्तृत था। इस काल के शासकों ने मूर्तिकला का बहुमुखी विकास किया। भारतीय कला का परिपक्व युग यहीं से आरम्भ होता है। शिल्पियों द्वारा इस काल में बहुत से सम्प्रदायों से सम्बंधित मूर्ति जैसे बुद्ध, बोधिसत्व, अवलोकितेश्वर, विश्वपाणी, पार्श्वनाथ, आदिनाथ, नेमिनाथ, शिव, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, सूर्य, गणेश, दुर्गा, अर्धनारीश्वर, कार्तिकेय की मूर्तियाँ निर्मित की गयीं। इस काल में यक्ष–यक्षिणी की मूर्तियाँ मथुरा तथा उसके आस–पास प्राप्त हुई है। इसमें प्रसिद्ध मूर्ति आगरा तथा मथुरा के मध्य स्थित परखम नामक स्थान से प्राप्त हुई है ।

जैन मूर्तियाँ

मथुरा, जैन धर्म का भी महत्वपूर्ण केंद्र रहा है। यहाँ के कंकाली टीले से खुदाई में जैनियों के स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन स्तूपों से प्राप्त आयागपट्ट बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह आयागपट्ट (चित्र सं0 1) एक प्रस्तर खंड होता है, जिस पर तीर्थंकरों की तथा अन्य पूज्य आकृतियां उत्कीर्ण होती हैं (श्रीवास्तव, 2010: 320)। पूर्व में इन पर प्रतीकों का अंकन किया जाता था जैसे श्रीवत्स, त्रिरत्न, स्वस्तिक, मीन, मिथुन आदि।

चित्र सं0 1: जैन आयागपट्ट (स्रोतः राष्ट्रीय संग्रहालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पश्चात् तीर्थंकरों की प्रतिमाओं का निर्माण भी प्रारम्भ किया गया। तीर्थंकरों की प्रारंभिक प्रतिमाओं का निर्माण निम्न प्रकार से किया जाता था –

1. एकाकी रूप में
2. सर्वतोभद्रिका रूप में
3. स्थानक रूप या कायोत्सर्ग नग्न मुद्रा में
4. पद्मासन रूप में

कुषाण काल में तीर्थकरों की मूर्तियों की पहचान कठिन है, क्योंकि उन पर लक्षण नहीं बनाये गए हैं कालान्तर में ऋषभनाथ के कंधों पर खुले हुए केश बनाये गए और सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प-फण। मूर्तियों के वक्ष पर श्रीवत्स तथा पीछे आभामंडल है। श्रीवत्स का अंकन केवल तीर्थंकरों की मूर्तियों पर है। इस काल से ही चतुर्मुखी मूर्तियाँ जिन्हें सर्वतोभद्र कहा गया चलन में आयीं ऐसी मूर्तियों में एक ही पाषाण के चारों ओर चार तीर्थंकर की प्रतिमाएं बनी होती हैं। इस प्रकार की चतुर्मुखी प्रतिमा बनाने की पद्धति कालांतर में ब्राह्मण धर्म द्वारा भी अपनायी गयी।

बुद्ध मूर्तियाँ

मथुरा कला में बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण किया गया इससे पूर्व बुद्ध को प्रतीकों के रूप में दर्शाया गया है और उन प्रतीकों का आधार बुद्ध के जीवन से जुड़ी प्रमुख घटनाएं रहीं हैं। कुषाण काल में स्थानक तथा आसन मुद्रा में बुद्ध की मूर्तियों को दर्शाया गया है। उनके व्यक्तित्व में चक्रवर्ती तथा योगी दोनों का ही आदर्श देखने को मिलता है। एक चक्रवर्ती सम्राट तथा इन्द्रियजेता योगी के गुणों के समन्वय से यक्ष मूर्तियों के अनुकरण पर शिल्पी ने बुद्ध मूर्ति का स्वरुप निर्धारण किया। नासाग्रदृष्टि, पद्मासन, ध्यान मुद्रा में दोनों हथेली गोद में रखे, योगी बुद्ध के मस्तक पर उष्णीष है। प्रलंबकर्णपाश, आजानबाहु, चक्रांतिक हस्तपाद को चक्रवर्ती महापुरुष बुद्ध से समन्वित कर मथुरा के कलाकार ने प्रथम बुद्ध मूर्ति की रचना की। इस युग के कलाकारों द्वारा बुद्ध की मूर्तियों को यक्षानुकरण पर शारीरिक बलिष्ठता से ओत–प्रोत अलंकरण विहीन प्रभामंडल, दाहिना हाथ अभय मुद्रा में, वाम स्कंध पर उत्तरीय तथा सिर पर उष्णीष निर्मित किया। कलाकारों द्वारा बुद्ध को चार स्थितियों में प्रदर्शित किया गया है–अभयमुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा तथा ध्यान मुद्रा। इससे यह प्रतीत होता है कि कलाकारों द्वारा आसन मुद्रा (चित्र सं0 2 अ) में मूर्तियाँ योगी के गुणों तथा स्थानक मूर्तियाँ चक्रवर्ती सम्राट के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणों के आधार पर निर्मित की गयी है इस युग में भी कलाकारों ने सफलतापूर्वक दोनों गुणों का अलौकिक समन्वय प्रस्तुत किया।

बुद्ध मूर्तियों के निर्माण के क्रम में बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्तियों में अंतर को लेकर असामंजस्य की स्थिति उत्पन्न हो गयी। बुद्ध का प्रथम जीवन जो अलंकार युक्त है वह बोधसत्व की अनुकृति हुई तो वहीं अलंकारविहीन बुद्ध की और इस आधार के स्वीकारोक्ति के उपरांत बुद्ध की खड़ी मूर्ति महाकाय के रूप में निर्मित हुई (चित्र सं0 2 ब)। मथुरा की प्रारंभिक बोधिसत्व की मूर्तियाँ प्रसन्न मुद्रा वाली मांसल हैं जिनमें सांसारिक सुख परिलक्षित होता है जबकि बाद में बनी मूर्तियों में आध्यात्मिक ओज और सात्विकता दोनों है।

चित्र सं0 2अ : पद्मासन मुद्रा
(स्रोतः राष्ट्रीय संग्रहालय),

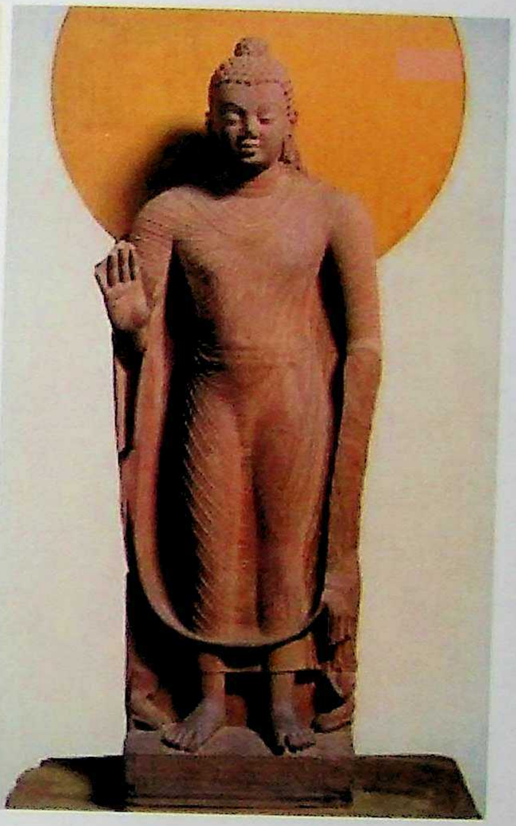

चित्र सं0 2ब : बुद्ध की खड़ी प्रतिमा
(स्रोतः मथुरा संग्रहालय)

ब्राह्मण मूर्तियाँ

भगवान कृष्ण के युग से ही मथुरा ब्राह्मण धर्म का प्रमुख केंद्र रहा है, जिसका साक्ष्य वहां से प्राप्त पुरातात्त्विक सामग्रियाँ हैं जो लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की हैं। प्राचीन समय में मथुरा की पावन धरा पर ही बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म को पनपते हुए देखा जा सकता है। प्रमुख तीन धर्मों का विचारकेंद्र होने के कारण मथुरा में जिस कला का निर्माण हुआ उसने इन तीनों को अपने शिल्प में यथोचित सम्मान दिया जो आज भी विभिन्न संग्रहालयों में संरक्षित हैं। बौद्ध मूर्तियों के समान ही मथुरा कला में ब्राह्मण धर्म संबंधी मूर्तियों का निर्माण हुआ। मथुरा से कुछ दूर मोरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक स्थान से लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के पंचवीरों (संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब एवं अनिरुद्ध) की मूर्तियाँ मिली हैं। मथुरा के समीप ही बलराम की भी एक मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसके हाथ में हल है। भागवत या प्राचीन पांचरात्र धर्म का मथुरा तथा उसके आस–पास काफी प्रभाव बढ़ गया था जिसके अंतर्गत मूर्तियों की रचना प्रारम्भ हुई। धीरे–धीरे देवी–देवताओं को मूर्त रूप देने की इस प्रथा में सूर्य, शिव, शक्ति आदि की मूर्तियाँ बहुतायत में बनने लगीं। धर्म से अभिभूत प्रजा के मनोभाव मानों मूर्तियों के रूप में ढलकर सामने आ रहे हों क्योंकि धार्मिक जीवन का चित्र मूर्तियों के बिना अधूरा रह जाता है। इसी क्रम में ब्राह्मण धर्म से सम्बंधित मूर्तियों का वर्णन निम्नलिखित है -

विष्णु मूर्ति

मथुरा से विष्णु की कुषाण काल में कई मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनमें चतुर्भुजी तथा अष्टभुजी मूर्तियाँ मिली हैं। चतुर्भुजी मूर्तियों के हाथों में शंख, चक्र, गदा है और चौथा हाथ अभय मुद्रा में है। मथुरा के पालिखेरा से प्राप्त अष्टभुजी मूर्ति के दायीं ओर के चार हाथों में क्रमशः पाषाण,खड्ग और बाणों का पुंज है तथा बायीं ओर के एक हाथ में जिसमे चक्र हैं स्पष्ट हैं तथा अन्य सभी खंडित हैं। मथुरा कला में बनी हुई एक विष्णु मूर्ति का दायां हाथ अभय मुद्रा में है और बायें हाथ में अमृत–घट प्रदर्शित किया गया है (श्रीवास्तव, 2010: 324)। अमृत–घट की यह आकृति कुषाणकालीन बोधिसत्व विशेषकर मैत्रेय के अमृत–घट से मिलती है (अग्रवाल, 1966: 59)। पद्म जो कि विष्णु का लोकप्रिय प्रतीक हैं कुषाणकालीन कला में इसका प्रयोग नहीं हुआ है। कुषाण काल में प्राप्त कुल 14 मूर्तियों में सिर्फ एक मूर्ति जो कुषाणों के अंतिम काल की हैं उसमें पद्म का अंकन प्राप्त होता है।

शिव मूर्ति

मथुरा में बहुसंख्यक शिव मूर्तियों की प्राप्ति से यह स्पष्ट हो जाता हैं कि प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व से पांचवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक मथुरा शैव भक्ति का भी केंद्र रहा होगा। शैव–भागवत संप्रदाय का उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में मिलता है। कुषाण युग में शैवों के पाशुपत धर्म का प्रमुख केंद्र मथुरा था । इस धर्म में लिंगार्चन का बहुत महत्व था। इनके द्वारा ही शिव लिंगों की स्थापना का प्रचलन हुआ। यहाँ शिव कि मूर्ति दो प्रकार की प्राप्त होती है, प्रथम प्रकार लिंग विग्रह (चित्र सं0 3) और दूसरी मानव विग्रह रूप में है। लिंग रूपी शिव की मूर्तियाँ लखनऊ व मथुरा संग्रहालय में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

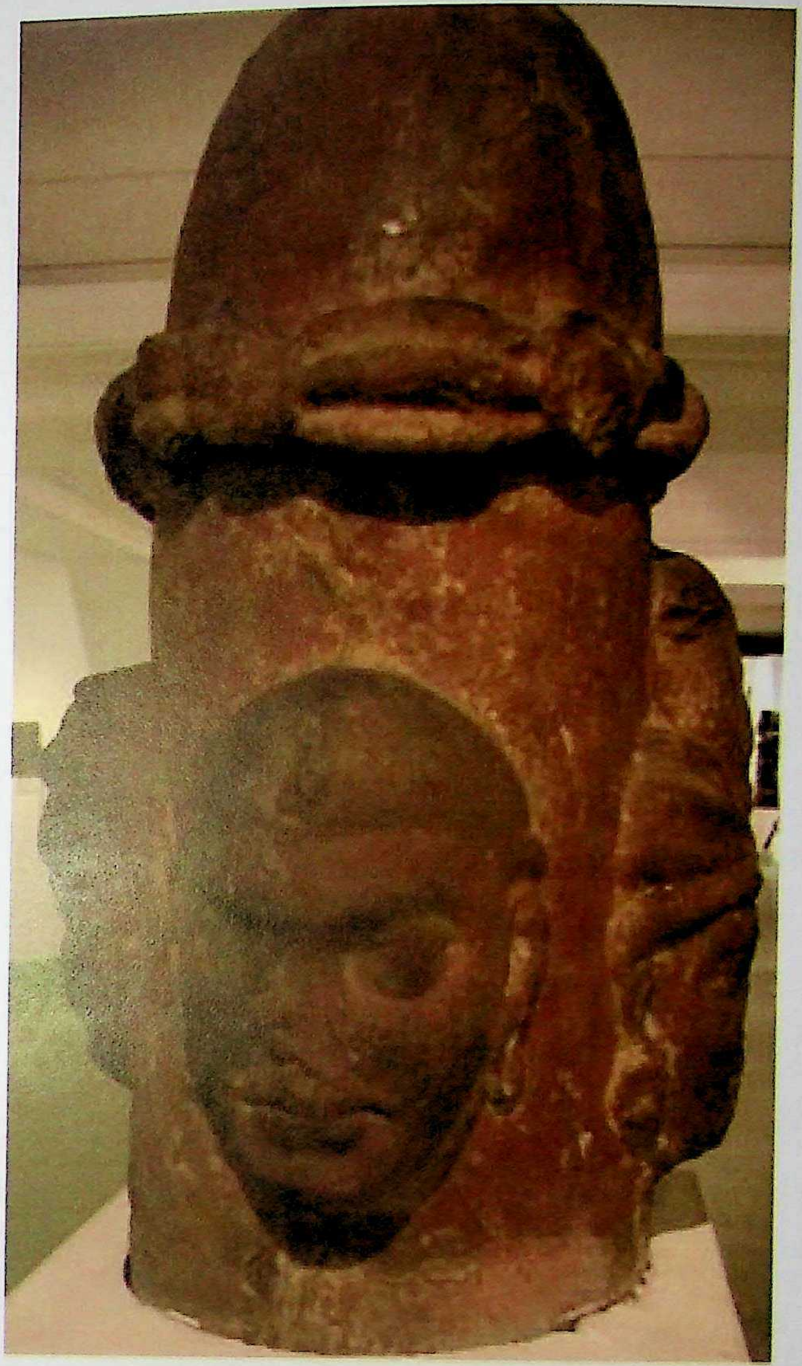

चित्र सं0 3 : चतुर्मुख शिवलिंग (स्रोतः राष्ट्रीय संग्रहालय)

सूर्य मूर्ति

कुषाण युग से पूर्व भी भारत में सूर्य प्रतिमा बनती थी किन्तु इस काल में सूर्य प्रतिमा पर ईरानी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मध्य–एशिया की पोशाक एक लम्बा कोट और गद्देदार जूते पहने हुए, एक हाथ में तलवार और दूसरे में ढाल लिए हुए, राजा अपने दोनों पैरों को अलग किये हुए प्रभुत्व की मुद्रा में खड़ा है (बाशम, 2017: 264) ठीक इसी प्रकार मूर्तियों में सूर्य को प्रदर्शित किया गया है। कुषाणकालीन सूर्य प्रतिमाओं में बहुतायत से विदेशी प्रभाव परिरक्षित होता है। इस नयी परम्परा में बनी सूर्य–मूर्तियों का कारण मग नामक पारसीक (ईरानी) पुरोहितों के एक वर्ग का भारत में आगमन बताया गया है (भंडारकर, 1965:153)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणपति मूर्ति

कुषाणकाल से पूर्व गणेश की मूर्ति का कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं होता है। इससे पूर्व निर्मित गणेश की मूर्ति यक्ष रूप में बनी जान पड़ती है (अग्रवाल, 1966: 73)। मथुरा के एक कुषाणकालीन शिलापट्ट पर सबसे ऊपर एक भित्तिवेदिका है, मध्य में पुष्पमालाधारी छः भक्तों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं और नीचे गजमस्तकयुक्त आकृतियों वाले पांच गजानन यक्षों को प्रदर्शित किया गया है।

कार्तिकेय मूर्ति

कुषाण काल में कार्तिकेय की महत्ता गणेश की अपेक्षा अधिक थी; जिसका साक्ष्य हमें तक्षशिला से प्राप्त एक मूर्ति से मिलता है जिस पर शक्ति तथा कुक्कुट अंकित हैं। कुषाण सम्राट हुविष्क के शासन काल में स्कन्द-पूजा प्रसिद्ध थी; जिसका साक्ष्य हमें उसके सिक्कों पर अंकित विशाख, कुमार तथा स्कंद लेख से मिलते हैं। जो तीनों ही कार्तिकेय के पर्याय हैं। मथुरा के कुएं से कार्तिकेय की एक मूर्ति मिली है जिसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है और बाएं हाथ में लम्ब शक्ति है। कुछ विद्वानों के द्वारा मूर्ति की इस शैली की तुलना बोधिसत्वों की मूर्तियों से की गयी है।

बलराम मूर्ति

मथुरा के निकट जुनसुदी नामक ग्राम से बलराम की एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिसके सिर पर पग्गड़ बंधा है, जो शुंगकालीन मूर्तियों से मिलता हैं। कानों में कुण्डल हैं। मूर्ति के सिर के ऊपर सांप के फन हैं तथा दाहिने हाथ में मूसल और बाएं हाथ में हल पकड़े हुए हैं। इन आयुधों के कारण यह मूर्ति बलराम की जान पड़ती है। कुषाण काल में बलराम की मूर्तियों की संख्या विशेष नहीं है यहाँ से प्राप्त अधिकांश मूर्तियाँ नाग-देवताओं की है। बलराम और शेषनाग ये दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं।

देवियों की मूर्तियाँ

देवी मूर्तियों में लक्ष्मी, महिषासुरमर्दिनी दुर्गा ,सप्तमातृका की गणना मुख्यतया होती है। इनके अतिरिक्त हारिति व वसुधारा की प्रतिमाएं भी मिलती हैं। लक्ष्मी और गजलक्ष्मी का भरहुत तथा साँची में भी अंकन मिलता है जहाँ इन्हें कहीं कमल के आसन पर तो कहीं कमल के मध्य बैठा हुआ दिखाया गया है। देवी की एक मूर्ति में उन्हें दुग्धाधारिणी मुद्रा में घट के ऊपर खड़े प्रदर्शित किया गया है (चित्र सं0 4) (श्रीवास्तव, 2010: 328) इनके पृष्ठ भाग में सुन्दर कमलों का चित्रण है जिसमें नीलोत्पल की कलियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उल्लेखनीय है निश्चित ही यह कुषाण काल के शिल्पी की प्रतिभाशाली कृति है। शाक्त धर्म की लोकप्रिय देवी दुर्गा की मूर्तियाँ भी कुषाण काल से बननी प्रारम्भ हो गयी थीं, जिसमें उनका रूप चतुर्भुजी है। एक हाथ अभय मुद्रा में, दूसरा हाथ कमर पर तथा अन्य दो हाथों में भाला तथा त्रिशूल है। इस काल में दुर्गा का महिषासुरमर्दिनी रूप ज्यादा प्रचलित था।

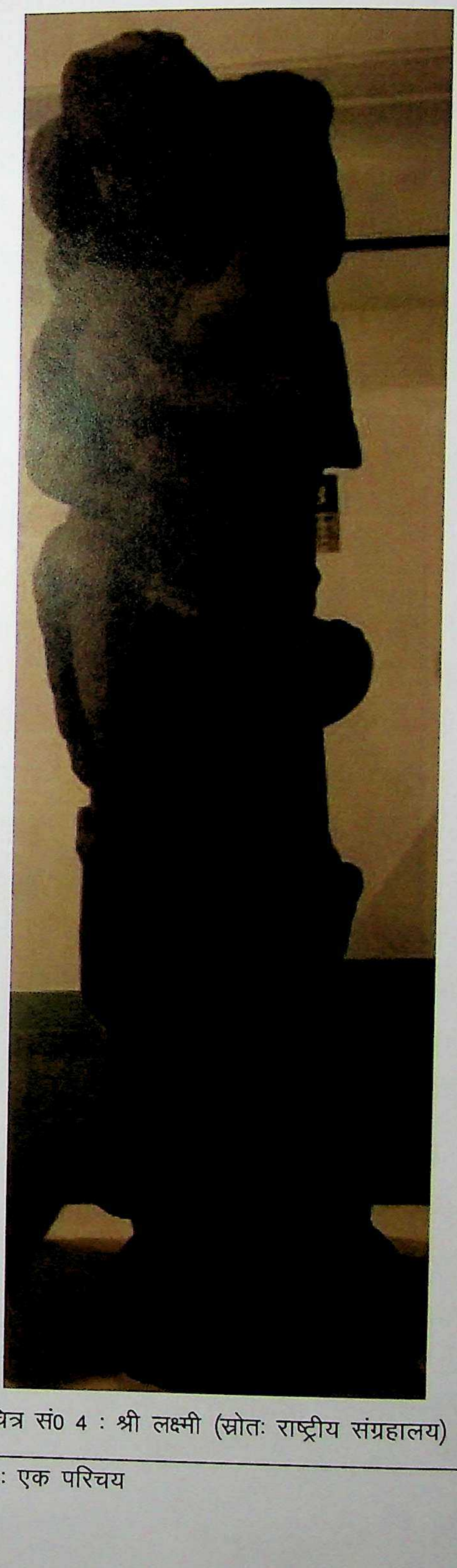

चित्र सं0 4 : श्री लक्ष्मी (स्रोतः राष्ट्रीय संग्रहालय)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्राटों की मूर्तियाँ

मथुरा में कुषाण सम्राटों के प्रभाव को वहां से कुछ दूरी पर ''माट'' नामक ग्राम में कुषाणों के देवकुल से आंका जा सकता है। यहाँ राजाओं की मूर्तियाँ रखने का एक भवन था जिसे देवकुल कहा जाता था। मथुरा से सम्राट कनिष्क, वेम तक्ष्म तथा चष्टन की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं और भी कई मूर्तियाँ खंडित अवस्था में प्राप्त हुई है, जिनकी पहचान संदिग्ध है। देवकुलों की प्रेरणा कुषाणों को मध्य-एशिया के तोपरक्कला जहाँ सम्राटों के देवकुल थे; से मिली है। माट से कनिष्क की एक मस्तकविहीन मूर्ति प्राप्त हुई है। जो पांच फीट सात इंच ऊंची है और उस पर ''महाराजा राजाधिराजा देवपुत्रो कनिष्को'' अंकित है। इसमें राजा ने एक लम्बा कोट जो कमर पर बंधा हुआ है पहना है। पैरों में भारी जूते पहने हैं जिसे खपूसा कहा जाता था और जो टखनों पर बद्धियों से कसे हैं (अग्रवाल, 1966: 306)। हाथ में दंड है जिसके नीचे की ओर मकरमुखी अलंकरण है। तलवार के शीर्ष पर हंसाकृति है। माट से वेम तक्ष्म की भी एक मस्तकविहीन मूर्ति की प्राप्ति हुई है जो सिंहासनासीन है। जिसके दाहिने हाथ में तलवार है इसमें सम्राट ने चोंगा धारण किया हुआ है। मूर्ति के दोनों ओर सिंह आकृति निर्मित है मूर्ति के पाद-पीठ पर ''महाराज राजाधिराज देवपुत्र कुषाणपुत्र शाही ''वेम तक्ष्म'' खुदा है (अग्रवाल, 1966: 304)। टांगों पर सलवार तथा पैरों में जूते हैं यह वेश-भूषा शकों द्वारा धारण की जाती थी। भरहुत तथा साँची के शिल्पगत अंकनों में अनेक बार यह वस्त्र-भूषा मिलती है।

इसी प्रकार कुषाण शासकों की मूर्तियाँ इसकी जानकारी देती है कि यह मध्य एशियाई वेशभूषा में हैं और इन्होंने लम्बे कोट एवं गद्देदार जूते पहने हैं तथा एक हाथ में तलवार और दूसरे में उसका कवच है और इनके पैरों को पर्याप्त दूरी पर दिखाते हुए इनकी मुद्रा में एक स्वाभाविक आत्म विश्वास दिखाया गया है जो राजा के गौरव के प्रतीक बन गये, जिसको देखने से मिस्र के राजाओं का स्मरण ताजा हो जाता है।

यक्ष तथा यक्षिणी की मूर्तियाँ

मथुरा कला के अंतर्गत यक्ष तथा यक्षिणी की मूर्तियाँ भी बनीं। इन यक्षिणी की मूर्तियों ने ही नारी मूर्तियों के अंकन के प्रतिमान स्थापित किये। तत्पश्चात इसी आधार पर मूर्तियाँ बनीं। यह नारी मूर्तियाँ प्रचुर संख्या में आभूषण धारण किये होती थीं और इनके नितम्ब असाधारण रूप से भारी होते थे तथा कमर उतनी ही कमनीय होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

भारतीय कला के इतिहास के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मौर्य काल के पश्चात् कला पर सामाजिक तथा धार्मिक मिश्रित प्रभाव परिलक्षित होने लगा था। कला प्रतीकात्मक तथा अमूर्त होती है, जो बाह्य रूप की अपेक्षा विचारों पर अधिक बल देती है। कला की कृतियों में कलाकार की अनुभूति अभिव्यक्त होती है। अतः कलाकार की अनुभूति और अभिव्यक्ति से ही उसकी रचना में रमणीयता आती है। मूर्तिकला हमारी युग–युगांतर की संस्कृति और आध्यात्मिकता के सन्देश देती हैं। कला का अपना एक विशेष महत्व है। प्रत्येक काल में इसका अपना वर्चस्व है चाहे वह हड़प्पा कला हो या मौर्य या कुषाण। प्राचीन विश्व में कला के क्षेत्र में भारत का प्रतिष्ठित स्थान है। जहाँ एक ओर यवन मानव शरीर की दैहिक सुंदरता, मिस्र के लोग अपने पिरामिड की भव्यता और चीनी लोग प्रकृति की सुंदरता को दर्शाने में सर्वोपरि थे, वहीं भारतीय अपने आध्यात्म को मूर्तियों में ढालने का प्रयास करने में अद्वितीय थे, वह आध्यात्म जिसमें लोगों के उच्च आदर्श और मान्यताएं निहित थीं। इस प्रकार धर्मनिरपेक्ष भाव से नास्तिक एवं आस्तिक दोनों सम्प्रदायों की सेवा करते हुए कला के एक ऊँचे आदर्श की स्थापना करना मथुरा कला का सबसे महत्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ

- अग्रवाल, वासुदेव शरणः 1964, मथुरा कला, गुजरात विधानसभा, अहमदाबाद
- : 1966, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी
- उपाध्याय, वासुदेव : 1982, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
- दास, कुसुमः 1977, भारतीय कला का परिचय, उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
- पुरी, बी. एन.: 2014, कुषाण इन इंडिया एंड सेंट्रल एशिया, मुंशीराम मनोहरलाल प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली
- बाशम, ए. एलः 2017, अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा
- भंडारकर, आर. जी.: 1965, वैष्णविज्म एंड शैविज्म एंड अदर माइनर रिलीजियस सिस्टम, इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

- राय, कृष्णदासः 1996, भारतीय मूर्तिकला, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
- रोलैंड, बी.: 1953, दी आर्ट एंड आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया, पेंगुइन बुक्स, लंदन
- वाजपेयी, कृष्णदत्तः 1955, अखिल भारतीय ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा
- श्रीवास्तव, बृज भूषणः 2010, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान और मूर्ति विज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

★ ★ ★

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ICHR

INTERNATIONAL SEMINAR

on

ASSIMILATIVE NATURE OF INDIAN CULTURE AND ITS CONTINUITY

Indian Council of Social Science Research

CENTRE OF ADVANCED STUDY

Department of A.I.H.C. & Archaeology
Banaras Hindu University, Varanasi

(13th - 15th December 2019)

Certificate

This is to Certify that Prof./Dr./Ms./Mr. सारिका दुबे of गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार has participated/ presented a paper entitled कुषाण राजवंश के सिक्कों पर अंकित देवी-देवता in the International Seminar on **'Assimilative Nature of Indian Culture and Its Continuity'** held at the Centre of Advanced Study, Department of Ancient Indian History, Culture & Archaeology, Banaras Hindu University, Varanasi.

Prof. Anil Kumar Dubey	Prof. Suman Jain	Onkar Nath Singh Prof. Onkar Nath Singh
Organizing Secretary	Organizing Secretary	Convener & Head

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

संस्कृति मंत्रालय MINISTRY OF CULTURE | शिक्षा मंत्रालय MINISTRY OF EDUCATION | नमामि गंगे | USERC | SBI | pnb

गुरुकुल काङ्गड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार, उत्तराखण्ड

Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar, Uttarakhand

200th Always Truth Maharshi Dayanand Saraswati Birth Anniversary 1824-2024

200th Birth Anniversary Celebration of Maharishi Dayanand Saraswati

International Conference on Veda Vijnana & Sanskriti Mahakumbha

23rd to 25th December, 2023 | मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष द्वादशी से चतुर्दशी वि० २०८०

Veda - Vijnana & Sanskriti MahaKumbha
वेद-विज्ञान एवं संस्कृति महाकुम्भ

ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद

CERTIFICATE OF PARTICIPATION

This certificate is proudly presented to Prof./Dr./Mr./Ms. सारिका दुबे of गुरुकुल कांगडी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार for participating and presenting a paper (oral or poster)/ invited talk / key note address / chairing technical session entitled "भारतीय ज्योतिषशास्त्र पर विदेशी प्रभाव" during International Conference on "Veda Vijnana & Sanskriti Mahakumbha" organized by Gurukula Kangri (DU), Haridwar on the auspicious occasion of 200th birth anniversary of Maharishi Dayanand Saraswati Ji.

566

Dr. Gagan Matta
Organizing Secretary
Veda Vijnana & Sanskriti Mahakumbha

Prof. Prabhat Kumar
Conference Director
Veda Vijnana & Sanskriti Mahakumbha

Prof. Sunil Kumar
Registrar
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

S.N. 64.

International Conference

on

ANCIENT WISDOM, CIVILIZATIONAL ANTIQUITIES AND THE CONTEMPORARY UNIVERSE

31st January to 2nd February 2020

Organised By

Gautam Buddha University, Greater Noida

&

Km. Mayawati Govt. Girls P. G. College, Badalpur, G. B. Nagar, (U.P.) - India

Certificate of Appreciation

Prof./Dr./Mr./Ms. SARIKA DUBEY Department of Ancient Indian history culture & Archaelogy from Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar (U.K). presented a research paper titled कुषाण कालीन मूर्तियों का परिचय (मथुरा कला के संदर्भ में)

Sponsored By

Indian Council of Historical Research, New Delhi, India | Department of Higher Education, Uttar Pradesh, India | University Grants Commission, New Delhi Dept. of Voc. Studies KMGGPGC

CONVENER

ORGANIZING SECRETARY

PATRON

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार (उत्तराखण्ड), भारत
Gurukula Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar (Uttarakhand), India

(NAAC Accredited 'A' Grade Deemed to be University u/s 3 of UGC Act 1956)

CHOICE BASED CREDIT SYSTEM

अंक विवरणिका एवं ग्रेड Statement of Marks and Grade

Pre-Ph.D. Course Work Examination - 2018

Subject: Ancient Indian History, Culture and Archaeology

विद्यार्थी का नाम / Student's Name: SARIKA DUBEY
पिता का नाम / Father's Name: SURYA DEV DUBEY
माता का नाम / Mother's Name: MADHURI DUBEY
परिसर / संकाय / Campus / Faculty: FACULTY OF ORIENTAL STUDIES

अंक पत्र संख्या / Marksheet No.: S1841352
अनुक्रमांक / Roll No.: 18517010
नामांकन संख्या / Enrolment No.: 18008
परीक्षा संवर्ग / Exam Status: Regular

प्रश्नपत्र कोड Paper Code	विषय / प्रश्नपत्र Subject/Paper	विषय प्रकार Course Type	अधिकतम अंक Max Marks	प्राप्तांक Marks Obtained: ई.एस.ई. ESE	सी.ए. CA	योग Total	क्रेडिट Credit	ग्रेड Grade	ग्रेड प्वाइंट Grade Point	क्रेडिट प्वाइंट Credit Point
PHS-C101	Research Methodology	DSC	100	49	26	75	6	O	6	36
PHS-C102	Research Methodology and Computer Application	DSC	100	42	27	69	6	A	5	30

	प्रथम सेमेस्टर First Semester	द्वितीय सेमेस्टर Second Semester	तृतीय सेमेस्टर Third Semester	चतुर्थ सेमेस्टर Fourth Semester	पंचम सेमेस्टर Fifth Semester	षष्ठ सेमेस्टर Sixth Semester	सप्तम सेमेस्टर Seventh Semester	अष्टम सेमेस्टर Eighth Semester	फाइनल सी.जी.पी.ए. Final CGPA	परिणाम Result
क्रेडिट / Credit										
एस.जी.पी.ए. / SGPA	***	***	***	***	***	***	***	***	5.50	PASS
सी.जी.पी.ए. / CGPA	***	***	***	***	***	***	***	***		

ोट / Note निर्देश हेतु पीछे देखें / For Instructions see overleaf

नाक / ate : 08-02-2019

बनाने वाला / Prepared by

जाँचकर्ता / Checked by

परीक्षा नियंत्रक / Controller of Examinations

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar